सितम्बर

१९३१

वर्ष ९, खण्ड २

संख्या ५, पूर्ण संख्या १०७

सम्पादक— { श्री० त्रिवेणीप्रसाद, बी० ए० (जेल में)
श्री० भुवनेश्वरनाथ मिश्र "माधव", एम० ए० (जेल में)

स्थानापन्न सम्पादिका— श्रीमती लक्ष्मीदेवी

Printed at The Fine Art Printing Cottage Chandralok—Allahabad
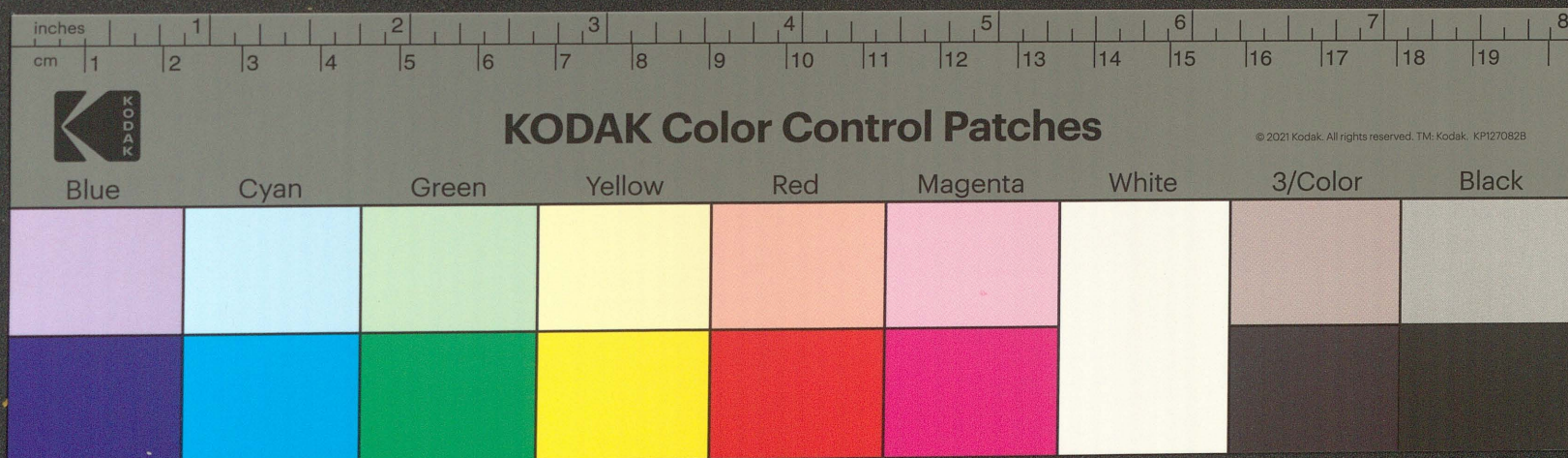
मूल्य केवल दो पैसा

मूल्य केवल दो पैसा

स्थानीय	
वार्षिक चन्दा	... १२)
छःमाही चन्दा	... ६।।)
तिमाही चन्दा	... ३।।)
एक मास का	... १।।)

का

दैनिक संस्करण

अतिरिक्त स्थानों के लिए	
वार्षिक चन्दा	... १६)
छःमाही चन्दा	... ८)
तिमाही चन्दा	... ४।।)
एक मास का	... २)

पाठकों को यह जान कर प्रसन्नता होगी कि इस संस्था ने 'भविष्य' का दैनिक संस्करण भी १ली सितम्बर से प्रकाशित करने का निश्चय कर लिया है और इसे सब प्रकार से सफल बनाने की तैयारियाँ हो चुकी हैं। पाठकों को शायद बतलाना न होगा, कि इस संस्था पर होने वाले आए-दिन के अत्याचारों ने हमें एक बार ही विक्षुब्ध कर दिया है। केवल हमीं पर नहीं, हमारे इस अभागे प्रान्त पर आज जैसा भीषण दमन और अत्याचार हो रहा है, उसने समस्त भारत का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट कर लिया है; किन्तु इतना होते हुए भी इस प्रान्त की राजधानी से कोई भी ऐसे हिन्दी दैनिक का प्रकाशित न होना, जो निर्भीकतापूर्वक अत्याचार-पीड़ितों का करुण-क्रन्दन जनता के सामने उपस्थित कर सके—वास्तव में बड़ी लज्जा की बात थी और केवल इसी उद्देश्य को सामने रख कर एक बार हम अपने साधनों की परीक्षा करने पर तुल गए हैं—परिणाम चाहे कुछ भी हो।

कुछ विशेषताएँ

(१) सर्वसाधारण की पहुँच से बाहर न हो, इसलिए दैनिक संस्करण का मूल्य केवल दो पैसे रखने का निश्चय किया गया है।

(२) 'भविष्य' के दैनिक संस्करण के लिए एसोशिएटेड तथा फ़्री प्रेस आदि सभी प्रतिष्ठित सम्वाद-एजन्सियों के विशेष तार भी मँगाए जावेंगे।

'भविष्य' (दैनिक) का सम्पादकीय बोर्ड

१—श्री० त्रिवेणीप्रसाद, बी० ए० (जेल में)
२—श्री० भुवनेश्वरनाथ मिश्र, एम० ए० (जेल में)
३—श्रीमती लक्ष्मीदेवी
४—श्री० नन्दकिशोर तिवारी, बी० ए०
५—मुन्शी नवजादिकलाल श्रीवास्तव
६—श्री० देवीदत्त मिश्र, बी० ए०, एल्-एल्० बी०
७—श्री० राधामोहन गोकुल जी
८—श्री० सत्यभक्त जी
९—पं० रामकिशोर मालवीय
१०—कविवर आनन्दीप्रसाद श्रीवास्तव, (हिं०-क०-वि०)

(१) व्यापारियों को 'भविष्य' में विज्ञापन देकर अपने व्यापार में लाभ उठाना चाहिए, रेट मँगा कर देखिए।

(२) प्रत्येक शहर, क़स्बे, तहसील और गाँव में ईमानदार एजण्टों की आवश्यकता है। नियमावली मँगा कर देखिए।

मैनेजर 'भविष्य' (दैनिक) चन्द्रलोक—इलाहाबाद

विषय सूची

❀ ❀ ❀

चित्र-सूची

अवध के भूतपूर्व शासक

आध्यात्मिक स्वराज्य हमारा ध्येय, सत्य हमारा साधन और प्रेम हमारी प्रणाली है। जब तक इस पावन अनुष्ठान में हम अविचल हैं, तब तक हमें इसका भय नहीं, कि हमारे विरोधियों की संख्या और शक्ति कितनी है।

वर्ष ९ खण्ड २	सितम्बर, १९३१	संख्या ५ पूर्ण संख्या १०७

कवि का जीवन-संगीत

[श्री० "मिलिन्द"]

किसी व्याकुल के व्यथित विलाप,
किसी विरही के उर के घाव!
किसी पागल के चिर-उन्माद,
किसी भावुक के भोले भाव!

❀

विश्व के कोलाहल से दूर,
किसी निर्जन के निर्झर-गान,
पीड़ितों के सञ्चित सर्वस्व,
सिसकते, कँपते, प्यासे प्राण!

❀

तुम्हारा आश्रित है अनुराग,
बाल-सा कोमल, विकल, अनाथ!
न होते जग में यदि तुम, करुण,
कौन दुखिया का देता साथ?

❀

फैलता नीरसता का राज्य,
सरसता होती है जब दूर,
विश्व के कठिन हृदय में, सखे,
तुम्हीं भरते हो रस भरपूर!

❀

मनुजता का जब कायर मनुज,
सहन कर लेते हैं अपमान,
शून्य संसृति के शव में तुम्हीं
भरा करते हो भैरव-गान !

❀

प्रेमियों के ऐ पुष्पोद्यान,
सैनिकों की ऐ कठिन कृपाण !
तुम्हें हम पाते हैं सर्वत्र,
अहे कवियों के जीवन-गान !

❀

कनक-वेला में घर-घर घूम,
प्रसूनों के अधरों को चूम,
साँस भर-भर कर सरस समीर
मचाती जब उपवन में धूम।

❀

खेलती जब साँसों के साथ
कुसुम-कुल की कोमल मुस्कान,
उन्हीं साँसों के स्वर में कभी,
हमें मिल जाते हो, ऐ गान !

❀

वीर-बाला से रण के लिए
बिदा होता है जब वर-वीर,
याद कर वह उज्ज्वल बलिदान
बहाता है जब गद्गद नीर।

❀

अश्रु-बूँदों का वह आनन्द,
हृदय का वह प्रफुल्ल अभिमान,
हमें दिखलाता है साकार
तुम्हारा सजल सजीला गान !

❀

किसी के उर में कभी उतार
किसी के उर का मीठा भार,
किसी के हृदय-वारि में बहा
किसी का सुन्दर सुख-संसार !

❀

प्रेमियों के लोचन-अभिसार,
किया करते हो मधु-व्यापार !
हिला देते हो विस्तृत विश्व
हृदय के छोटे से उद्गार !

❀

मानसिक भावों के प्रतिविम्ब,
कभी हो मुखर कभी हो मौन !
तुम्हारी सत्ता का सम्मान—
मिटा सकता है जग में कौन ?

❀

विश्व-स्वप्नों के विशद वितान,
हृदय के पुलकित भाव पुनीत,
वेदनाओं की तन्मय तान,
अहे कवि के जीवन-सङ्गीत !

❀

जन्मभर का साधन अनमोल
मोल लेगा क्या यह वरदान !
तुम्हारी 'लय' में लय हो कभी—
हमारे भी उर का तूफ़ान !

सितम्बर, १६३१
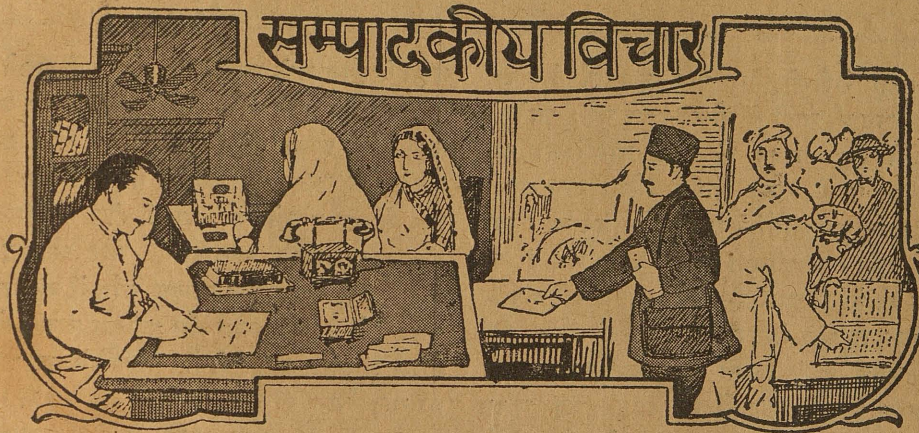
दर्द की तस्वीरें

न् १६२०-२१ के असहयोग आन्दोलन के बाद देश में जिस भाँति साम्प्रदायिक घृणा, द्वेष, कलह आदि का एक भीषण प्रवाह आया था, उसी भाँति, वरन् उससे कुछ अधिक दृढ़ता के साथ आज इस अभागे देश का वायु-मण्डल साम्प्रदायिक मनोमालिन्य से पूर्ण है! इस साम्प्रदायिक मनोमालिन्य की जड़ में न तो कोई महत्व-पूर्ण धार्मिक समस्या ही छिपी है और न कोई राजनीतिक अधिकार का प्रमुख प्रश्न ही। देश के दुर्भाग्य से आज भारत के साम्प्रदायिक झगड़ों की तह में एक स्वार्थी दल की आन्तरिक उत्तेजनाएँ एवं अभागे देशद्रोही भारतीय गुण्डों की कमीनी हरकतें ही काम कर रही हैं!! छोटे से छोटे और अत्यन्त नगण्य प्रश्नों पर ही गुण्डों के द्वारा बड़ा से बड़ा हिन्दू-मुस्लिम दङ्गा सम्पन्न कराया जा रहा है और स्वार्थी दल पूर्ण सतर्कता के साथ इन गुण्डों को उभाड़ने में प्रयत्नशील भी है।

साम्प्रदायिक कलह होते हैं, होते रहें। समय आवेगा, जब कि देश की आँखों से अज्ञान का आवरण हट जायगा और लोग स्वयं समझने लगेंगे; उस दिन निश्चय ही साम्प्रदायिकता का यह दूषित वायुमण्डल इस देश से सदा के लिए मिट जायगा; परन्तु जब तक वह समय न आए, तब तक भारतीय समाज को एक भयानक पशुता से बचने के लिए अपने को तैयार करना चाहिए। वह यह कि धर्म के नाम पर, धर्म को कलङ्कित करने वाले साम्प्रदायिक दङ्गों की आड़ में स्त्रियों और बच्चों पर होने वाले आक्रमण को रोकना प्रत्येक विचारशील नागरिक का प्रमुख कर्तव्य है। यहाँ एक बात का उल्लेख करना आवश्यक जान पड़ता है और वह यह, कि दङ्गे के अवसर में विशेष रूप से, परन्तु शान्ति के अवसरों में भी साधारण रूप से मुस्लिम गुण्डों की एक विशेष प्रवृत्ति यह है कि वे यथाशक्ति हिन्दू-स्त्रियों को भगाने, उन्हें विधर्मी बनाने में प्रयत्नशील रहते हैं और इस कार्य में उन्हें प्रायः ६६ सैकड़े मुसलमानों की सहायता एवं सहानुभूति मिलती है। दृष्टान्त-स्वरूप हाल में ही श्रीमती प्रतिभाबाला दासी ने मौलाबाज़ार (आसाम) के सब-डिपुटी मैजिस्ट्रेट श्री० बिरजाकान्त घोष के सम्मुख अपना मार्मिक एवं रोमाञ्चकारी बयान देते हुए कहा है—

"मेरे चचा रोहिणीकुमार दास इस वर्ष के प्रथम वैशाख को रात की गाड़ी से मौलाबाज़ार गए। जाने के पहले उन्होंने ऐसा प्रबन्ध किया कि कादम्बिनी हम लोगों के साथ घर के भीतर सोएगी और सुजान माली बरामदे में। जब हम लोगों ने रात को भोजन कर लिया तो सुजान आया। कादम्बिनी ने यह ख़बर भेज दी थी कि मैं रात को देर से आऊँगी। मेरी छोटी बहिन और मैं एक साथ सोई और मेरी माँ मेरी दूसरी बहिन और भाइयों के साथ दूसरे बिस्तरे पर। बरामपाल से ट्रेन छूटने के बहुत देर बाद कादम्बिनी आई। वह भीतर आकर सो रही। कुछ देर के बाद उसने पेशाब करने के निमित्त बाहर जाने की इच्छा प्रकट की। उसने मुझसे भी बाहर चलने को कहा। हम दोनों ही बाहर एक लालटेन लेकर आईं; परन्तु वह आधी राह में बुझ गई। पेशाब करने के बाद कादम्बिनी ने कहा कि मैंने भूल से घर के बाहर 'बारी' में लोटा छोड़ दिया है, मैं उस लोटे को घर में रख देना चाहती हूँ, जिससे उसे कोई चुरा न ले। इसके बाद कादम्बिनी ने मुझे भी अपने साथ चलने को कहा। मैं राज़ी हो गई और मैंने लैम्प जलाना चाहा। तब कादम्बिनी ने कहा कि लैम्प जलाने की कोई आवश्यकता नहीं। इसके बाद हम दोनों कादम्बिनी के घर की ओर चलीं। रास्ते में एक नाला पड़ता था। हम लोग उसे पार करने वाली ही थीं कि दो आदमियों ने मुझे पकड़ लिया और वहाँ से मुझे पक्की सड़क पर ले गए। उन्होंने मुझसे कहा कि यदि चिल्लाओगी तो हम लोग तुम्हें छुरे से कुट्टी-कुट्टी काट देंगे। कादम्बिनी से पूछने पर उसने बताया कि एक अब्दुलबारी था और दूसरा उसका फुफेरा भाई। ये दोनों आदमी मुझे अब्दुलबारी के फुफेरे भाई के घर ले गए। पीछे मैंने पहचाना कि जिसके घर में मुझे ले जाया गया था, वह जोआद था। वहाँ से अब्दुलबारी, जोआद और एक काला तथा नाटा आदमी, तीनों मिल कर जोआद के ससुर के घर करीमपुर में मुझे ले गए। करीमपुर में मैं प्रातःकाल से पहले पहुँचाई गई। वहाँ पहुँचाने पर अब्दुलबारी और वह काला, नाटा आदमी शीघ्र ही एक बत्ती के साथ चले गए, लेकिन जोआद उस घर में मेरे साथ रहा। उस घर में दिन के समय मैं एक काठ के बड़े सन्दूक़ के पीछे छिपा दी जाती थी। मैं वहाँ दो-तीन दिनों तक रक्खी गई। वे लोग मुझे अकेले कहीं भी नहीं जाने देते थे। एक दिन मैंने अपने चाचा जोगेश की आवाज़ उस घर में सुनी। मेरी इच्छा हुई कि मैं चिल्लाऊँ और उनके पास चली जाऊँ, परन्तु उन लोगों ने मुझे ऐसा करने पर जान से मार डालने की धमकी दी। दो-तीन दिनों के बाद अब्दुलबारी, अब्दुलग़नी और जोआद के साले ने मुझे वहाँ से मधुटैल नामक गाँव में पहुँचाया। वहाँ उन लोगों ने मुझे इसिम और कासिम नामक दो भाइयों के घर में रक्खा। इन दोनों भाइयों में एक अब्दुलग़नी का ससुर था। मैं वहाँ दो दिनों तक रक्खी गई। वहाँ पहली रात को अब्दुलबारी ने मेरे साथ बलात्कार किया। दो दिनों के बाद मैं उस गाँव में एक घर से दूसरे घर में लाई गई, और छिपा कर रक्खी गई। मुझे इस बात की धमकी दी गई कि यदि मैं चिल्लाने का यत्न करूँगी, अथवा ज़ोर से बोलूँगी अथवा बाहर जाऊँगी, तो मुझ पर बड़ी मार पड़ेगी। मधुटैल से अब्दुलग़नी और उसके साले के साले ने मुझे शिउरखल नामक ग्राम में पहुँचाया। यहाँ मुझे अब्दुलग़नी के साले के साले के मास्टर-चाचा के घर में रक्खा गया। यहाँ मैं सात दिनों तक रक्खी गई। इसके बाद अब्दुलबारी और एक बूढ़ी औरत ने पुनः मुझे मधुटैल में इसिम, कासिम के घर पहुँचाया, जहाँ मैं दिन भर रक्खी गई। रात में अब्दुलग़नी और अब्दुलबारी मुझे एक अज्ञात स्थान में ले गए। प्रातःकाल होने पर वे एक गाँव में पहुँचे, जहाँ मैं एक आदमी के घर में फूस की झोंपड़ी में छिपाई गई। मैं उस आदमी का नाम नहीं जानती। रात के समय अब्दुलग़नी और अब्दुलबारी मुझे उस झोंपड़ी से हटा कर फूलताला बाज़ार के उत्तर एक घर में ले गए।

"उस स्थान से भी प्रातःकाल के पहले ही मैं एक छोटी पहाड़ी पर लाई गई और वहाँ सारे दिन लोगों ने मुझे रक्खा। उस छोटी पहाड़ी से मुझे बाज़ार का कोलाहल सुन पड़ता था। उन्होंने बताया कि वह फूलताला बाज़ार का कोलाहल है। रात को अब्दुलबारी, अब्दुलग़नी और एक तीसरा पुरुष मुझे वहाँ से दूसरी छोटी पहाड़ी पर ले गए। दिन भर उन्होंने मुझे उस पहाड़ी पर रक्खा और रात को एक उजाड़ झोंपड़ी में, जो पास ही थी। अब्दुलबारी और अब्दुलग़नी वहाँ मुझ पर पहरा दे रहे थे। दो दिनों के बाद रब्बानी आया

और उसने कहा कि इस बात का अन्देशा है कि कल इस पहाड़ी की तलाशी हो। रात को ही तीनों भाई, बारी, ग़नी और रब्बानी मुझे उस पहाड़ी से ले चले। कुछ दूर चलने के बाद ग़नी और बारी मुझे रब्बानी के ज़िम्मे छोड़ कर लौट गए। रब्बानी मुझे मुन्शीमैल नामक गाँव में आरज़ू मियाँ के घर ले गया। रास्ते में एक नदी के समीप रब्बानी ने मेरे साथ बलात्कार किया। मैं आरज़ू मियाँ के घर में तीन दिनों तक रक्खी गई। एक दिन मैंने उस घर के बाहर गोसाईं की आवाज़ सुनी। उस समय मैंने घर के बाहर निकल भागने का प्रयत्न किया, परन्तु आरज़ू मियाँ की स्त्री ने मुझे ऐसा करने से रोका और इस बात की धमकी दी कि वह मुझे मार डालेगी। तीसरे दिन की रात को फ़ुर्क़तुल्ला, आरज़ू मियाँ तथा उसका लड़का, जो सिलहट स्कूल में पढ़ता है, मुझे आरज़ू मियाँ के घर से नोआज़ के घर में ले गए। उस दिन से मैंने बारी, ग़नी और रब्बानी को नहीं देखा। नोआज़ के घर में मैं १९ दिन तक रक्खी गई। वहाँ नोआज़ प्रति-रात को मुझसे बलात्कार करता था। १९ दिन के बाद वहाँ से हटा कर मैं रशीदअली के घर एक टीन के मकान में लाई गई। वहाँ मैं सात दिनों तक रक्खी गई। नोआज़ वहाँ प्रतिदिन आता और मुझसे कहता कि 'इस्लाम-धर्म ग्रहण कर मेरे साथ रहो।' वह मुझे बहुत से प्रलोभन देता। वह कहा करता—'मैं तुम्हें कभी भी नहीं जाने दूँगा और चाहे जो कुछ भी हो, तुम्हें अपने पास रक्खूँगा।' उसने यह भी कहा कि 'इस मामले में रशीद-अली ने मुझे हर तरह की मदद देने का वचन दिया है।' सात दिन के बाद नोआज़ मुझे फिर अपने घर ले गया। वहाँ एक रात को अब्दुल मन्नान, चेयरमैन मेरे पास गया और मुझे बलपूर्वक अपनी ओर खींचने लगा। मैंने अपने को रोका और उससे पूछा कि तुम कौन हो? उसने कहा—'मेरा नाम अब्दुल मन्नान है। मैं चेयरमैन हूँ। बड़े-बड़े ओहदेदार अङ्गरेज़ों से मेरी जान-पहचान है और पुलीस मेरे ख़िलाफ़ कोई कार्रवाई नहीं कर सकती। तुम मेरे साथ रहो, मैं तुम्हें ख़ुश रक्खूँगा और खाना-कपड़ा दूँगा।' उसके बुरे परामर्श को जब मैंने अस्वीकार किया तो उसने मेरे साथ बलात्कार किया। दो दिनों के बाद वह पुनः मेरे पास आया। उस समय मैं ज्वर में पड़ी थी। उस समय भी उसने मेरे साथ बलात्कार किया। बीमारी के समय मैं नसीम के घर दो दिनों तक रक्खी गई। उसके बाद मैं नसीम के ममेरे भाई अत्तार के घर में लाई गई, जहाँ एक सप्ताह तक मैं बीमार रही।

"मेरी बीमारी की हालत में दुलौरा का सरकारी डॉक्टर मुझे देखने आया। वह नौजवान और नाटा था। उसने मेरी छाती को बहुत बुरी तरह से मला। तब उसने मुझे दवाई दी और चला गया। दो दिनों के बाद वह फिर आया और मेरे साथ पहले की भाँति बुरा एवं भद्दा व्यवहार किया। मेरी बीमारी के समय में अत्तार के घर की पुलीस ने तलाशी ली; परन्तु तलाशी के पहले मैं उस घर के पीछे झाड़ियों में छिपा दी गई। अत्तार के घर से नसीम और अत्तार मुझे धर्मनगर ले गए और वहाँ नसीम की बहिन के घर में मुझे चार-पाँच दिनों तक रक्खा गया। वहाँ से मैं नसीम के मामा के घर में जूरी नदी के पास लाई गई। वहाँ से नसीम और अयूबअली मुझे बन्दैताली नामक गाँव में नसीम के मामा की लड़की के घर में ले गए। वहाँ से नसीम मुझे रङ्गीगुल नामक ग्राम में ले गया और मुझे एक मुसलमान के घर में रक्खा, जो एक मिरासियों का मण्डल है। वहाँ मैं कुछ दिनों तक रक्खी गई। एक दिन वह मुसलमान कुछ हिन्दुओं से गुप्त बातें करता था। इसके बाद एक हिन्दू बालक मेरे पास आया। उसके साथ एक युवक था। लड़के ने मुझे चलने को कहा। आधी रात को मैं उस लड़के के साथ मण्डल के घर से चल पड़ी। लड़के ने मुझे अपने आगे चलने को कहा। जब वह आदमी, जो लड़के के साथ था, चला गया, तो मैं उस लड़के के आगे चलने लगी। मैं लोकल बोर्ड की सड़क से जा रही थी। वह लड़का मेरे पीछे था। इतने में एक आदमी आया और चिल्लाने लगा। वह बालक भाग गया। उस आदमी ने मुझे पकड़ लिया और लोगों को बुलाया। लोग इकट्ठा हो गए और मुझे मिरासदार के घर ले गए। दूसरे दिन पुलीस ने मुझे मिरासदार के घर से छुड़ाया।"

श्रीमती प्रतिभाबाला ने अपने इसी बयान में यह भी कहा—"जिन-जिन आदमियों का मैंने इस बयान में नाम लिया है, मैं सभी को पहचान सकूँगी। मैं अब्दुल मन्नान चेयरमैन और उस डॉक्टर को भी पहचान लूँगी, यदि मैं उन्हें देख लूँ।"

कहना नहीं होगा, कि आसाम तथा बङ्गाल में ऐसी दयनीय घटनाएँ प्रतिदिन न जानें कितनी होती हैं। अन्य प्रान्तों में भी मुसलमान गुण्डों के द्वारा हिन्दू महिलाओं के साथ इस प्रकार के दारुण काण्ड उपस्थित किए जाते हैं, इसमें भी तनिक सन्देह नहीं। इस स्थान पर हम यह कहना भी आवश्यक समझते हैं कि इन घटनाओं में कठिनाई से प्रतिशत एक घटना की चर्चा समाचार-पत्रों में आ सकती है। अधिकतर तो ऐसा होता है कि मुस्लिम गुण्डों के हाथ से हिन्दू महिलाएँ निकल ही नहीं सकतीं—उनका पता ही नहीं मिल पाता। इसका कारण यह है कि मुसलमानों में पारस्परिक कलह चाहे जो कुछ भी हो, पर जब हिन्दुओं तथा अन्य विधर्मियों का प्रश्न आता है, तो उनमें ऐसे अवसरों पर शत्रु भी मित्र से अधिक, अपने शत्रुओं की सहायता करते हैं। किसी भी हिन्दू अथवा अन्य धर्म की ऐसी स्त्री छिपाने में, जो मुसलमान न हो, अधिकांश मुसलमान जनता मुसलमान गुण्डों की सहायता करती है। इस दशा में यदि हम यह कहें कि हिन्दू स्त्रियों को भगाने तथा उन्हें मुसलमान बना कर मुस्लिम समाज में जज़्ब कर लेने की प्रकृति प्रायः ६६ प्रतिशत मुसलमानों में है, तो कोई अत्युक्ति न होगी। हिन्दुओं को मुसलमानों की इस दूषित मनोवृत्ति से सावधान होकर इसका कोई उचित उपाय करना चाहिए।

इस स्थान पर और इस प्रसङ्ग में एक बात कहना हम आवश्यक समझते हैं और वह यह कि हिन्दुओं की नैसर्गिक सहनशीलता एवं शान्तिप्रियता का अनुचित लाभ उठा कर आज मुस्लिम जनता अधिकांश रूप में उच्छृङ्खल हो गई है। चाहे जिस स्थान में भी हिन्दू-मुस्लिम दङ्गा हो, परन्तु यदि मुसलमानों को अवसर मिला तो वे हिन्दू महिलाओं पर आक्रमण करने तथा उनका स्त्रीत्व नष्ट करने से बाज़ न आवेंगे। काश्मीर का ही प्रश्न ले लीजिए। काश्मीर एक हिन्दू रियासत है; परन्तु वहाँ सरकारी जेल पर मुसलमान गुण्डों के द्वारा आक्रमण किया गया। इतने से ही उनका सन्तोष न हुआ। स्थान-स्थान पर मुसलमान गुण्डों ने निर्दोष हिन्दुओं को लूटा, उनके मकान जलाए, उनकी महिलाओं का सतीत्व नष्ट किया × × × तात्पर्य यह कि किसी भी मुस्लिम रियासत में हिन्दुओं ने ऐसा किया होता तो न जाने हिन्दुओं के विरुद्ध प्रलय का दृश्य उपस्थित कर दिया जाता। अभागे हिन्दुओं को कहीं भी चैन नहीं। हिन्दू रियासतों में उनके साथ बुरा व्यवहार इसलिए होता है, कि हिन्दू देशी-नरेश मुसलमानों को अधिक सुविधाएँ देकर संसार के सम्मुख अपनी न्याय-प्रियता का आदर्श दिखलाते हैं। उदाहरण के लिए काश्मीर राज्य का ही दृष्टान्त हमारे लिए प्रस्तुत है। मुसलमानी रियासतों में हिन्दुओं के साथ इसलिए बुरा व्यवहार होता है, कारण वे मुसलमान नहीं हैं। उदाहरण के लिए जूनागढ़ की मुस्लिम रियासत का ही नमूना काफ़ी है। जूनागढ़ बम्बई प्रान्त की एक मुस्लिम रियासत है; परन्तु उसमें अस्सी प्रतिशत हिन्दुओं की आबादी है। अभी हाल में ही अर्थात् गत १८ जुलाई को शनिवार के दिन जूनागढ़ रियासत के बेरावल शहर में पाँच प्रसिद्ध हिन्दू नागरिकों की नृशंस हत्या के दारुण समाचार से हिन्दू-संसार एकबारगी काँप उठा था। जूनागढ़ में मुसलमानों ने इस हत्या-काण्ड के सम्बन्ध में हिन्दुओं के विरुद्ध जो षड्यन्त्र रचा था, उसका एक बृहत् विवरण जूनागढ़ के हिन्दू-प्रजा मण्डल ने समाचार-पत्रों में प्रकाशित करवाया है। उस महत्वपूर्ण विवरण का कुछ अंश इस प्रकार है:—

"जब से जूनागढ़ के वर्तमान दीवान ने वज़ीरी सँभाली है, तभी से रियासत के हिन्दू-मुसलमानों का सम्बन्ध स्नेहपूर्ण नहीं रहा। मौजूदा दीवान साहब ने उच्च-उच्च पदों पर मुसलमानों की इतनी अधिक भर्ती की है कि शासन के सभी ज़िम्मेदार ओहदों पर मुसलमानों का ही क़ब्ज़ा हो गया है।

"उक्त रियासत में मुसलमानों को जब हिन्दुओं के साथ लड़ने का कोई उपाय न मिला, तो हिन्दुओं के विरुद्ध एक मुक़दमा रचा गया। हिन्दू-मन्दिर के सामने आठ वर्ष के एक मुसलमान बालक की लाश मिली। बस फिर क्या था? मुसलमानों ने शोर मचा दिया कि हिन्दुओं ने इसकी हत्या की है। उस समय मुसलमानों ने हिन्दुओं पर आक्रमण किया, हिन्दू दुकानें लूट लीं। हिन्दू स्त्रियों का अपमान किया; पर तो भी कोई मुसलमान गिरफ़्तार न हुआ।

"इस घटना के बाद साम्प्रदायिकता की आग और भी सुलग उठी। एक निर्दय हत्याकारी षड्यन्त्र की

आयोजना की गई। बाहर से मुसलमान गुण्डे बुलाए गए। और उन्हें दङ्गे की विधिपूर्वक शिक्षा दी गई।

"१८ जुलाई को ज्वालामुखी फट पड़ा। जूनागढ़ के शहर बेरावल में उस दिन कोई भी मुसलमान मज़दूर नहीं आया। लगभग १०॥ बजे गुण्डे मुसलमानों के तीन दलों ने शहर पर हमला बोल दिया × × ×।

"प्रातःकाल ही कुछ मुसलमान मज़दूर हिन्दू-नेताओं के घरों पर जाकर उनके उठने-बैठने की जगहों का पता लगा आए थे। ऐसे समय पर उनका क़त्ल शुरू कर दिया गया। श्रीयुत जमनादास, श्रीयुत गोविन्द जी खुशहाल, डॉक्टर गोवर्द्धनदास राय जी, एम० बी० बी० एस०, श्रीयुत छोटेलाल नारायण जी और श्रीयुत रामजी प्रेमजी को क़त्ल कर दिया गया। ये सभी सज्जन हिन्दुओं के प्रतिष्ठित नेता थे। छः अन्य नेताओं को भी घातक चोटें पहुँचाई गईं। यह क़त्लेआम पहले से तजवीज़ किया हुआ था। इसके पूरा करने में तीन मिनट से अधिक समय न लगा। इसे पूरा करते ही गुण्डे भाग गए।

"समस्त जूनागढ़ स्टेट में आतङ्क फैला हुआ है। लगभग ३,००० परिवार जिहाद कर गए हैं और शेष हिन्दू बेरावल में अपने मकान बन्द किए हुए पड़े हैं। मुसलमान गुण्डे गलियों में हिन्दू पथिकों को तङ्ग करते हुए घूमते हैं। रियासत के दूसरे स्थानों पर भी आतङ्क फैला है और अधिकारीगण जो प्रायः सभी बाहर के मुसलमान हैं—स्थिति की उपेक्षा कर रहे हैं।"

तात्पर्य यह कि ऐसी दुर्घटनाएँ देश में न जाने कितने स्थानों में आज हो रही हैं। कभी मुलतान, कभी डेरा इस्माइल ख़ाँ, कभी काश्मीर, कभी जूनागढ़ × × × सब जगह हिन्दुओं पर मार है, उनकी स्त्रियों का सतीत्व नष्ट किया जा रहा है।

हमारा तात्पर्य हिन्दुओं के हृदय में साम्प्रदायिक विद्वेष फैलाना नहीं है। हम यह भी नहीं चाहते कि हिन्दू-जाति के हृदय में मुसलमानों के विरुद्ध घृणा के भाव उत्पन्न हों। हम तो केवल यही चाहते हैं कि हिन्दू-जाति अपने अधः-पतन की इस समस्या को समझे। हम चाहते हैं कि हिन्दू-जाति इसे अपने सङ्गठित न होने का पाप समझे और समझ-बूझ कर उस पाप का प्रायश्चित्त करे। जो जाति गुण्डों से अपनी रक्षा नहीं कर सकती; जिस जाति में अपनी महिलाओं की रक्षा का उत्तरदायित्व नहीं है, उसे जीवित रहने का कोई भी अधिकार नहीं।

इस प्रसङ्ग में एक बात आवश्यक जान पड़ती है। वह यह कि देश में हिन्दू-सभाओं का अस्तित्व कितने वर्षों से है। सन् १९२०-२१ के असहयोग आन्दोलन के बाद देश के कोने-कोने में हिन्दू-सभाएँ स्थापित की गई थीं। ये हिन्दू-सभाएँ केवल नाम-मात्र के लिए तो जीवित हैं, पर इससे हिन्दू जाति को कोई व्यावहारिक लाभ पहुँचा नहीं दीख पड़ता। प्रति वर्ष अखिल भारतीय हिन्दू-सभा के अधिवेशन होते हैं। दो-तीन दिनों तक अधिवेशन में ख़ूब चहल-पहल रहती है; अच्छे-अच्छे भाषण होते हैं; बड़े-बड़े प्रस्ताव उपस्थित और पास किए जाते हैं। पर क्या हम पूछ सकते हैं कि इन अधिवेशनों, भाषणों, प्रस्तावों के बाद देश की अखिल भारतीय हिन्दू-सभा ने पिछले १० वर्षों से हिन्दू-जाति का कौन उपकार किया ? हिन्दू-जाति का सङ्गठन कर, उसे शत्रुओं के आक्रमण से सुदृढ़ बनाने के निमित्त; मुलतान और डेरा इस्माइल ख़ाँ, जूनागढ़ और काश्मीर की दारुण घटनाओं की पुनरावृत्ति रोकने के निमित्त; प्रतिभाबाला जैसी सैकड़ों अभागिनी बहिनों की मुसलमान गुण्डों से रक्षा कर, जीवन के दारुण-अभिनयों से अपरिचित रखने के निमित्त आज हिन्दू-जाति की सब से बड़ी आवश्यकता इस बात की है कि वह अपना आन्तरिक सङ्गठन करे। हिन्दू-सभा का उद्देश्य काउन्सिलों में जगह प्राप्त करना तथा गोलमेज़ सभा में सम्मिलित होना नहीं है। उसका उद्देश्य महान और बृहत् है। हिन्दू-सभा का प्रमुख उद्देश्य हिन्दू-जाति को वाह्य आक्रमणों से सुरक्षित कर उसमें धार्मिक चैतन्यता जाग्रत करना है। इस धार्मिक चैतन्यता के मङ्गल जागरण में हिन्दू-जाति केवल अपनी ही नहीं, वरन् देश और मानव-समाज का कल्याण कर सकेगी। गोलमेज़ अथवा काउन्सिलों में जगह प्राप्त करने का छोटा एवं निरर्थक उद्देश्य हिन्दू-जाति को उसके इस धार्मिक जागरण में बाधक होगा और इसका परिणाम यह होगा कि हिन्दू-जाति के नेता अपने व्यक्तिगत स्वार्थों के निमित्त इसे निकट-भविष्य में ही रसातल में पहुँचा देंगे।

कामना

[कवि-सम्राट् पं० अयोध्यासिंह जी उपाध्याय 'हरिऔध']

बन सकें सब दिन उतना ही,
दिखाते हैं सब दिन जितना।
सभी जिससे नीचा देखें,
न माथा ऊँचा हो इतना !

❀

वार पर वार न कर पाए,
न लोहू पीकर हो सेरी।
न बन जाएँ तलवारों सी,
भवें टेढ़ी होकर मेरी !

❀

भरें दामन उन दुखियों का
सदा जो दानों को तरसें।
ग़रीबों के गँव के जो हों,
आँख से मोती वे बरसें !

❀

सुने तो दुखियों के दुखड़े,
न भर देने से भर जाए।
आह को रहे कान करता,
कान जो खोले खुल पाए !

❀

बने क्यों कोई जी खट्टा,
बात मीठी ही कह पाए ?
रस भरा है जिसमें उस पर,
जीभ क्यों राल न टपकाए ?

गड़ें क्यों सोच-सोच कर यह,
नाम बिकता है तो बिक ले।
अनारों के दानों सा रस,
पिलाते रहें दाँत निकले !

❀

फूल से हैं तो सुख देवें,
फूल जैसा खिल-खिल कर के।
न दहलाएँ औरों का दिल,
होंठ मेरे हिल-हिल कर के !

❀

चाँदनी जलतों पर छिड़के,
सोत रस की ही कहलाए।
हँसा देवे जो रोतों को,
हँसी वह होठों पर आए !

❀

निकाले दिल की कसरों को,
भूल जाए मेरा-तेरा।
खोल दे जी की गाँठों को,
खुले जो खोले मुँह मेरा।

❀

प्यार के हाथों से गुँध कर,
गलों में गजरे बन कर पड़ें।
खिला दें जी की कलियों को,
फूल जो मेरे मुँह से झड़ें।

भेद

['मुक्त']

अँधेरा रहते ही उस दिन प्रतिमा फूल चुनने चली गई। छोटा सा बग़ीचा था। आम और जामुन के दो-चार बड़े और गुलाब-चमेली, बेला-जुही, मोगरा, हरसिंगार आदि के छोटे-छोटे कई पेड़ इधर-उधर लगे हुए थे। बीच में सुन्दर क्यारियाँ बनी हुई थीं। एक ओर पत्थर का छोटा सा चबूतरा था।

प्रतिमा आकर चबूतरे पर बैठ गई। शरीर में स्फूर्ति भरने वाली दक्खिनी वायु अलस भाव से चल रही थी। कृष्ण-पक्ष की तृतीया का चन्द्रमा रात्रि के शेष भाग में, आसमान पर चमक उठा था। उसकी मृदु-मलिन ज्योत्स्ना जादू की तरह धरती पर बिछ गई थी। तारक-बालिकाओं की हँसी भी फीकी पड़ गई थी। उदास दृष्टि से वे भविष्य के क्षितिज की ओर देख रही थीं। प्रतिमा यही सब देखने लगी—देखते-देखते बेसुध हो गई, आत्म-विस्मृत हो गई।

आम के पेड़ पर बैठी हुई काली कोयल सहसा कूक उठी—कू ! कू !!

प्रतिमा का स्वप्न भङ्ग हुआ। चौंक कर उसने देखा, धीरे-धीरे प्रकाश की एक हलकी चादर धरती के अङ्गों पर फैल रही है। वायु की तरङ्गों में आम्र-मञ्जरियों का मधुर सौरभ हिलोरें ले रहा है। पूर्व-क्षितिज में कुछ-कुछ लालिमा फैल रही है। मन ही मन प्रतिमा ने सोचा, कोयल क्या बोलती है ?

लेकिन, कोयल फिर नहीं बोली। प्रतिमा थोड़ी देर प्रतीक्षा करती रही; फिर अपनी बड़ी-बड़ी आँखों को विस्मय से और भी फैला कर, तरु-पत्रों के अन्तराल में छिपी हुई कोयल को ढूँढ़ने का प्रयत्न करने लगी।

सहसा कोयल फिर बोल उठी—कू-ऊ-ऊ ! कू-ऊ-ऊ !!

प्रतिमा ने उसके स्वर में स्वर मिलाया—कू-ऊ ! कू-ऊ-ऊ !!

थोड़ी देर तक यही क्रम चलता रहा। प्रतिमा कोयल के साथ बाज़ी लगा कर उसके मन का भेद जानना चाहती थी, लेकिन वह कुछ भी न समझ सकी।

निर्मल आकाश में सहसा बादल का एक काला टुकड़ा दीख पड़ा। हवा के एक झोंके से उड़ कर वह प्रतिमा के सिर पर मँडराया और देखते ही देखते बरस कर अदृश्य हो गया। प्रतिमा अवाक् होकर प्रकृति की यह छलना देखती रही।

दूर पर पिता का स्नेह-मधुर कण्ठ-स्वर सुन पड़ा—पगली बेटी ! आज फूल चुनना ख़तम न होगा क्या ? पूजा कब होगी ? प्रतिमा को तब होश आया। झटपट उठ कर चँगेली में वह फूल चुनने लगी। पानी बरसने से फूलों में मिट्टी लग गई थी। कुछ फूल टूट कर धरती पर भी गिर पड़े थे। प्रतिमा ने उन्हें यत्न से उठा कर चँगेली में रख लिया। फूल लेकर वह पिता के पास पहुँची।

सदानन्द अधेड़ अवस्था के मनुष्य हैं। स्वस्थ-दीर्घ शरीर है। बढ़ी हुई दाढ़ी और सिर के लम्बे-लम्बे बाल सफ़ेद हो चले हैं। तपस्या का

तेज मुँह पर दीप्त हो रहा है। धर्मात्मा मनुष्य हैं, दिन-रात का अधिकांश समय सन्ध्योपासन और जप-तप में ही व्यतीत होता है। घर में पिता-पुत्री के अतिरिक्त और कोई नहीं है।

फूल आ जाने पर सदानन्द पूजा पर बैठे। कांस्य-पात्र में फूलों को रख कर जब वे उस पर गङ्गा-जल छिड़कने लगे, तो देखा, पगली लड़की ज़मीन पर गिरे हुए फूल भी चुन लाई है। प्यार-भरी झिड़की के स्वर में वे बोले—मिट्टी में मिले हुए फूल कहीं भगवान पर चढ़ते हैं, पागल!

कह कर सदानन्द पूजा में तल्लीन हुए और बेचारी बालिका एक विषम समस्या लेकर अपने शून्य वातायन पर जा बैठी।

छत पर, सड़क से लगी हुई एक छोटी सी खिड़की थी, प्रतिमा की वह मानो जीवन-सङ्गिनी थी। पिता जब ईश्वरोपासना में तल्लीन रहते, तो प्रतिमा इसी खिड़की पर बैठ कर, रास्ते में आने-जाने वाले रङ्ग-बिरङ्गे लोगों को विस्मय-मुग्ध नेत्रों से देखा करती थी। कभी-कभी अपनी सूनी आँखों से, वह नील-गगन के अछोर क्षितिज की ओर देखते-देखते बेसुध हो जाया करती थी। बरसात की कितनी ही अँधेरी रातें, गर्मी की चिलचिलाती दुपहरिया और जाड़े की गोधूलि, वह इसी तरह बिता चुकी थी। वह खिड़की ही उसके बाल्य-चञ्चल जीवन की एकान्त सङ्गिनी थी।

आज भी प्रतिमा उसी खिड़की पर आ बैठी, वह सोचने लगी—पिता ने कहा है, मिट्टी में मिले हुए फूल भगवान पर नहीं चढ़ते। अगर ऐसा है तो भगवान फूल को मिट्टी में मिलाते ही क्यों हैं? फूल को भगवान ने पैदा किया है और मिट्टी को भी। फिर जब फूल मिट्टी में मिल जाता है, तो भगवान उसे ग्रहण क्यों नहीं करते? और मिट्टी में मिल जाने में फूल का दोष ही क्या है? भगवान क्या ऐसे निष्ठुर हैं, जो निर्दोष को भी दण्ड देते हैं?

बालिका प्रतिमा यही सब बातें सोचते-सोचते जैसे किसी स्वप्न में डूब गई।

❁

एक दिन सबेरे फूल चुनने का दृश्य फिर दीख पड़ा। आज प्रतिमा फुलवारी में अकेली नहीं थी; उसी के समान, उमर में कुछ-छोटे-बड़े और भी कितने ही बच्चे, छोटी-छोटी चँगेलियाँ लिए, फुदक-फुदक कर, होड़ लगा कर फूल चुन रहे थे। उन सबों के मन में बड़ा उत्साह था। दुर्गा-पूजा के लिए वे शहर के भिन्न-भिन्न मुहल्लों से यहाँ फूल चुनने आए थे। प्रतिमा ने इनका उत्साह देखा, तो उसे कौतूहल हुआ, वह स्वयं भी उनके उत्साह से कुछ स्फूर्ति पाने की चेष्टा करने लगी, पर उसे आज कुछ नवीनता न जान पड़ी। फूल चुनना—यह उसके रोज़ के आवश्यक कार्यों का एक अङ्ग था। वह अलस भाव से, किन्तु सावधानी के साथ फूल चुनती रही—उसे भय था, कहीं मिट्टी में सने हुए फूल भी और फूलों के साथ न चुन जायँ।

प्रतिमा ने शायद अपने जीवन में कभी एक साथ इतने बच्चों को नहीं देखा था। इसी से आज इनके बीच में पड़ कर वह अपने मन में एक प्रकार की गुदगुदी सी अनुभव करने लगी। इन बच्चों का उमङ्ग, इनका उल्लास, इनकी फुर्ती और चुलबुलापन देख कर प्रतिमा क्षण भर के लिए फूल चुनना भूल कर हसरत-भरी निगाहों से इनकी ओर देखने लगी। वह इन लोगों में मिलना चाहती थी, मिल कर इनसे बातें करना चाहती थी, पर उसे साहस न होता था। बार-बार इनकी ओर देखती हुई, एक लम्बी साँस खींच कर, वह फिर चुपचाप फूल चुनने लगी।

प्रतिमा ने मन ही मन इन बच्चों के साथ अपने जीवन का मिलान किया। उसे जान पड़ा, मानो उसके जीवन में इस तरह का उल्लास, इस तरह की उमङ्ग और चुलबुलाहट के नाम से कोई चीज़ ही नहीं है। गम्भीरता, चुप्पी, एकान्त-चिन्तन और शान्ति—यही मानो उसके हिस्से की चीज़ें हैं, लेकिन हाय! यह चुलबुलापन कितने लोभ की वस्तु है!

बालकों के झुण्ड को पार करके प्रतिमा उस ओर गई, जिधर कुछ बालिकाएँ हरसिंगार के फूल अपनी झोलियों में भर रही थीं। उनकी फ़ुर्ती देख कर प्रतिमा अवाक् रह गई। एक बार पेड़ को झकझोर कर, वे दौड़ कर फ़ुर्ती के साथ, दोनों हाथों से फूल चुनने लगती थीं। उनके चुनने में मिट्टी लगे हुए, सूखे हुए अथवा ताज़े फूल का कोई विचार नहीं था। सामने जो पड़ जाता, वही फूल उनकी झोली में स्थान पा जाता। प्रतिमा ने आग्रहपूर्वक यह दृश्य देखा और देखते-देखते साहस करके, वह उन बालिकाओं के बहुत समीप चली गई।

कुछ देर तक चुपचाप खड़ी होकर वह बालिकाओं की क्रीड़ा देखती रही; फिर धीरे-धीरे उनके नज़दीक जाकर, अपनी वाणी में शरीर की सारी दृढ़ता भर कर उसने कहा—तुम लोग इस तरह फूल क्यों चुनती हो? मिट्टी में गिरा हुआ फूल क्या भगवान पर चढ़ता है?

बालिका, प्रतिमा के अज्ञान पर एक रहस्य-भरी हँसी हँस कर बोली—ओहो, तुम्हें शायद नहीं मालूम, तभी तो!

प्रतिमा अवाक् होकर प्रश्न की दृष्टि से उसकी ओर देखती रही।

"हम लोग भगवान पर चढ़ाने के लिए थोड़े ही फूल चुन रही हैं........."

"..............."

"इससे हम लोग अपनी साड़ी रँगेंगी।"

प्रतिमा का कण्ठ तब फूटा। उसने कहा—साड़ी रँगोगी? पागल हो! फूल से कहीं साड़ी रँगा करते हैं?

अबकी बालिका अपनी हँसी न रोक सकी, हो-हो करके हँस पड़ी। अप्रतिभ होकर प्रतिमा चुपचाप खड़ी रही। बालिका ने कहा—तुम्हें शायद कुछ नहीं मालूम! सीधे जङ्गल से आ रही हो।

प्रतिमा क्या उत्तर देती। वह चुपचाप खड़ी रही।

"इस फूल को हम लोग सुखा देती हैं और फिर गरम पानी में घोल कर इसका रङ्ग बनाती हैं। उसी से कपड़े रँगते हैं—कैसे सुन्दर, पीले, धप्-धप्!"

प्रतिमा ने सुना और चुप हो रही। मन ही मन सोचा कि कल मैं भी इसी तरह फूल चुन कर अपनी साड़ी रँगूँगी।

❀

पहले-पहल कोई नया काम करो तो थोड़ा सङ्कोच मालूम होता है, यह मनुष्य का स्वभाव ही है। प्रतिमा को उस दिन रात भर नींद नहीं आई। झिलमिल तारों के अस्फुट आलोक में लेट कर रात भर वह सोचती रही कि सवेरा होने पर किस तरह वह फूल चुन लाएगी, किस तरह उन्हें सुखाएगी और किस तरह उनका रङ्ग बना कर उससे साड़ी रँग लेगी। वह रङ्ग कितना सुन्दर होगा और उससे साड़ी कैसी खिलेगी और उसे पहनने पर कैसे उसकी दूनी आभा हो जायगी। कल्पना के दर्पण में एक-एक करके यह सारे चित्र प्रतिमा देख गई—कितने मधुर, आकर्षक और लोभनीय!!

लेकिन रात जब बीत चली और अन्धकार के स्थान पर प्रकाश की छाया धरती पर उतरने लगी, तो प्रतिमा के मन में सङ्कोच की लज्जा उठ खड़ी हुई। तब वह सवेरा होने की इन्तज़ार

न कर सकी और अपनी चँगेली लेकर चुपचाप बग़ीचे की तरफ़ चल दी—जैसे चोरी करने जा रही हो।

जाकर उसने हरसिंगार के पेड़ को ज़ोर से एक बार झकझोर दिया और तब फ़ुर्ती से फूल चुन-चुन कर चँगेली भरने लगी। थोड़ी ही देर में चँगेली भर गई और वह झटपट घर जाकर उसे एक कोने में उँडेल आई और तब फिर पूजा के लिए फूल चुनने आई।

सदानन्द जब पूजा पर बैठने गए तो देखा, घर के एक कोने में ताज़े-बासी, सूखे-अधकचरे हरसिंगार के फूलों का ढेर लग रहा है, लेकिन प्रतिमा अभी भी फूल चुन कर नहीं लौटी, तब यह फूल यहाँ कौन रख गया? और किस लिए? वे यही सोच रहे थे, तब तक प्रतिमा आती दीख पड़ी। देखते ही सदानन्द ने पूछा—बेटी, ये फूल कैसे हैं?

सङ्कोच से आँखें झुका कर, लज्जा-विजड़ित स्वर में प्रतिमा ने कहा—ऐसे ही बाबू जी?

"कौन लाया है इन्हें?"

"मैं!"

"तू कब लाई? किसलिए लाई?"

"बहुत तड़के चुन लाई थी। इनके रङ्ग से साड़ी रँगूँगी।"

सदानन्द गम्भीर हो गए। उनके मुख पर सिकुड़न पड़ गई। थोड़ी देर तक वे मौन होकर कुछ सोचते रहे, फिर चुपचाप पूजा पर बैठ गए। प्रतिमा कुछ समझ न सकी।

उस दिन पूजा में सदानन्द का जी न लगा। वे सोचने लगे—हाय! मेरी भोली बच्ची ने किन पापों के प्रतिफल से इस बचपन में वैधव्य पाया है? कुछ जाना नहीं, देखा नहीं और अभिशापों के इस भयानक संसार में छोड़ दी गई! अपनी एक छोटी सी साध भी पूरी करने का अधिकार इसे नहीं है। कितने उमङ्ग से फूल चुन कर लाई है—लेकिन हाय! रँगी हुई साड़ी पहनना तो इसके भाग्य में ही नहीं लिखा है। लेकिन इसे कैसे कहूँ कि बेटी! तू यह सब झञ्झट न पाल; तेरे संसार में आकांक्षाओं का स्थान नहीं है। तब क्या उसे, जो कुछ करती है, करने दूँ? लेकिन इसका परिणाम क्या होगा? मैं पिता हूँ। माएँ कहती हैं कि पिता का हृदय कठोर होता है, लेकिन मेरा जी इस तरह गला क्यों जा रहा है? क्या स्नेह से दुर्बल होकर मैं कर्तव्य की अवहेलना करूँगा? नहीं, मुझे कठोर ही बनना पड़ेगा। मैं अपने आप यह अनर्थ न होने दूँगा।

उधर प्रतिमा ने बड़ी उमङ्गों से दिन भर फूल सुखाया और शाम होने के पहले ही पतीली में गर्म होने को पानी चढ़ा दिया। सदानन्द उसकी उतावली और उमङ्ग देख रहे थे और ज्यों-ज्यों यह देखते, त्यों-त्यों उनका सङ्कल्प दुर्बल पड़ता जाता था, लेकिन फिर उन्होंने अपने को दृढ़ बनाया और धीरे से पुकारा—बेटी!

"हाँ बाबू जी!"—चौंक कर प्रतिमा सदानन्द की ओर दौड़ चली।

"क्या कर रही हो बेटी?"

"पानी गर्म कर रही हूँ।"

"किसलिए?

"साड़ी रँगने के लिए—फूल जो लाई हूँ।"

"लेकिन, तुम्हें रँगी हुई साड़ी नहीं पहननी चाहिए बेटी!"—पिता का गला भर आया।

"क्यों?"

"तुम्हारी क़िस्मत में नहीं लिखा है।"

"क़िस्मत किसे कहते हैं, बाबू जी?"

"भगवान की इच्छा नहीं है कि तुम वैसी साड़ी पहनो।"

"क्यों? तुम्हारे भगवान का मैंने क्या बिगाड़ा है?"

"........"

"तुम्हारे भगवान ऐसे क्यों हैं, बाबू जी? उस दिन तुमने कहा कि धूल में गिरा हुआ फूल भगवान ग्रहण नहीं करते, आज कहते हो भगवान की इच्छा नहीं है कि मैं रँगी हुई साड़ी पहनूँ। ये भगवान कैसे निर्दयी हैं? फूल भी भगवान ने ही बनाया है और धूल भी; लेकिन फूल जब धूल में मिल जाता है, तब वे उसे ग्रहण नहीं करते। तुम उनसे कहते क्यों नहीं कि वे ऐसा क्यों करते हैं?"

भोली बालिका के इस प्रश्न के उत्तर में सदानन्द को रुलाई के सिवा और कुछ न सूझ पड़ा और वे प्रतिमा को गोद में लेकर फूट-फूट कर रो पड़े।

❈

बहुत दिन बीत गए। प्रतिमा ने रँगी हुई साड़ी नहीं पहनी, पर भगवान के प्रति उसके मन में कुछ श्रद्धा न रह गई। भगवान की पूजा के लिए वह अब भी फूल चुनने जाया करती थी, लेकिन उसमें श्रद्धा की अपेक्षा अभ्यास का ही अधिक भाग होता था। पिता की बातें निरन्तर उसके मन में जागरूक रहती थीं और इन दिनों में भगवान के बारे में अनेक बार वह अच्छी-बुरी बातें सोच चुकी थी। उसके बाल-हृदय में भगवान की एक ऐसी सुन्दर, ऐसी कोमल, ऐसी सहानुभूति और ममता से भरी हुई कल्पना थी, जिसमें वह भगवान की 'भगवानता' अनुभव करती थी, लेकिन पिता की बातों ने कल्पना का वह साम्राज्य क्षण भर में नष्ट कर दिया और वह बार-बार सोचने लगी कि भगवान का अगर यही स्वरूप है, तो वे कितने सङ्कीर्ण, कितने असहृदय, असहनशील और कितने निष्ठुर हैं। मनुष्य में ईश्वरत्व कभी-कभी देखा जाता है, लेकिन ईश्वर में क्या मनुष्यत्व भी नहीं है?

प्रतिमा अब बालिका न रह गई थी। बचपन का उषाकाल बिता कर वह यौवन के मधुर प्रभात के दरवाज़े पर आ खड़ी हुई थी। उसकी चञ्चलता गम्भीरता के रूप में बदल गई थी; उसकी सरलता और अल्हड़पन में लज्जा का मधुर सम्मिश्रण हो गया था। वह स्वयं अपने में कुछ परिवर्तन अनुभव करने लगी थी। सृष्टि की प्रत्येक वस्तु अब उसके सम्मुख एक नवीन और आकर्षक रूप लेकर आ रही थी। बसन्त में, पतझड़ के बाद, वृक्ष अरुण-कोमल पत्तियों का वस्त्र अब भी पहनते थे, कोयल अब भी बोलती थी, पपीहा अब भी आर्त-स्वर से पुकार उठता था, लेकिन ये सब बातें अब प्रतिमा के मन में कौतुक के स्थान पर किसी गोपन-रस का सञ्चार कर जाया करती थीं।

❈

आकांक्षाएँ जीवन-पथ में फ़िसलन की वह सीढ़ियाँ हैं, जहाँ से मनुष्य गिरता अनेक बार, किन्तु उठता एक ही बार है। यह बात सभी लोग जानते हैं, लेकिन जानने से क्या होता है? हमने ऐसा आदमी नहीं देखा, जिसके जीवन में तीव्र लालसाओं का तूफ़ान कभी न उठ खड़ा हुआ हो। इच्छाओं से द्वन्द करते हुए लोग देखे गए हैं, इच्छाओं का निरोध भी लोगों ने किया है; लेकिन वे उठी तो सभी के मन में हैं। अमुक व्यक्ति तपस्वी है, या धर्मात्मा है, या ज्ञानी है; लालसाओं के प्रवाह ने कभी इस बात पर ध्यान नहीं दिया। मनुष्य दुर्बलताओं का पुतला है, वरन् मनुष्य इसीलिए मनुष्य है कि उसमें दुर्बलताएँ हैं। यह नहीं कि मनुष्य में केवल दुर्बलता ही हो; उसमें दुर्बलता जहाँ है, वहीं बल भी है, दृढ़ता भी है; एक शब्द में मनुष्य दो विरोधी भावनाओं का आश्चर्य-सम्मिश्रण है और इसीलिए वह महान है, स्पर्धा की चीज़ है।

लेकिन प्रतिमा तो विधवा थी, उसे किसी तरह की आकांक्षा अपने मन में पालने की क्या आवश्यकता थी ? वह किसी तरह की लालसा मन में उठने ही क्यों देती ? उसे अधिकार क्या था ? समाज ने उसके जीवन में अभिशाप की जो ज्वाला सुलगा दी थी और जिसे वह 'पूर्व-जन्मों का पाप' कह कर सन्तोष करता है, उसी के अन्तराल में छिप कर, नवयौवन के नवीन उषाकाल की रङ्गीनी के साथ-साथ, सौ-सौ गोपन लालसाएँ प्रतिमा के मन में उठ खड़ी हुईं। वह अपने मन में एक अभाव का अनुभव करने लगी, लेकिन नहीं जानती थी कि यह अभाव कैसा है। उसके जीवन में यह जो निषेध की दीवार पग-पग पर आकर खड़ी हो जाती है, वह है ही क्यों, यह बात उसे कभी समझ में नहीं आई। भोली-भाली सरल बालिका, वह भला विवाह और वैधव्य का रहस्य क्या समझे ?

ज्ञान मनुष्य के लिए सब से बड़ा दण्ड है और निषेध सब से बड़ी कुप्रवृत्ति। ज्ञान के तराज़ू पर तौल कर जब मनुष्य अच्छाई और बुराई, पाप और पुण्य तथा औचित्य और अनौचित्य का निर्णय करता है, उसी समय वह अपने लिए संसार में पग-पग पर कठिनाइयों की सृष्टि करता है। मनुष्य के मन में जब ज्ञान का दम्भ उत्पन्न होता है, तो वह कहता है—यह अच्छा है, ऐसा करो ; यह बुरा है, ऐसा मत करो। और जब वह कहता है 'ऐसा मत करो', तो संसार के मनुष्यों का एक बड़ा समुदाय, कौतूहल से प्रेरित होकर, उस ओर झपटता है—वहाँ क्या है, यह देखने के लिए। ऐसा कौतूहल मानव का स्वभाव है। इस स्वभाव को कोई दूर नहीं कर सकता।

बच्चे अज्ञान होते हैं न, इसीलिए उनके मन में न अच्छाई होती है और न बुराई ; वे निर्विकार होते हैं और यह निर्विकार अवस्था कैसी लोभनीय होती है ? मनुष्य चाहे तो इस अवस्था को जीवन भर बनाए रख सकता है, लेकिन वह ऐसा करना नहीं चाहता ; ज्ञान का दम्भ उसे ऐसा करने नहीं देता। ज्ञान के पलड़े पर अगर वह सत् और असत् को तौलने का अभ्यास करना छोड़ दे, तो बहुत अंशों में उसकी बचपन की यह निर्विकार अवस्था अक्षुण्ण बनी रह सकती है। वह बच्चों का सा ही सरल और सुखमय जीवन व्यतीत कर सकता है।

बच्चे जब तक अज्ञान रहते हैं, जब तक उनमें ज्ञान का विषैला प्रकाश नहीं फैलता, तब तक वे नङ्गे फिरा करते हैं, उनके मन में कभी पाप की छाया भी नहीं छू जाती। लेकिन ज्यों-ज्यों वे बड़े होते जाते हैं, ज्यों-ज्यों उनके हृदय में ज्ञान का प्रकाश फूटने लगता है, त्यों ही त्यों वे पापी होने लगते हैं। लज्जा पाप का ही एक अङ्ग है। मनुष्य इसीलिए लज्जित होता है कि वह पापी है बच्चों में जब ज्ञान का पाप उदय होता है, तो उन्हें आवरण की ज़रूरत होती है, फलतः वे कपड़ा पहन कर अपने मन का पाप छिपाना चाहते हैं, लेकिन यह नहीं जानते कि जिस चीज़ से वे अपना मन छिपाना चाहते हैं, वही उनके मन का साइनबोर्ड बन जाता है। मनुष्य कितना अज्ञान है ! कितना मूर्ख है !

प्रतिमा भी आख़िर कब तक इस ज्ञान-दण्ड से वञ्चित रहती ? धीरे-धीरे सब बातें उसकी समझ में आने लगीं। उसके जीवन में निषेध की जो इतनी प्रखर धारा प्रवाहित हो रही है, उसका कारण भी उसने समझा और तब उसी निषेध की ओर दोनों हाथ फैला कर वह दौड़ चली—जैसे किसी आकर्षण से खिंच कर चली जा रही हो। लालसाओं का उन्माद मनुष्य में ऐसी ही विस्मृति भर देता है।

❀

प्रतिमा ने लालसाओं के समुद्र में अपने को अवश्य डाल दिया था, तभी उसे प्रवाल मिला—जैसे अकूल सागर में तैरती हुई नौका को मज़बूत पतवार मिल गया हो। प्रतिमा ने अपने को लालसाओं के समुद्र में डूबने-उतराने को छोड़ तो दिया था, लेकिन जब वह दो-एक बार डूबी-उतराई तो उसे घबराहट मालूम पड़ने लगी और उसकी साँस फूल गई। तब वह घबरा कर एक आधार ढूँढ़ने लगी। प्रवाल जब सहसा ही उसे मिल गया, तो—डूबते हुए प्राणी की तरह—अधीर होकर उसने प्रवाल को जकड़ लिया—इस भाव से कि वह अब कभी इस आधार को न छोड़ेगी।

प्रतिमा से प्रवाल की कैसे मुलाक़ात हुई, कैसे जान-पहचान हुई, कैसे प्रेम हुआ, कैसे घनिष्ठता बढ़ी—कहानी को फैलाना चाहें तो इन बातों का बड़ा रोचक वर्णन हम कर सकते हैं, लेकिन हमें इतना अवकाश नहीं है; शायद हमारे पाठक-पाठिकाओं को भी न हो। इसलिए हम इतना ही कह सकते हैं कि प्रतिमा ने प्रवाल को इतना प्यार किया कि वह अपनी मान-मर्यादा, अपनी परिस्थिति, पिता की प्रतिष्ठा और स्वयं अपने आप तक को भूल गई। प्रेम में ऐसी ही विस्मृति होती है।

प्रेम के सपने बड़े मधुर होते हैं, कल्पनाएँ बड़ी आकर्षक होती हैं और कहानियाँ बड़ी दिलचस्प होती हैं। लेकिन प्रेम जब पल्ले पड़ता है, तो जान पड़ता है कि उस मधुरता में कितनी बड़ी अग्नि-परीक्षा छिपी हुई होती है। और ख़ासकर हमारे देश में, जहाँ प्रेम पाप समझा जाता है, जहाँ समाज प्रेम पर शासन करता है। प्रेम हमारे यहाँ सदाचार के कठोर नियमों में जकड़ा हुआ है—बेचारे की साँस फूल रही है। एक तो प्रेम यों भी हमारे यहाँ बुरा समझा जाता है और फिर अगर वह कहीं विधवा का प्रेम हुआ, विवाहिता का प्रेम हुआ, तब तो शिव ! शिव !! घोर अनर्थ हो गया। जैसे प्रेम एक ख़ास सर्किल (Circle) की चीज़ हो और उसे उसी के अन्दर मूव (Move) करना हो। साधारणतः प्रेम हमारे यहाँ ज़बर्दस्ती कराया जाता है। एक ग़रीब लड़की से एक बेचारे लड़के का पल्ला बाँध दिया और आज्ञा दी कि इससे प्रेम करो। अब अगर उससे प्रेम कर सको तो अच्छा है, वरना चूल्हे में जाओ। ज़िन्दगी भर रोते-झींकते रहो। तुम्हारे सुख-सन्तोष का प्रबन्ध करे, समाज को इतनी फ़ुर्सत कहाँ है ? उसे और भी तो काम हैं।

प्रतिमा को भी ऐसा ही अनुभव हुआ। उसने देखा कि प्रेम करना बहुत आसान नहीं है। बार-बार अपवाद और सामाजिक तिरस्कार की विभीषिका उसे कँपा देती थी। अनेक तरह के सङ्कल्प-विकल्प उसके मन में होते और वह बहुत सोच कर भी यह निश्चय न कर पाती थी कि वह ठीक रास्ते पर है या ग़लत ? वह पाप कर रही है या पुण्य ? वह अपनी असहाय और आकुल आँखें पसार कर चारों ओर देखती थी कि कोई उसे बता जाय कि उसका यह प्रेम उचित है या अनुचित ? लेकिन उसे कोई न दीख पड़ता था। लक्ष-लक्ष नर-नारी-समन्वित, महा जन-कोलाहल-संयुक्त इस मानव-बहुल संसार में एक भी व्यक्ति उसे ऐसा न दिखलाई पड़ा, जो उसके इस प्रश्न का उत्तर देता। तब उसने अपने हृदय पर हाथ रख कर उसी से पूछा। उसने धक्-धक् के शब्दों में उत्तर दिया—प्रेम करना पाप नहीं है। प्रेम ही जीवन है, प्रेम ही स्वर्ग है।

लेकिन हृदय तो अपना ही है। उसने अगर ठीक सलाह न दी तब ? इसी से उसने एक दिन प्रवाल से ही पूछा—प्रवाल ! हम लोग क्या यह पाप कर रहे हैं ?

प्रवाल थोड़ी देर चुप होकर प्रतिमा के मुँह

की ओर देखता रहा। फिर उसने कहा—तुम्हें क्या मालूम होता है प्रतिमा ?

"कह नहीं सकती। कुछ भी समझ में नहीं आता। एक अजीब उलझन सी जान पड़ती है।"

"लेकिन यह जान कर ही क्या करोगी, प्रतिमा ?"

"कुछ नहीं। मन को थोड़ा सन्तोष होगा। इतना देखती हूँ, इतना सुनती हूँ, मन जैसे फटा जाता है। जान पड़ता है, जैसे पागल हो जाऊँगी।"

"अगर पाप हो, तब तुम क्या करोगी ?"

"........."

"और अगर पुण्य हो तब ?"

"........"

"क्या सोच रही हो ?"

"एक ही बात—पाप हो चाहे पुण्य, तुम्हें छोड़ न सकूँगी। तुमने मुझे ऐसे ही बन्धन में बाँध लिया है।"

"प्रतिमा, प्रेम करना पाप नहीं है और अगर पाप है तो यह करने के लिए दुनिया ही हमें मजबूर करती है। हमारी अपेक्षा, संसार ही इस मामले में अधिक दोषी है। क्यों उसने तुम्हें इतना पङ्गु, इतना दुर्बल और इतना असहाय बना दिया है ?"

प्रतिमा सोचने लगी कि सचमुच ही तो। क्यों संसार ने हमें इतना पङ्गु बना दिया है ?

प्रवाल ने कहा—लेकिन, हमारे प्रेम में थोड़ा सा पाप ज़रूर है; क्योंकि हम छिप कर प्रेम करते हैं। हममें थोड़ी सी दृढ़ता आ जाय, अगर हम संसार के सामने कहने का साहस अपने में भर लें कि हम एक-दूसरे को प्यार करते हैं, तो फिर हमारा प्रेम पूर्ण पवित्र हो जाय। बोलो प्रतिमा, तुममें इतना साहस है ?

प्रतिमा थोड़ी देर चुप रही; फिर बोली—हाँ, है। जो बात सच्ची है, उसे किसी के सामने कह देने में साहस की क्या ज़रूरत है ?

"तो सब से पहले तुम्हारे पिता पर यह बात प्रकट करनी होगी।"

"..............."

"मैं स्वयं ही उनसे सब कह लूँगा। तुम्हें सिर्फ़ स्वीकार कर लेना होगा। कर सकोगी ?"

"हाँ !"

❃

सत्य का प्रकाश इतना उग्र, इतना प्रखर और इतना तेजस्वी होता है कि मनुष्य सहसा उसे बर्दाश्त नहीं कर सकता; बर्दाश्त करने की उसकी आदत नहीं है। अनादि-काल से मनुष्य को अपना भला-बुरा मिथ्या के अन्धकार में छिपा कर रखते आने का अभ्यास सा पड़ गया है। इसीसे वैसे बहुत से काम, जो वास्तव में बुरे हैं, तब तक बुरे नहीं समझे जाते, जब तक छिपे रहते हैं; लेकिन उसी घटना के प्रकाशित हो जाने पर वह बुरी हो जाती है। हम ऐसे अनेक निम्न श्रेणी के दुराचारी जीवों को जानते हैं, जिनकी समाज में प्रतिष्ठा है और इसलिए कि वे अपने दुराचार को छिपाए रखने की चेष्टा करते और क्षमता रखते हैं। यह नहीं कि उनके दुराचारों की ख़बर लोगों को न हो, लेकिन वे स्वयं उसे स्वीकार नहीं करते; फिर समाज में उनके लिए कोई लाञ्छन नहीं है। लेकिन अगर एक निरीह बालिका—जिसने अभी दुनिया की रङ्गीनी को स्पर्श भी नहीं किया है—संसार के उन सुखों की अभिलाषा करती है, जिन्हें चाहना उसका हक़ है, तो वह पतिता, कलङ्किनी और दुराचारिणी बताई जाती है। कैसा अन्धेर है, कैसा बुद्धि-विपर्यय है !!

प्रतिमा क्या जानती थी कि पिता के सामने अपना हृदय खोल कर रखने का इतना भयानक परिणाम होगा ! ओह ! मनुष्य कितना स्वार्थी,

यूरोप की वे सात सुन्दरियाँ, जो सौन्दर्य-प्रतियोगिता में भाग लेने के अभिप्राय से टेक्सा गई हैं। (बाँईं ओर से) मिस नॉरबर्ग (स्वीडन), मिस फ़ाईबर्ग (जर्मनी), मिस जॉन्सन (नॉर्वे), मिस महमाइस (फ़ान्स), मिस शैंज़ (ऑस्ट्रिया) और मिस दूचातों (बेल्जियम)

कितना सङ्कीर्ण और कितना डरपोक होता है ! प्रतिमा के मन में आज विद्रोह भरा हुआ था।

उसके पिता ने प्रवाल को बुरी-बुरी गालियाँ दीं, बुरा-भला कहा और पीटा तथा प्रतिमा को भी कलङ्किनी कह कर घर से निकाल दिया। प्रतिमा इस समय बुरी हालत में, घर से दूर, एक मन्दिर में बैठ कर न जाने कितना आगा-पीछा सोच रही थी।

उसने सोचा—मेरी अपेक्षा पिता को अपनी इज़्ज़त और प्रतिष्ठा अधिक प्रिय है, तो वे उसी को लेकर रहें। एक ज़िन्दगी को बर्बाद करने का उन्हें क्या हक़ है ? मैं अगर प्रवाल को चाहती हूँ, तो क्या बुरा करती हूँ ? मैं अगर विधवा हूँ, तो इसमें मेरा क्या दोष है ? कोई आकर मुझे बता जाय कि मैं अपने ही दोष से विधवा हुई हूँ ! क्यों मैं दूसरों के अपराध का दण्ड भोगूँ ? दुर्बल हूँ तो इसीलिए क्या दुनिया मुझे पीस डालेगी ? मैं क्या बुरा चाहती थी ? क्या मैं दुराचारिणी थी ? नहीं; दुनिया चाहती है कि मैं दुराचारिणी होऊँ। एक भली लड़की अगर एक भले लड़के से शादी करके अपने जीवन को एक क़रीने से बिताना चाहे, तो उसे परिवार और समाज के कोप का सामना करना पड़ेगा, लेकिन गुपचुप रूप से वह भयानक से भयानक कुकर्म कर सकती है। मैं ऐसा क्यों करूँ ? जब सुख-स्वच्छन्दता से जीवन बिताने का पथ सामने है, तो क्यों समाज का अभिशाप अपने सिर पर ढोती फिरूँ ? नहीं, यह मुझसे न होगा। समाज अपना सम्मान लेकर सुखी रहे, पिता अपनी प्रतिष्ठा क़ायम रख कर प्रसन्न हों, दुनिया में जहाँ मुझे सुख-शान्ति मिलेगी, मैं ढूँढ़ लूँगी।

अन्धकार धीरे-धीरे घना होता आया। मन्दिर के आसपास के वृक्षों की सघन छाया भयानक मालूम पड़ने लगी। प्रतिमा अकेली डर रही थी। तभी किसी के पैरों की चाप सुन पड़ी। उत्सुक होकर प्रतिमा सीढ़ियों की ओर देखने लगी। देखा, आगन्तुक प्रवाल ही था। आकर उसने पुकारा—प्रतिमा !

"हाँ।"

"तैयार हो ?"

"हाँ !"

"भय तो नहीं मालूम होता ?"

"भय किसका प्रवाल ? जिस दुनिया को मेरी परवा नहीं है, मैं ही उसको परवा क्यों करूँ ?"

"ठीक। तब चलो !"

"चलो।"

"देखें, दुनिया में हम पतितों के लिए भी कहीं जगह है या नहीं।"

सन्ध्या के अन्धकार में, देखते ही देखते, दोनों प्रेमी अदृश्य हो गए। बगीचे की सूखी पत्तियों ने अपने मृदु-मर्मर स्वर से उनका अभिनन्दन किया। पेड़ की डाल पर बैठे हुए पपीहे ने पुकार कर कहा—पी कहाँ ! उस समय तारक-बालिकाएँ अपने स्निग्ध-मधुर मुस्कराहट से किसी भावी शकुन की सूचना दे रही थीं।

❀

दूसरे दिन गाँव भर में यह सम्बाद फैल गया कि सदानन्द की लड़की प्रवाल के साथ निकल गई।

सदानन्द गाँव के मामूली आदमी नहीं थे। गाँव में उनका बड़ा सम्मान और बड़ी प्रतिष्ठा थी। सच्चरित्रता, पूजा-पाठ और धार्मिकता के लिए वे गाँव भर में मशहूर थे। इसीलिए गाँव छोड़ कर वे गाँव से बाहर एक कुटिया में आ बसे थे। उनकी लड़की का जब ऐसा अधःपतन लोगों ने सुना, तो मुँह बाकर रह गए। ऐसा घोर कलियुग ! हे भगवान !! कैसे संसार का बेड़ा पार होगा ? इतने बड़े धर्मात्मा की बेटी के ये लच्छन !!

गाँव में घर-घर, व्यक्ति-व्यक्ति के मुँह पर यही चर्चा चल पड़ी। जिसने सुना उसी ने आश्चर्य किया, उसीने सिर पीट लिया, उसी ने गम्भीरतापूर्वक विचार करते हुए टीका-टिप्पणी की और एक फ़ैसला सुना दिया। इन लोगों में कुछ ऐसे पुराने घाघ भी थे, जिनका सम्बन्ध जवानी में चमारिनों और अहीरिनों से रह चुका था; लेकिन उसे कौन जानता है ? ये लोग समाज के मुखिया हैं।

होते-हवाते यह ख़बर सदानन्द को भी मिली। क्रोध, अपमान और लज्जा से उनका हृदय फटने-फटने हो उठा। उनका जी करने लगा कि ज़हर खाकर सो रहें या सिर फोड़ कर आत्म-हत्या कर लें। लेकिन आत्म-हत्या करना इतना सरल नहीं होता। अपमान और ग्लानि की यह दारुण ज्वाला जब यों शान्त नहीं हो सकी, तो सदानन्द पूजा की कोठरी में जाकर ठाकुर जी की गद्दी के सामने मुँह के बल गिर पड़े और बच्चों की तरह फूट-फूट कर रोने लगे। रोते ही रोते, अपने आप उन्होंने कहा—हे भगवान ! इस बुढ़ापे में यह तुमने क्या दिखलाया ? इसे दिखाने के पहले ही तुमने मुझे उठा क्यों नहीं लिया ! ज़िन्दगी भर तुम्हारे चरणों की सेवा के अतिरिक्त मैंने और कुछ नहीं किया, उसका क्या मुझे यही परिणाम मिलना था ? हे अन्तर्यामी, बतला दो, मुझे किस पाप का यह प्रतिशोध मिला है ? कौन सी चूक मुझसे हुई, जो यह दिन देखना पड़ा ?

यही सब कह-कह कर और देवता के पैरों पर लोट-लोट कर सदानन्द ख़ूब रोए। रोने से जी कुछ हलका हो गया, लेकिन पत्थर के भगवान पत्थर की तरह ही कठोर बन कर बैठे रहे। उन्होंने सदानन्द से कुछ भी न कहा। तब ख़ुद ही रो-धोकर सदानन्द चुप हो गए।

लेकिन यह आग ऐसी न थी, जो घड़ी-दो घड़ी रोने से बुझ जाती। उस समय थोड़ी देर के लिए उसकी ज्वाला मन्द पड़ गई ज़रूर, लेकिन समय पाकर थोड़ी देर बाद ही वह फिर धधक उठी। पागल-से होकर सदानन्द सोचने लगे कि यह अघटन-घटना कैसे हो गई। मैं इतना धार्मिक, मैंने इतना पूजा-पाठ किया, मैंने इतना विद्योपार्जन किया, मैंने इतना तप किया, ज़िन्दगी भर सत्य और धर्म के सिवा और मैंने किसी विषय का चिन्तन नहीं किया, फिर मेरी कन्या ऐसी कलङ्किनी कैसे निकली ? हे भगवान ! इसका क्या रहस्य है ?

सदानन्द उद्भ्रान्त से हो गए। उनके धार्मिक दम्भ ने उन्हें पागल बना दिया। निर्जल-निरन्न कई दिन बीत गए। वे अपनी जगह से हिले तक नहीं। चुपचाप बार-बार इन्हीं बातों को सोचते रहे। उनकी आँखें लाल हो गईं, मुँह काला पड़ गया, होंठ सूख गए और वे राक्षस की तरह भयानक दीख पड़ने लगे।

तीसरे या चौथे दिन शाम को अपने आप ही उनकी आँखें मुँद गईं। तन्द्रा में उन्होंने एक अपूर्व दृश्य देखा—एक अद्भुत-अपूर्व लोक, जहाँ न ठीक-ठीक प्रकाश ही था, न अन्धकार ही; प्रकाश और अन्धकार का एक आश्चर्य-सम्मिश्रण था। वहाँ कितने ही नग्न-अर्धनग्न, दुर्बल-कङ्काल, रोगी-पीड़ित, भयानक चेहरे वाले मनुष्य पंक्तियों में बैठे थे। एक अपूर्व तेजस्वी व्यक्ति उनके बीच में खड़ा होकर मुस्करा रहा था और प्रेम से उनसे बातें कर रहा था। उसके शरीर पर एक लँगोटी के सिवा और कुछ नहीं था। वह रोगियों की अपने हाथ से शुश्रूषा कर रहा था; भूखों को अन्न बाँट रहा था ; नङ्गों को वस्त्र दे रहा था। सदानन्द आश्चर्य से यह सब देखते रहे, फिर डरते-डरते एक व्यक्ति के पास जाकर उन्होंने धीरे से पूछा—यह कौन लोक है ? ये कौन लोग हैं और वह महापुरुष कौन है ?

व्यक्ति ने आश्चर्य से सदानन्द की ओर देखते हुए कहा—यह वैकुण्ठ है। ये सब संसार के उत्पीड़ित, पापी और पतित लोग हैं और वे हैं साक्षात् नारायण। क्या तुम उन्हें नहीं पहचानते?

सदानन्द की आँखें कपार पर चढ़ गईं—यह आदमी कहता क्या है? मज़ाक़ तो नहीं कर रहा? यह वैकुण्ठ इसी तरह का होता है? और यहाँ पापियों का क्या काम? और ये नारायण ही कैसे हैं? इनका सुन्दर पोत परिधान क्या हुआ? मुकुट कहाँ गया? शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म क्या हो गए?

सदानन्द यह सब सोच ही रहे थे, तब तक वह तेजस्वी व्यक्ति स्वयं ही सदानन्द के पास चला आया। आकर उसने हँसते हुए पूछा—सदानन्द! तुमको बड़ा आश्चर्य हो रहा है न? क्यों?

सदानन्द दौड़ कर उसके पैरों पर लोट गए और बोले—महाराज! मैं बहुत घबरा गया हूँ। आप जो कोई भी हों, ठीक-ठीक अपना परिचय मुझे दीजिए।

तेजस्वी व्यक्ति फिर एक बार बड़ी मधुर हँसी हँसा। बोला—सदानन्द, इतने ही ज्ञान पर तुम्हें अपनी धार्मिकता का इतना दम्भ है? जीवन भर तुम किसकी पूजा-आराधना करते रहे हो?

"ईश्वर की, भगवान की!"

"नहीं, झूठ बोलते हो। तुम उसे पहिचानते भी नहीं। तुमने गहने-कपड़ों और पत्थर की मूर्ति की पूजा की है। ईश्वर मैं हूँ, मेरा नाम नारायण है।"

"............" अवाक्, विह्वल, स्तम्भित।

"सदानन्द, ईश्वर को तुमने कभी पहिचाना नहीं, पहिचानने की चेष्टा भी नहीं की है। तुमने अपनी कल्पना, अपनी वासना और अपने ज्ञान में ईश्वर को लपेट कर रखना चाहा है। इसी कारण, तुमने अपना जीवन तो नष्ट किया ही, दूसरों को भी प्रकृत मार्ग पर जाने देने का पथ अवरुद्ध कर दिया है। तुम्हारा अहङ्कार स्वयं ईश्वर की सृष्टि करना चाहता है। तुम लोग मेरे भक्त नहीं, दुश्मन हो। मेरे भक्तों ने मेरा प्रकृत रूप छिपा कर संसार के सामने एक काल्पनिक रूप रक्खा है और इस प्रकार संसार में मेरे प्रति अविश्वास और घृणा की सृष्टि की है। सदानन्द, सदानन्द, सोचो तो, क्या ईश्वर की ईश्वरता दुखियों को दुखाने में, पतितों को पीड़ा देने में और गिरे हुओं को कुचल देने में ही है? यह तो मानुषिक भी नहीं, पाशविक प्रवृत्ति है। तुम क्या अपने भगवान को इतना गिरा हुआ बनाना चाहते हो? मेरी ओर आश्चर्य से क्या देखते हो सदानन्द, मुझे शृङ्गार करने का अवसर कहाँ है? जिसके राज्य में इतने पापी, इतने पीड़ित और इतने दुखी हों, उसे शृङ्गार करने की फ़ुर्सत कब मिल सकती है? सदानन्द, मुझे देखो और पहचानो। मुझे तुम्हारे ऊपर भी दया आती है! ओह! तुम कितने मूर्ख हो? तुमने सीधी तौर से मुझे देखने की कोशिश नहीं की, मेरे नाम पर पत्थर की मूर्ति बनाई, उसे गहने और कपड़ों से सजाया, उसके सामने घण्टों पूजा-पाठ किया, उसको आरती उतारी, उसके सामने घण्टा बजाया। तुम्हारी इस अकर्मण्यता से किसे क्या लाभ हुआ? मानव-जीवन क्या इस प्रकार व्यर्थ खोने के लिए है? इससे क्या मुझे सन्तोष हो सकता है? सदानन्द, कुम्हार जब घड़े बनाता है, तो उसे आशा रहती है कि इसमें ठण्डा जल भर कर मैं अपनी प्यास बुझा सकूँगा। मैं भी एक कुम्हार हूँ। मैंने घड़ों के रूप में तुम लोगों को बनाया है। मेरी आशा है कि तुम लोग मेरे

कार्यों में मेरे सहायक बन कर, मेरी प्यास बुझाओगे, लेकिन तुम सहायता पहुँचाने के बदले संसार में मेरी हँसी कराते हो—केवल अपने अज्ञान से, दम्भ से। सदानन्द, जो पथ भूल गए हैं, जो दोषी हैं, जो पापी हैं, वे मेरे सब से प्यारे हैं। उनके प्रति मेरे प्राणों की सहानुभूति है। मनुष्य के मन में प्रतिहिंसा है, इसीसे वह समझता है, ईश्वर के मन में भी है। लेकिन यह भूल है। ईश्वर किसी को दण्ड नहीं देता। अच्छे-बुरे दोनों हो उसकी सन्तान हैं। जो अच्छे हैं, वे तो अपनी अच्छाई से सब जगह अपने लिए स्थान बना लेते हैं, लेकिन जो बुरे हैं, उन्हें यदि ईश्वर की गोद में भी शरण न मिले, तो बताओ, वे कहाँ जायँ? इसीसे ईश्वर को सब से ज़्यादा प्यारे वे हैं, जो गुनहगार हैं; जो सताए हुए हैं; जिन्होंने स्वयं ही सर्वनाश कर लिया है। ओह! वे कितने भोले हैं, कितने प्यारे हैं। सदानन्द, वे तुम्हारी सहानुभूति चाहते हैं, तुम्हारी दया चाहते हैं। तुम उनसे घृणा मत करो, उन्हें प्यार करो। उन्हें प्राणों की सहानुभूति दो और दया के शीतल जल से नहलाओ। तभी तुम मानवता की सीमा अतिक्रम करके अतिमानवता के अधिकारी हो सकोगे। तभी तुम मेरी यथार्थ पूजा कर सकोगे और तभी तुम मेरी प्रसन्नता भी प्राप्त कर सकोगे। जाओ सदानन्द, लोगों को मेरा असली स्वरूप बतला दो; लोगों को मेरी पूजा का ठीक-ठीक तरीक़ा समझा दो। बतला दो कि स्वर्ग-नरक सब मनुष्य के मस्तिष्क की कल्पना है। ईश्वर के यहाँ स्वर्ग-नरक कुछ नहीं है। वहाँ केवल एक स्नेहमय पिता की गोद है, जिसमें भले-बुरे सबके लिए स्थान है। जो भले हैं, वे समर्थ होकर स्वयं ही उस गोद में स्थान पाते हैं; लेकिन जो पतन के गम्भीर गह्वर में गिरे हुए हैं, ईश्वर उन्हें स्वयं अपने स्नेहमय हाथों से उठा कर गोद में बिठा लेते हैं। स्वर्ग और नरक मनुष्य ने बनाए हैं—लोगों को बुराई से डराने के लिए। लेकिन उन लोगों ने इसके द्वारा मनुष्य को इतना डरा दिया है कि वह ईश्वर से ही डरने लगा है। ईश्वर डराता-धमकाता नहीं; केवल प्यार करता है। जो लोग ईश्वर की ही तरह सबको प्यार करने लगते हैं, वे महान होते हैं; ईश्वर की गोद में उन्हें अधिक जगह मिलती है। सदानन्द, शायद तुम अपनी बेटी की बात सोच रहे हो! वह मेरी बड़ी प्यारी बेटी है। उसके प्रति मेरे मन में अगाध सहानुभूति है। तुम उसके निकट अपराधी हो। उसे ढूँढ़ो; अगर मिल सके तो उसे प्यार करो। तभी तुम्हारी धार्मिकता सार्थक होगी। तभी तुम मेरी प्रसन्नता पा सकोगे।"

सहसा, सब कुछ अन्तर्धान हो गया। सदानन्द की आँखें खुल गई थीं। कमरे में चारों ओर अन्धकार फैला हुआ था, लेकिन भगवान की प्रत्येक बात जैसे अब भी उनके कानों में गूँज रही थी। पहले तो उन्हें यह सब सपना ही जान पड़ा, लेकिन जब प्रत्येक बात को याद कर-करके वे उस पर विचार करने लगे, तो उन्हें उन पर अविश्वास करने का साहस न हुआ। रात भर वे उसी प्रकार पड़े-पड़े इन्हीं बातों की उधेड़-बुन में पड़े रहे।

सवेरा होने पर फिर किसी ने सदानन्द को ठाकुर जी की पूजा करते हुए नहीं देख पाया। ईश्वर का आदेश पाकर वे उसकी प्रकृत पूजा के लिए प्रयत्नशील होने के लिए घर छोड़ कर चले गए थे।

❈

दस वर्ष बाद—

एक दिन फिर पिता-पुत्री की मुलाक़ात हुई—गङ्गा के तट पर, बालू के बिस्तरे पर। प्रतिमा मृत्यु-शय्या पर थी, सदानन्द पास बैठ कर प्रेम से उसकी परिचर्या कर रहे थे।

सहसा प्रतिमा ने आँखें खोलीं।—"पिता!" उसने पुकारा—"पिता! मैं क्या सचमुच ही तुम्हें देख रही हूँ या यह सपना है? ओह! अब क्या मैं तुम्हारे चरणों को स्पर्श करने लायक़ भी रह गई हूँ?"

"बेटी! इतना अधीर न होओ। तुम मेरी प्यारी पुत्री हो, मैं तुम्हारा पिता हूँ। तुम्हें कितने दिन पर देखा है, बेटी!"

स्नेह से वृद्ध पिता पुत्री के माथे पर हाथ फेरने लगे। इङ्गित से उन्हें मना करते हुए प्रतिमा ने कहा—नहीं पिता, मुझे इतना प्यार न करो। मैं बर्दाश्त न कर सकूँगी। मैं पापिनी हूँ, मुझसे घृणा करो, मुझे छुओ मत।......हाय! तुम्हें क्या हो गया है? जब मैं तुम्हारा प्यार चाहती थी, तुमने मुझे घर से निकाल दिया था। आज, जब मैं तुम्हारी घृणा चाहती हूँ, तुम मुझे प्यार कर रहे हो? ओः!

"बेटी! प्रवाल ने क्या तेरे साथ विश्वास-घात किया?"

"नहीं पिता! वे देवता थे। उन्होंने मेरी रक्षा के लिए सब कुछ किया, अपनी जान तक दे दी। उनके बाद, उनका एक चिन्ह मेरे पास रह गया था। ओह! वह कैसा प्यारा मेरा बच्चा था! उसकी नीली-नीली चमकदार आँखें मुझे आज भी नहीं भूल रही हैं। उसे दुष्टों ने मार डाला, मेरा सर्वनाश किया और आज—आज पिता! मैं संसार की घृणा बटोर कर मर रही हूँ। लेकिन तुम्हें क्या हो गया है? तुम क्यों नहीं मुझसे घृणा करते?"

"बेटी, ईश्वर ने मेरी आँखें खोल दीं। उन्होंने स्वयं प्रकट होकर मुझे बतलाया कि मैं ग़लत मार्ग पर था। उन्होंने अपनी प्रकृत पूजा का मार्ग मुझे बता दिया है। बेटी, स्वयं भगवान तुझे प्यार करते हैं, फिर मैं क्यों न करूँगा?"

"भगवान?—भगवान मुझे प्यार करते हैं? ओह! जिसने जीवन में कभी भगवान के अस्तित्व का भी विश्वास नहीं किया, जो पापिनी एक दिन के लिए भी ईश्वर को नहीं याद कर सकी, भगवान उसे प्यार करते हैं; और जीवन में ईश्वर-चिन्तन, पूजा-पाठ और धर्म-चर्चा के सिवा, जिसने और कुछ नहीं किया, भगवान उससे सन्तुष्ट भी नहीं हैं! भगवान की यह कैसी लीला है! हाय! लोग भगवान को देख नहीं पाते, समझ नहीं पाते और उन पर अविश्वास करने लगते हैं!! भगवान के मन का यह भेद कितने लोग समझ पाते होंगे? धर्म के दाम्भिक लोग भगवान के बारे में कैसी ग़लत-फ़हमी दुनिया में फैला रहे हैं और किस तरह उनके प्रति जन-समाज में अविश्वास और अश्रद्धा उत्पन्न कर रहे हैं?"

प्रतिमा चुप हो गई। सदानन्द उसके सिर-हाने बैठ कर उसकी बातें सुनते रहे। आकाश में उस समय बाल-चन्द्रमा मुस्कराता हुआ, भगवान की एक अत्यन्त प्यारी सन्तान की महायात्रा का दृश्य देख रहा था।
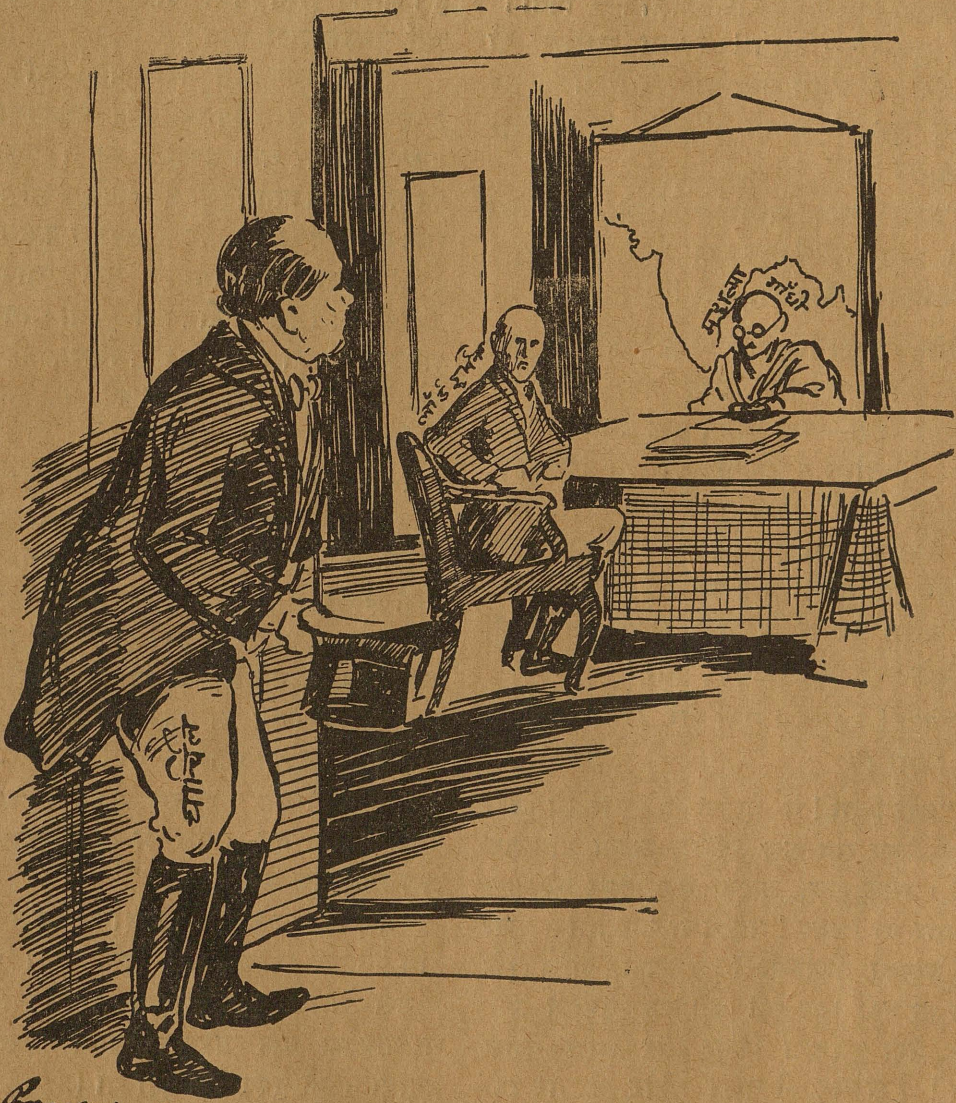
Sept-1931

मि० चर्चिल—(लॉर्ड इर्विन से) माई लॉर्ड, इस 'अर्द्ध-नग्न फ़क़ीर' का इतना सम्मान मैं कदापि सहन नहीं कर सकता !

लॉर्ड इर्विन—(आँख मार कर) you seem to be most tactless Mr. Churchill.

वर्तमान मुस्लिम-जगत

[एक डॉक्टर ऑफ़ लिट्रेचर]

(गताङ्क से आगे)

वर्तमान जागृति का आरम्भ

यह इतिहास का नियम है कि जिस समय कोई देश या जाति बहुत गिरने लगती है, उसी समय उसके हितचिन्तक भी पैदा होने लगते हैं और उसको उठाने का प्रयत्न आरम्भ होता है। १८वीं शताब्दी में जब भारतवर्ष मराठा-साम्राज्य के पतन से और ईस्ट-इण्डिया कम्पनी की सत्ता के उत्थान से क्षत-विक्षत हो गया, तो १९वीं शताब्दी में इसको सँभालने के यत्न किए जाने लगे। इस यत्न के दो स्वरूप थे ; एक अङ्गरेज़ों की नक़ल और दूसरा उनका विरोध। १८५७ का युद्ध विदेशियों को शस्त्र द्वारा मार भगाने का यत्न था। राजा राममोहन राय तथा तत्कालीन कॉङ्ग्रेसवादी अङ्गरेज़ी सभ्यता, संस्कृति और शासन-प्रणाली आदि पर मुग्ध होकर अङ्गरेज़ों की नक़ल करते हुए सरकार से अनुनय-विनय करके अपने अधिकार प्राप्त करना चाहते थे। चीन, जापान तथा पश्चिमी एशिया में उत्थान को इन तीनों विधियों का अवलम्बन किया गया था। इसी तरह इस्लाम के पुनरुत्थान में इन तीनों विधियों का प्रयोग स्पष्ट दिखाई देता है।

१८वीं शताब्दी इस्लाम-चन्द्र को अमावस्या थी और शुक्ला प्रतिपदा भी। यह विशाल शक्ति क्षीण होने को ही थी कि उत्थान की चेष्टा आरम्भ हो गई। इस चेष्टा का पहला स्वरूप था, आन्तरिक सुधार; दूसरा था, यूरोप का अनुकरण और अन्तिम तथा तीसरा था, अनुकरण द्वारा यूरोप का विरोध।

अरबियों का स्वातन्त्र्य-प्रेम

अरब इस्लाम का जन्म-स्थान है। हम कह सकते हैं कि इस्लाम अरबियों की उन्नत भावनाओं तथा महत्वाकांक्षाओं का मुहम्मद द्वारा स्फुटीकरण है। इसलिए इस्लाम के तत्व, उद्देश्य और आदर्श को जितना अरब समझ सकता है, उतना अन्य कोई देश नहीं समझ सकता। यह इस्लाम का ब्रह्मर्षि देश है। मुहम्मद, अबूबकर तथा उमर ने इसी देश को अपने जन्म से अलङ्कृत किया था। यही कारण था कि जब बग़दाद के ख़लीफ़े स्वच्छन्द और निरङ्कुश सम्राट बन गए और अरब-निवासी उनको किसी प्रकार से इस्लाम के मूल-सिद्धान्तों का अनुसरण करवाने में असमर्थ हुए, तो उन्होंने यही अच्छा समझा कि ऐसे शासकों के राज्य को छोड़ कर अपने ही देश में वापस जाकर बसना अच्छा है। इसलिए अनेक स्वतन्त्रता-प्रेमी सैनिक, कृषक, कलाविद तथा विद्वान बग़दाद राज्य को छोड़ कर अरब में वापस चले आए थे। यहाँ विस्तृत रेगिस्तान उनका दुर्ग था और नख़लिस्तान उनका आश्रयस्थल। न वे किसी का शासन मानते थे और न किसी को कर देते थे। स्वतन्त्र वायुमण्डल में क़ुरान का पाठ करते थे और धार्मिक प्रेम को उन्नत बनाते थे। ख़लीफ़ाओं ने इनको दबाने के कई प्रयत्न किए, पर रेगिस्तान सदा इनका अटल सहायक सिद्ध हुआ। तुर्की का सुल्तान नाम-मात्र के लिए इनका सम्राट था, पर वास्तव में ये लोग स्वयं ही सम्राट थे और स्वयं ही प्रजा।

अब्दुल वहाब

इस्लाम के अन्धकार-युग की निशीथ रजनी में इस रेगिस्तान से सिंहनाद हुआ, जिसने निद्रालु मुसलमानों को सचेत किया और इस्लाम के प्राचीन पथ का अनुसरण करने का आदेश दिया। यह मुसलमानों के पुनः प्रभात की अज़ान-ध्वनि थी। शुक्ल प्रतिपदा का प्रथम चन्द्र-दर्शन था। यह आवाज़ थी, मुहम्मद बिन अब्दुल वहाब की, जिसने मुर्दा दिलों में फिर उष्ण रक्त का सञ्चार किया और अन्धकारमय युग को पुनः प्रकाशमय

कर दिया। अब्दुल वहाब का जन्म १७०० ईस्वी में अरब के नज्द नामक प्रान्त में हुआ था। जन्म से ही धर्म और विद्या में उसकी रुचि थी। उसने शीघ्र ही विद्वत्ता तथा साधुता में यथेष्ट प्रसिद्धि प्राप्त कर ली। २० वर्ष की अवस्था में ही उसने मक्के की यात्रा की। मदीने में शिक्षा प्राप्त की और ईरान आदि कई देशों में भ्रमण करके वह अपने देश को वापस आया। अपने भ्रमण में उसने देखा कि इस्लाम धर्म में अनेक बुराइयाँ, अन्धविश्वास तथा विलासिता आदि दुर्गुण घुसते जा रहे हैं। इन दृश्यों से दुखी होकर उसने धार्मिक सुधार करने का दृढ़ सङ्कल्प किया और इस उद्देश्य की पूर्ति के हेतु अरब में चारों ओर भ्रमण करने लगा। इस प्रकार वह कई वर्ष तक भ्रमण करता रहा और अन्त में सऊद वंश के सरदार मुहम्मद सऊद को उसने अपना शिष्य बना लिया।

मुहम्मद सऊद

मुहम्मद सऊद अरब में उस समय एक प्रसिद्ध और शक्तिशाली सरदार था। उसके शिष्यत्व से अब्दुल वहबा की महिमा तथा प्रसिद्धि और भी बढ़ गई और अपने मत के प्रचार में उसको अनेक प्रकार की सुविधाएँ मिलने लगीं। शनैः-शनैः रेगिस्तानी अरबियों का फिर वैसा ही धार्मिक तथा राजनैतिक सङ्गठन बन गया, जैसा पैग़म्बर मुहम्मद ने किया था। जब अब्दुलवहाब, सन् १७८७ में, मर गया तो उसके योग्य तथा श्रद्धालु शिष्य ने उसके पवित्र कार्य को पूर्ववत् जारी रक्खा और वहाबी राज्य अबूबकर तथा उमर की ख़िलाफ़त का स्मरण दिलाने लगा। मुहम्मद सऊद के पास काफ़ी सैनिक-बल था, परन्तु प्रजामत को दबाने में उसने कभी इसका उपयोग नहीं किया। वह अपने को एक ज़िम्मेदार शासक समझता था और अपने प्रजा की उचित स्वतन्त्रता में कभी हस्तक्षेप नहीं करता था। उसका शासन सबल, किन्तु न्यायानुकूल था। उसके न्यायाधीश योग्य तथा ईमानदार थे। उसके शासन-काल में लूट-मार का प्रायः नाम भी नहीं सुनाई देता था और न कभी प्रजा की शान्ति भङ्ग होती थी। विद्या-प्रचार का ख़ूब यत्न किया जाता था। प्रत्येक नख़लिस्तान में एक-एक पाठशाला स्थापित की गई थी।

मक्का और मदीने की विजय

अपने देश को दृढ़ और सङ्गठित कर चुकने के पश्चात् मुहम्मद सऊद ने मुस्लिम-संसार को विजय करने तथा सुधारने का विचार किया। उसका प्रथम सङ्कल्प था, मक्का और मदीने पर अधिकार जमाना और उसका यह सङ्कल्प १६वीं शताब्दी के आरम्भ में ही सफल भी हो गया। ये दोनों नगर उस समय तुर्कों के अधिकार में थे, परन्तु वहाबियों के धार्मिक जोश की बढ़ती हुई बाढ़ के आगे नहीं टिक सके। इसके अतिरिक्त तुर्कों को अरबी लोग एक प्रकार से आततायी समझते थे और उनको पक्के मुसलमान नहीं मानते थे। मक्का और मदीना पर अधिकार जमा चुकने पर मुहम्मद सऊद सीरिया पर आक्रमण करने की योजना कर ही रहा था कि, सन् १८१४ में, उसकी मृत्यु हो गई। इस समय वहाबी लोग काफ़ी सङ्गठित तथा सबल हो चुके थे और ऐसा जान पड़ता था, मानो उनकी सुधार-लहर सम्पूर्ण मुस्लिम-जगत में पहुँच कर इस्लाम को पुनः सरल, सबल तथा निर्मल बना देगी।

वहाबियों की पराजय

परन्तु ऐसा नहीं हुआ। जब तुर्की के सुलतान से वहाबियों की विजयी बाढ़ न रुक सकी, तो उसने अपने प्रसिद्ध वीर सरदार मुहम्मदअली से सहायता माँगी। मुहम्मदअली अलबेनिया का शासक था और उसकी समर-चातुरी तथा नेतृत्व-कौशल के बल से मिसिर भी उसके अधिकार में आ चुका था। वह यूरोपीय समर-विधि की महत्ता को स्वीकार करता था, इसलिए उसने अपनी सेना को यूरोपियन अफ़सरों द्वारा सङ्गठित और शिक्षित किया था। उसके सैनिक अलबेनिया के पहाड़ी लोग थे, जो वैज्ञानिक क़वायद सीख कर बड़े प्रबल सैनिक बने हुए थे। मुहम्मदअली ने सुलतान के निमन्त्रण को स्वीकार कर लिया और मक्का तथा मदीना वहाबियों से वापस छीन लिए। इस युद्ध में सिद्ध हो गया कि वैज्ञानिक बल के सामने धार्मिक जोश या कट्टरता की कुछ दाल नहीं गल सकती। मुस्लिम जगत पर अपनी सत्ता स्थापित करने का वहाबियों का वह स्वप्न विलीन हो गया। मुहम्मदअली की विजय ने वहाबियों की विजय-बाढ़ को चाहे दबा दिया, परन्तु उनका मतवाद

सैनिक बल से दबाया नहीं जा सकता था। नज्द का प्रान्त सुधार-योजना का केन्द्र बन गया और असंख्य यात्री, जो मक्का और मदीना में प्रति वर्ष आते थे, वे सुधार-सन्देश लेकर अपने देशों को लौटने लगे। अब्दुल वहाब और मुहम्मद सऊद की योजना तथा आकांक्षाएँ देश-देशान्तरों में पहुँच गईं और जाति-हितैषी तथा धर्म-हितैषी मुसलमान सब जगह उन पर विचार करने लगे और देश तथा काल के अनुकूल सब स्थानों में सुधारों का आरम्भ होने लगा।

वहाबियों के विचारों का प्रचार

वहाबियों की विचार-धारा इधर पञ्जाब और उधर अलजीरिया तक पहुँच गई। जिस समय पञ्जाब में महाराजा रणजीतसिंह जी राज्य करते थे, उस समय वहाँ के मुसलमानों में एक अपूर्व जोश और आन्दोलन उमड़ा और सय्यद अहमद नामक एक कट्टर वहाबी नेता इनका सरदार बन गया। परन्तु सन् १८३० में सिक्खों ने इस सङ्गठन को नष्ट कर दिया, परन्तु फिर भी वहाबी-विचार नष्ट नहीं हो सके और सन् १८४६ में पञ्जाब-विजय के पश्चात् अङ्गरेज़ सरकार को वहाबियों के कारण बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। अफ़ग़ानिस्तान तथा सीमान्त प्रदेश में अब तक वहाबियों के विचार तथा भावनाओं का प्रचार है। इस समय ईरान में भी एक अपूर्व सुधार-जागृति हुई। परन्तु इसका ध्येय वहाबी आन्दोलन से भिन्न था और तत्कालीन मुस्लिम जगत में जो व्यापक जागृति हो रही थी, यह उसीका स्फुटीकरण था। इसी समय अलजीरिया का प्रसिद्ध सय्यद मुहम्मद बिन सेनूसी मक्का की यात्रा करने आया और वहाँ से वहाबी-सिद्धान्तों पर मुग्ध होकर वापस लौटा। स्वदेश लौट कर उसने मुसलमानों का सङ्गठन किया और धार्मिक सुधार का कार्यक्रम अपने हाथ में लिया, जिसमें उसे कल्पनातीत सफलता प्राप्त हुई।

उनके सिद्धान्त

वहाबी आन्दोलन भारतवर्ष के आर्य-समाज की भाँति आरम्भ में धार्मिक सुधार आन्दोलन था, परन्तु आगे चल कर इसने राजनैतिक रूप धारण कर लिया। आरम्भ में इसका ध्येय था, कुरीतियों का निवारण, अन्धविश्वासों का उच्छेद और धर्म का निर्मलीकरण। मध्यकालीन विद्वानों के ग्रन्थ, रहस्यवादियों के सिद्धान्त और सन्त-पूजा आदि प्रत्येक नई बात को वहाबी लोग हेय समझते थे। उनका ध्येय था मुहम्मद का निर्मल एकेश्वरवाद और क़ुरान के सीधे सरल उपदेशों का अनुसरण। धार्मिक सुधार के साथ ही साथ वहाबी लोग जीवन-सुधार भी करना चाहते थे। नमाज़ और रोज़े पर विशेष ज़ोर दिया जाता था, और सरल तथा निराडम्बर जीवन ही आदर्श जीवन समझा जाने लगा था। रेशमी कपड़े, बढ़िया भोजन, अफ़ीम, तम्बाकू, कॉफ़ी और चाय आदि का व्यवहार धर्म-विरुद्ध समझा जाता था। इतना ही नहीं, धार्मिक स्थानों पर भव्य भवनों का निर्माण भी वहाबी लोग धर्म-विरुद्ध समझते थे। यही कारण था कि उन्होंने मदीना में पैग़म्बर की क़ब्र को गिरा दिया और मस्जिद के व्योमचुम्बी मीनारों को अधार्मिक आविष्कार समझकर नष्ट किया। वहाबी लोग वास्तव में बड़े सङ्कुचित विचार वाले थे और इस्लाम के लिए यह सौभाग्य की बात है कि उनकी राजनीतिक सत्ता अधिक दिन तक न टिक सकी और न अधिक विस्तृत ही होने पाई।

उनके रूपान्तर

वहाबियों के विचारों के देशान्तरों में पहुँचने पर समय और परिस्थिति के अनुकूल रूपान्तर होने लगे। इन सुधारों का सब से अधिक प्रभाव भारत पर पड़ा। प्रसिद्ध सर सय्यद अहमद ख़ाँ ने इस सुधार-आन्दोलन का नेतृत्व ग्रहण किया और मुसलमानों को उन्नत करने के लिए कई संस्थाएँ स्थापित कीं, कई पत्रों का प्रकाशन करवाया, कई पुस्तकें लिखवाईं और अलीगढ़ में मुस्लिम कॉलेज स्थापित किया, जो अब फल-फूल कर मुस्लिम विश्वविद्यालय के रूप में मुसलमान जाति की बड़ी सेवा कर रहा है। सर सय्यद अहमद एक उदार, किन्तु कट्टर नेता थे। अपने धार्मिक सिद्धान्तों में वे तिल भर इधर-उधर नहीं होना चाहते थे। उनका व्यक्तिगत जीवन भी अत्यन्त सरल, सुन्दर और अनिन्द्य था। वे तत्कालीन मुसलमानों की तन्द्रावस्था की ख़ूब निन्दा करते थे और उनको सचेत करने के लिए निरन्तर यत्न किया करते थे। वे पश्चिमीय विचारों की उच्चता को स्वीकार करते थे और यूरोप के देशों की उन्नति पर मुग्ध थे। उनकी इच्छा थी कि अपनी संस्कृति की रक्षा करते हुए जहाँ

तक सम्भव हो, पश्चिमीय विचारों को ग्रहण किया जावे और पश्चिम की अच्छी बातों से लाभ उठाया जावे। सन् १८६७ में उन्होंने लिखा था कि "यूरोप के वैज्ञानिक ग्रन्थ, चाहे वे मुसलमानों के लिखे हुए न हों और चाहे उनमें क़ुरान के विरुद्ध कई बातें हों, तो भी उनका अध्ययन करना चाहिए। हमको प्राचीन अरबियों का अनुसरण करना चाहिए, जो पाइथेगोरस के ग्रन्थों का अध्ययन करते हुए भी मुसलमान रह सकते थे।" यह विचार-धारा भारत में बढ़ती गई, जिसके प्रभाव से मौलवी चिराग़अली तथा सय्यद अमीरअली जैसे विद्वान नेता उत्पन्न हुए, जिनके विद्वत्तापूर्ण अङ्गरेज़ी ग्रन्थ शिक्षित संसार में प्रसिद्ध हैं। ये लोग निर्भीकतापूर्वक इस बात का प्रचार करते थे कि शरीयत का संशोधन किया जावे और इस्लाम को वर्तमान युग के अनुकूल बनाया जावे। सय्यद ख़ुदाबख़्श की भी ऐसे ही उदार विद्वानों में गणना है। उन्होंने एक स्थान पर लिखा है कि "पैग़म्बर यह कभी नहीं चाहते थे कि उनके अनुयायी अटल नियमों की ज़ञ्जीर में जकड़ दिए जावें। क़ुरान मुसलमानों का पथ-प्रदीप है, न कि उनकी सामाजिक, नैतिक, क़ानूनी और बौद्धिक उन्नति में अड़चन। वर्तमान इस्लाम, जिसमें मुल्लाओं का प्राधान्य है, कट्टरता को उच्च स्थान प्राप्त है, अज्ञान का साम्राज्य है और अन्धविश्वासों की भरमार है, वह पैग़म्बर के इस्लाम से कोसों दूर है। क्या इस्लाम उन्नति का विरोधी है? मैं ज़ोर के साथ कहूँगा कि "नहीं।" मुल्लाओं के आडम्बर को हटा देने पर इस्लाम अत्यन्त सरल धर्म है। इसके मूल सिद्धान्त हैं, एकेश्वर तथा उसके पैग़म्बर मुहम्मद में विश्वास। इसके अतिरिक्त सब निस्सार और प्रक्षिप्त है।"

सुधार-धारा

सुधारों की यह प्रबल लहर अन्य मुस्लिम देशों में भी ज़ोर से फैलने लगी। १८२६ से १८७८ तक तुर्की राज्य के सब उच्चाधिकारी सुधार-प्रिय मुसलमान थे। रशीद पाशा और मिद्दत पाशा आदि तुर्की राज-मन्त्रियों ने तुर्की राज्य को सुधारने तथा वर्तमान युग के अनुरूप बनाने के लिए अनेक यत्न किए, पर उनको सफलता न प्राप्त हुई। परन्तु सुलतान अब्दुलहमीद की भयङ्कर निरङ्कुशता से भी सुधारों की आकांक्षा का पूर्ण दमन न हो सका। कुछ समय के लिए यह शान्त हो गई, परन्तु सन् १९०८ में ज़ोर के साथ जागृति हुई, जिसके फलस्वरूप सुल्तान अब्दुलहमीद को सिंहासनच्युत होना पड़ा और नवयुवक तुर्कों का ज़ोर बढ़ गया। मिसिर देश में भी सुधारों की ध्वनि पहुँची और अलअज़्हर विश्वविद्यालय के प्रसिद्ध रेक्टर शेख़ मुहम्मद अब्दुल ने सुधार-दल का नायकत्व स्वीकार किया। इतना ही नहीं, बल्कि रूस के तातारी मुसलमान, जो इस्लाम के सिद्धान्तों को भली-भाँति समझते भी न थे और नाम-मात्र के मुसलमान थे, उनमें भी सुधारों की लालसा उठ खड़ी हुई।

परिवर्तन-युग

१९वीं शताब्दी मुस्लिम-जगत के ही नहीं, बल्कि सम्पूर्ण पूर्वी जगत के लिए विचित्र परिवर्तन और भारी हेर-फेर का युग था। सुषुप्त एशिया यूरोप के नवीन आविष्कार, अजेय सैनिक सङ्गठन, विस्तृत साहित्य और स्वतन्त्र समाज को देख कर चौंधिया गया था और हैरानी के कारण उसको ठीक-ठीक नहीं सूझ पड़ता था कि अपनी उन्नति के लिए यूरोप का विरोध करे या अनुकरण अथवा उसका शिष्यत्व स्वीकार करे। इसलिए मुसलमान-सुधारकों में भी कई दल हो गए थे। एक दल था वहाबियों का, जो मुहम्मद, अबूबकर और उमर के समय को लौटाना चाहता था। एक दल था, सर सय्यद अहमद और रशीद पाशा-जैसे सुधारकों का, जो पश्चिमीय विज्ञान, कला और राजतन्त्र से लाभ उठा कर अपने देश तथा जाति को उन्नत करना चाहता था और तीसरा दल एक ऐसा भी था, जो पूर्ण-रूपेण पश्चिमी बनना चाहता था। ऐसे लोग भारतवर्ष, मिसिर, अलजीरिया, तुर्की आदि सभी मुसलमान देशों में उस समय भी मिलते थे और अब भी इनका अभाव नहीं है। जो देश यूरोपियन लोगों के अधीन हो चुके थे और जहाँ यूरोप की सभ्यता की प्रधानता व्याप्त हो चुकी थी, वहाँ ऐसे लोग अधिक संख्या में मिलते थे। इस्माईल हमीद नामक एक अलजीरियन लेखक ऐसे मुसलमानों के विषय में लिखता है कि "यूरोप की धर्मोपेक्षिता ने अलजीरिया के मुसलमानों पर भी अपना प्रभाव जमा लिया है। ये लोग इस्लाम के बाह्य स्वरूप को तो ग्रहण किए हुए हैं, लेकिन उनमें

धार्मिक जोश का नितान्त अभाव है। वे अपने धर्म को त्यागते तो नहीं, लेकिन उनको अपने धर्म-प्रचार की भी कोई चिन्ता नहीं है। वे यह तो चाहते हैं कि उनके बच्चे मुसलमान बने रहें। परन्तु दूसरों को जन्नत मिलेगी या दोज़ख़, इसकी वे चिन्ता नहीं करते। यह न श्रद्धा है और न विचार-स्वातन्त्र्य। इसको धर्मोपेक्षा कह सकते हैं। इन धर्मोपेक्षियों से भी आगे बढ़े हुए वे लोग थे, जो अपने आत्मा की भी इतनी चिन्ता नहीं करते थे, जितनी सांसारिक अभ्युदय की। धर्म को वे निष्फल झञ्झट समझते थे और इस्लाम को केवल इतिहास का विषय। ये वे नवयुवक थे, जो पश्चिमीय विचारों से भरे हुए थे। नास्तिकता, साम्यवाद और बोलशेविज़्म आदि इनके दिमाग़ों में ठुसे हुए थे। इन लोगों का कार्य था, क्रान्तिकारी बातें करना। वास्तव में इनको उन्नति या अवनति किसी की भी कोई चिन्ता न थी। ये लोग फ़ैशन के पुतले और चैन से जीवन काटने वाले थे। सय्यद ख़ुदाबख़्श ऐसे ही एक मुसलमान के बारे में लिखते हैं—"वह पेशेवर मुसलमान था। मुसलमान वह अपने आपको इसलिए कहता था कि इसी पर उसके जीवन की सफलता निर्भर थी। कहने को वह मुसलमानों का नेता था, पर वास्तव में इस्लाम और पैग़म्बर के विषय में उसके विचार ऐसे थे कि वोल्टेयर और गिबन भी उनको स्वीकार नहीं कर सकते थे।"

राष्ट्रवाद

इन सबके अतिरिक्त एक दल उन लोगों का था, जो अपने देश की ऐहिक उन्नति में ही सब उन्नति समझते थे। ये लोग थे, राष्ट्रवादी और इनके जीवन का ध्येय था राष्ट्रीयता। तुर्की, मिसिर, अलजीरिया और अफ़ग़ानिस्तान में उस समय ऐसे लोग अधिक मिलते थे। राष्ट्रवादियों में एक विशेष बात यह थी कि ये सब ईसाइयों से घृणा करते थे और पश्चिम की सब बातों को हेय समझते थे, परन्तु उनके सैनिक सङ्गठन को तथा वैज्ञानिक शस्त्रास्त्रों को ग्रहण करना चाहते थे। इन उदार और कट्टर तथा सङ्कुचित विचार वाले सुधारक दलों का आविर्भाव प्रायः १९वीं शताब्दी के मध्य में हुआ था, परन्तु अभी भी ये सब मुस्लिम संसार में विद्यमान हैं और अभी एक अर्से तक रहेंगे भी।

सङ्गठन

वहाबी आन्दोलन का प्रारम्भिक उद्देश्य और स्वरूप था, धार्मिक आन्दोलन, परन्तु यूरोप की हड़प-नीति के कारण ज्यों-ज्यों मुसलमान देश अधिकाधिक गोरी जातियों के चङ्गुल में फँसने लगे और मुसलमानों के सामने नित नई समस्याएँ उपस्थित होने लगीं, त्यों-त्यों इस जागृति के भी रूपान्तर होने लगे। १९ वीं शताब्दी में मुसलमानों को यह अनुभव होने लगा कि विज्ञान-बल से सुसज्जित और सङ्गठन-बल से पुष्ट यूरोपीय जातियों से यदि आत्म-रक्षा करना है, तो स्वयं सङ्गठित होकर उन्नत बनने का प्रयास करना चाहिए। इसलिए अब इस जागृति का स्वरूप हुआ मुस्लिम-सङ्गठन। अपने अस्तित्व को स्थिर रखने के लिए यह एक साधारण और स्वाभाविक प्रयत्न था, परन्तु यूरोप को इससे बड़ी चिन्ता हुई और इस आन्दोलन को विफल करने के लिए गोरे लोगों ने अनेक उपाय किए, परन्तु ज्यों-ज्यों उन्होंने इसको विफल करना, चाहा त्यों-त्यों यह और भी बल पकड़ता गया। वैसे तो सङ्गठन मुसलमान धर्म का एक प्रधान अङ्ग है और पैग़म्बर मुहम्मद के ज़माने में तथा ख़लीफ़ा अबूबकर और उमर के काल में मुसलमानों का सङ्गठन एक आदर्श सङ्गठन था। परन्तु मुस्लिम धर्म के प्रचार, विस्तार और योग्य एवं निस्वार्थ नेताओं के अभाव से वह उत्तम सङ्गठन बिगड़ गया था। यह नवीन प्रयत्न वास्तव में उस अतीत सङ्गठन और गौरव को लौटाने के लिए था। परन्तु १९वीं शताब्दी में यूरोप की गोरी जातियाँ अधिक चतुर, चौकस और राजनीतिज्ञ बन चुकी थीं, इसलिए यह सङ्गठन उन्हें हव्वा जान पड़ा। प्रारम्भिक मुस्लिम सङ्गठन का केन्द्र था तुर्की का ख़लीफ़ा। सम्पूर्ण मुस्लिम संसार उसकी आज्ञा मानता था और सब मुसलमानों का ध्येय और आकांक्षा वही निश्चित करता था। परन्तु इस नवीन जागृति का स्वरूप उससे भिन्न था। कहने को अब भी ख़लीफ़ा मौजूद था और उसने ख़ूब प्रयास किया था कि अबूबकर और उमर की भाँति मुसलमान उसको अपना नेता मानें, परन्तु वास्तव में ७वीं शताब्दी और १९वीं शताब्दी में १,२०० वर्ष का अन्तर था। धार्मिक नेताओं का समय एक प्रकार से बीत चुका था। अब मनुष्यों की भावनाएँ और आकांक्षाएँ कुछ और ही थीं। धर्म-प्रचार की लोगों को अब इतनी चिन्ता

न थी, जितनी आत्म-रक्षा की, स्वाभिमान की और संसार की उन्नतिशील जातियों के सामने अपना मस्तक उन्नत रखने की। इसलिए इस नवीन सङ्गठन के प्रधान अङ्ग थे हाजी और स्थान-स्थान पर धार्मिक आश्रम। जो लोग मक्के में हज करने जाते थे, वे वहाँ देश-देशान्तरों से आए हुए मुसलमान यात्रियों से मिलते थे। मुस्लिम सङ्गठन की चर्चा सुनते थे, मिल कर उस पर विचार करते थे और वापस जाकर अपने देशवासियों को सङ्गठन का सन्देश सुनाते थे। इस प्रकार सारे मुस्लिम-जगत में सङ्गठन की हलचल थी और कहाँ क्या हो रहा है, उसकी रिपोर्ट भी इन यात्रियों द्वारा ही प्रतिवर्ष अरब में पहुँचती थी। मुस्लिम धर्म, संस्कृति तथा साहित्य को सुरक्षित रखने के लिए अफ्रिका, ईरान तथा भारतवर्ष में अनेक संस्थाएँ, विद्यालय, आश्रम और यतीमख़ाने आदि स्थापित किए गए थे।

सङ्गठन का जन्मदाता

इसमें कोई सन्देह नहीं है कि इस सङ्गठन का जन्मदाता अब्दुल वहाब था। उसने अपने शिष्य मुहम्मद सऊद के राज्य का सङ्गठन अबूबकर और उमर के शासन के ढङ्ग पर किया था। जब मुहम्मद सऊद ने अपना विजय-कार्यक्रम आरम्भ किया और मक्के तथा मदीने पर अधिकार जमा लिया, तो उसकी आकांक्षा थी कि सारे मुस्लिम संसार को जीत कर पुनः उत्तम रूप से सङ्गठित किया जावे। वह इस प्रयत्न में सफल नहीं हुआ, पर वहाबी-विचार का प्रचार और विस्तार बन्द नहीं हुआ। पञ्जाब और अफ़ग़ानिस्तान में कैसे यह जागृति पहुँची और वहाँ क्या हुआ, इसका उल्लेख पहले ही किया जा चुका है। परन्तु अब तक तो यह आन्दोलन था सोते हुए मुसलमानों को जगाने के लिए और गिरती हुई मुसलमान रियासतों को उठाने और सजग करने के लिए। परन्तु १९वीं शताब्दी में परिस्थिति बदल गई और उसके अनुकूल इस जागृति में भी रूपान्तर हो गया। १८वीं शताब्दी तक गोरे लोगों ने मुसलमान राज्यों पर ऐसा घोर आक्रमण नहीं किया था, जिससे सबके कान खड़े हो जाते। उधर भारतवर्ष और इधर तुर्की पर ये लोग अवश्य हाथ साफ़ कर रहे थे, परन्तु अब तक मुसलमानों के हृदयों को इन्होंने स्पर्श नहीं किया था। १९वीं शताब्दी के मध्य में स्थिति बदल गई। फ़्रान्स ने अलजीरिया को जीत लिया, रूस ने काकेशिया को अपने राज्य में मिला लिया और अङ्गरेज़ों ने अन्तिम मुग़ल सम्राट को क़ैद करके तथा उसके बच्चों को गोली से मार करके भारतवर्ष पर अधिकार जमा लिया। तब मुसलमानों की आँखें खुलीं और उनको दीखा कि यूरोप शीघ्र ही मुस्लिम-जगत को पदाक्रान्त करने वाला है और आत्म-रक्षा के लिए संग्राम की आवश्यकता है। तब से पश्चिम का विरोध करना मुस्लिम-सङ्गठन का मुख्य उद्देश्य हो गया और यह अब तक बना हुआ है। अलजीरिया में अब्दुल क़ादिर और काकेशिया में शमील गोरे लोगों के विरुद्ध बड़ी वीरता से लड़े और आक्रमणकारियों के उन्होंने दाँत खट्टे कर दिए। इन वीरों के साथ सम्पूर्ण मुस्लिम जगत ने सहानुभूति प्रकट की। परन्तु वास्तविक सहायता इनको कहीं से न मिली और इसीलिए ये लोग अन्त में अपनी उद्देश्य-पूर्ति में असफल हुए।

गोरों के विरुद्ध उत्पात

इस समय श्वेत जातियों की हड़प-नीति से शिक्षित मुस्लिम-जगत प्रक्षुब्ध तो हो गया था, परन्तु उनका विरोध करने के लिए उसमें पर्याप्त सहयोग और सङ्गठन नहीं था। फिर भी गोरे लोगों के प्रति घृणा और उनका भय मुसलमानों में उत्तरोत्तर बढ़ता ही गया, यहाँ तक कि सन् १८७० और १८८० के बीच में सम्पूर्ण मुस्लिम-संसार में जहाँ-तहाँ गोरे लोगों के विरुद्ध अनेक दङ्गे और उत्पात हुए। यह असन्तोष की लहर अलजीरिया से डच ईस्ट इण्डीज़ तक फैल गई और कई जगह इसने सशस्त्र बलवों का रूप धारण किया। सन् १८७१ में अलजीरिया में "काबिल उत्पात" नामक घोर ग़दर हुआ और उत्तर अफ़्रिका में फ़क़ीर लोग गोरों के विरुद्ध जिहाद करने का उपदेश देने लगे, जिसके फल-स्वरूप मिसिरी और सूदान के मुसलमान अङ्गरेज़ों के इतने विरुद्ध उठ खड़े हुए कि १९वीं शताब्दी के अन्त तक वे लोग नहीं दबाए जा सके। जब लॉर्ड किचनर ने ख़ारतूम पर अङ्गरेज़ों का अधिकार जमा दिया, तब कुछ वर्ष के लिए सूदान प्रत्यक्ष में दब गया, परन्तु वास्तव में यह विरोध-वह्नि शान्त नहीं हो सकी। अफ़ग़ानिस्तान और भारत-

वर्ष में भी इसी समय एक अपूर्व धार्मिक कट्टरता की जागृति हुई और चीनी तुर्किस्तान तथा यूनान में कई बलवे हुए। डच ईस्ट इण्डीज़ में भी इसी प्रकार कई बार सशस्त्र मुसलमानों ने सरकार के विरुद्ध उत्पात मचाए, जो पिछले ७-८ वर्ष पूर्व तक जारी थे।

इन सब उत्पातों का कारण था गोरे लोगों के प्रति घृणा, और उद्देश्य था, उनका उच्छेद। अन्धविश्वासियों में अनेक प्रकार की आकांक्षाएँ जागृत हो उठी थीं और वे समझने लगे थे कि उनमें एक मेहदी नाम का पैग़म्बर शीघ्र ही प्रकट होने वाला है, जो मुस्लिम जगत को शीघ्र सारे दुःखों से मुक्त करके उसको पुनः सङ्गठित तथा शक्तिमान बनावेगा। ये विश्वास और उद्देश्य सब एक थे। परन्तु प्रयत्न प्रकीर्ण और असङ्गठित थे। यही कारण था कि इनमें सफलता न हुई। इस विफलता को देख कर मुस्लिम जगत को अनुभव हुआ कि सङ्गठन, धार्मिक जागृति तथा नवीन आवेश और सुधारों की भारी आवश्यकता है। सङ्गठन और सुधार के यत्न यों तो १९वीं शताब्दी के मध्य से ही आरम्भ हो चुके थे, परन्तु अब वह आन्दोलन और भी अधिक उत्साह, आवेश और प्रबलता के साथ होने लगा। इस नवीन प्रक्षोभ के तीन मुख्य अङ्ग थे, प्रथम इस्लाम धर्म का प्रचार, दूसरा ख़िलाफ़त सम्बन्धी जागृति और तीसरा राष्ट्रवाद।

सङ्गठन के यत्न और सय्यद मुहम्मद

सय्यद मुहम्मद नामक एक विद्वान और धार्मिक फ़क़ीर ने सन् १८४३ में उत्तर अफ़्रिका में देरबा नामक पर्वत के पास एक आश्रम स्थापित किया। इसके उज्ज्वल चरित्र और उच्च व्यक्तित्व से आकर्षित होकर अनेक धर्म-पिपासु लोग वहाँ आने लगे और वह स्थान जागृति, विचार तथा नवीन भावनाओं का केन्द्र बन गया। उत्तर अफ़्रिका में नवीन स्फूर्ति और अपूर्व जागृति दिखाई देने लगी और आज़ादी की अजीब लहर उमड़ने लगी। सय्यद मुहम्मद से दीक्षा तथा शिक्षा गृहण करके अनेक फ़क़ीरों ने उसी ढङ्ग के आश्रम जहाँ-तहाँ स्थापित करने आरम्भ किए। इस जागृति से तुर्की सरकार इतनी भयभीत हुई कि सय्यद मुहम्मद को अपना आश्रम जराबुब के नख़लिस्तान में हटाना पड़ा। सन् १८२९ में जब सय्यद मुहम्मद का देहावसान हुआ, तब उत्तर अफ़्रिका का अधिकांश भाग उसकी शिक्षा से प्रभावान्वित हो चुका था।

सय्यद मुहम्मद के ध्येय और आकांक्षाओं का निम्नलिखित कथा से पता चलता है। उसके दो पुत्र थे। जब वे दोनों बच्चे थे, सय्यद मुहम्मद ने जानना चाहा कि श्रद्धा और निर्भीकता किसमें अधिक है। इसलिए सम्पूर्ण आश्रमवासियों के समक्ष उनको एक लम्बे ताड़ के वृक्ष पर चढ़ने का आदेश दिया। जब वे शिखर पर पहुँच गए तो उनसे कहा कि "अल्लाह के नाम पर कूद पड़ो।" बड़ा लड़का घबरा गया और सोच-विचार में पड़ गया, लेकिन छोटा लड़का, जिसका नाम अलमेहदी था, अल्लाह का नाम लेते ही तत्क्षण भूमि पर कूद पड़ा, और उसको कोई चोट भी नहीं आई। सय्यद मुहम्मद ने घोषणा कर दी कि अलमेहदी उसका उत्तराधिकारी बनेगा। अपने योग्य पिता की भाँति अलमेहदी ने भी धर्म-प्रचार और आश्रमों का सङ्गठन किया। उसका देहान्त सन् १९०२ में हुआ और उसके पश्चात् अहमदुलशरीफ़ उसका उत्तराधिकारी बना। उत्तरी अफ़्रिका में सूदान, त्रिपोली और मिसिर आदि देशों में इन आश्रमों के कारण बड़ी जागृति हुई है। पिछले ६० वर्षों में इन प्रयत्नों के फल-स्वरूप उत्तरी अफ़्रिका का रूप और का और ही हो गया।

उसके आश्रम और सङ्घ

इन आश्रमों को और उनके अनुयायियों को मुसलमान लोग सेनेसिया जमात कहते हैं। इसके अनुयायी सारे मुस्लिम जगत में पाए जाते हैं। अरब में इनकी संख्या बहुत है और मक्का तथा मदीना के धार्मिक जीवन पर इसका गहरा प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। पर उत्तरी अफ़्रिका अब भी इस जमात का केन्द्र है। सम्पूर्ण उत्तरी अफ़्रिका में इस सङ्घ के आश्रम जहाँ-तहाँ फैले हुए हैं। और सब आश्रम एक प्रधान आश्रम के मातहत हैं। यह प्रधान आश्रम सहरा के रेगिस्तान के मध्य में बसा हुआ है, जहाँ अब तक केवल एक यूरोपियन जा पाया है। इस आश्रम के चारों ओर काफ़ी लम्बा रेगिस्तान है। वहाँ पहुँचने के मार्ग इतने दुर्गम हैं कि कई मील तक पानी भी दुर्लभ है। केवल अनुभवी और दीक्षित सेनेसिया जमाती ही वहाँ जाने पाते हैं,जो विरोधियों को कभी वह मार्ग नहीं दिखलाते।

सेनेसिया-सङ्घ एक प्रकार की सरकार है। इसके आश्रम धार्मिक स्थान भी हैं और एक प्रकार की कचहरियाँ भी। प्रत्येक आश्रम में एक मुक़ादम होता है और एक वकील। इन अधिकारियों का शासन आश्रमों पर तो है ही, पर अन्य मुसलमान भी उनकी आज्ञा को भङ्ग नहीं करते। उत्तरी अफ़्रिका में उनका इतना रोब है कि सेनेसिया वकील का हुक्म सरकारी हुक्म के समान ही आदरपूर्वक माना जाता है। इसलिए उत्तरी अफ़्रिका में अङ्गरेज़ी, फ़्रान्सीसी और इटली सरकार के सिवाय सेनेसिया सङ्घ भी एक सरकार ही है। विदेशी शासक प्रायः इसका विरोध नहीं करते। परतन्त्र देश के धार्मिक सङ्घ हमेशा राजनीतिक रूप धारण कर लेते हैं। सर वेलेण्टाइन चिरोल नामक प्रसिद्ध अङ्गरेज़ लेखक ने अपने एक ग्रन्थ में लिखा है कि आर्य-समाज भारत में एक प्रकार की छिपी हुई सरकार है।

(क्रमशः)

देश-दशा

वीरा फ़िगनर

[श्री० सुरेन्द्र शर्मा]

"हमारा यह सौभाग्य है कि हम अपनी शक्तियों को इसलिए दे रहे हैं कि आज़ादी ज़िन्दा रहे। हम भले ही मर जावें, कितने ही कष्ट सहें, पर मुँह नहीं मोड़ेंगे। सरकार के शिकार बनने के लिए हम सहर्ष आगे बढ़ते हैं, पर उसकी शिकायत नहीं करते। सब कुछ सहन करते हुए, शान्ति से, स्वतन्त्रता और न्याय के नाम पर युद्ध-क्षेत्र में कूद पड़ने के लिए, हम अपने युवक बन्धुओं का आह्वान करते हैं !"

—वीरा फ़िगनर

विश्व के मान-चित्र में आज रूस का प्रसिद्ध देश दूर से ही चमकता हुआ दिखाई पड़ता है। संसार का प्रत्येक राष्ट्र आज़ाद रूस को बड़ी श्रद्धा से देखता है। रूस की भव्य भूमि पर, सोवियट प्रजातन्त्र की छत्र-छाया में सर्वत्र स्वातन्त्र्य-सूर्य की सुनहली रश्मियाँ छिटक रही हैं। वहाँ सब जगह स्वतन्त्रता, समता, न्याय और बन्धुत्व की विजय-दुन्दुभी बज रही है। रूस की भूमि से बड़े-छोटे और ऊँच-नीच का भेद-भाव उठ गया। वे सदियों के पुराने बन्धन, जिनसे वहाँ के सार्वजनिक जीवन का गला घुट रहा था, टूट गए। उस ज़ारशाही का कहीं पता भी नहीं है, जिसकी कुत्सित करतूतों से रूसी इतिहास के पन्ने रँगे पड़े हैं। आज तो समूचे रूस की सचमुच काया ही पलट गई है। मज़दूर और किसानों को नया जीवन मिला है। अब वहाँ पैसे के बल पर, एक धनी आदमी दूसरे ग़रीब आदमी पर ज़ुल्म नहीं कर सकता। ग़रीब से ग़रीब आदमी भी उन्नति की घुड़दौड़ में छलाँग मार कर आगे बढ़ता हुआ दिखाई पड़ रहा है। स्वाधीन वातावरण में बाल, तरुण, स्त्री, पुरुष—सभी अपनी-अपनी अभिरुचि के अनुसार आगे बढ़ रहे हैं। किसी व्यक्ति के मार्ग में कोई रुकावट नहीं है। सब लोग समान भाव से स्वाधीनता के सुमधुर फलों का उपभोग करने में समर्थ हैं।

रूस के जिन महापुरुषों और वीर-नारियों के उद्योग से वहाँ के करोड़ों प्राणियों को यह दिन देखने को मिला, उनमें देवी वीरा फ़िगनर का नाम बड़े आदर के साथ लिया जाता है। उन्होंने जीवन-भर जिस उत्साह और उत्तरदायित्व के साथ अपने देश की सेवा की, जिस धैर्य और साहस के साथ देश के लिए कष्ट सहन किए, उसके लिए रूस की भावी सन्तति सदा उनकी कृतज्ञ रहेगी।

परिवार

वीरा फ़िगनर का परिवार बड़ा कुलीन और सम्पन्न था। उनके पिता निकोलाई एलेक्ज़ेण्ड्रोविच फ़िगनर ने जङ्गलात की शिक्षा प्राप्त की थी। पढ़ाई समाप्त कर चुकने पर वे जङ्गलात के महकमे के एक अफ़सर बना दिए गए। उस पद पर उन्होंने रूस के मैमाडीशी और टैटीऊशी ज़िलों में काम किया।

वीरा के माँ-बाप दोनों ही बड़े कार्यशील थे। उसकी माँ बहुत समझदार थी। वीरा का जन्म २४ जून, सन् १८५२ को रूस के कैज़ाँ प्रान्त में हुआ था। वह अपने बहिन-भाइयों में सब से बड़ी थी, उसकी बहिन लिडीया क्रान्तिकारी दल की मेम्बर थी। उस दल में काम करने के कारण वह जीवन भर के लिए पूर्वी साइबेरिया में निर्वासित कर दी गई। उसका भाई पीटर, पर्म और ऊफ़ा के प्रान्तों में खानों का इञ्जीनियर था। दूसरा भाई निकोलाई गान-विद्या में बड़ा प्रवीण था। नाट्य-कला का तो वह आचार्य ही था। वीरा की एक दूसरी बहिन ईव्जीनिया थी। सन् १८८० में शाही महल में एक धड़ाका हुआ। उसीके सम्बन्ध में ईव्जीनिया निर्वासित करके साइबेरिया भेज दी गई। इनमें सब से छोटी लड़की औल्गा थी। उसने भी क्रान्तिकारी आन्दोलन में काम किया था।

वीरा ने एक बार अपनी माँ से रूस के किसी ज़ार के सम्बन्ध में बहुत सी बातें सुनीं। उसने सुना कि जब ज़ार के विवाह का समय हुआ, तब उसने रूस भर के रईसों को हुक्म दिया कि वे अपनी सब सयानी लड़कियों को मास्को लावें। मास्को में ज़ार अपने महल में इकट्ठी हुई लड़कियों को देखता और उसे जो सब से अधिक

सुन्दरी जँचती, उसी को अपनी स्त्री बना लेता था। ज़ार के दुलहिन पसन्द करने में बड़ी चालबाज़ियों से काम लिया जाता था। एक बार एक युवती ने ज़ार को मोहित कर लिया। वह ज़ारीना होने वाली थी, किन्तु कुछ चालबाज़ों ने, ज़ाहिरा तौर पर उसकी ख़ूबसूरती बढ़ाने के लिए, उसके बाल इतने ज़ोर से कस कर बाँध दिए कि वह बेहोश हो गई और उसके ज़ारीना होने का मौक़ा टल गया !

इस प्रकार की बातें सुन कर वीरा भी हवाई महल बनाने लगी। वह सोचने लगी—"जब ज़ार शादी करना चाहेंगे, तब घर वाले मुझे भी मास्को ले जायँगे और शायद ज़ार सब लड़कियों में मुझे ही पसन्द करेंगे ! मैं ज़ार की रानी बन जाऊँगी ! टहलनी मुझे सोने-चाँदी के आभूषणों से सजाएगी। मैं हीरे-जवाहरात पहनूँगी !"

माँ-बाप ने वीरा को कैज़ाँ के विद्यालय में पढ़ने को भेज दिया। वहाँ का वातावरण बहुत ही सादगी और साधुता का था। वहाँ पहुँच कर वीरा के विचारों में बड़ा परिवर्तन हुआ। दरबार और सुनहले मुकुट के ऊपरी चमक-दमक के उसके मूर्खतापूर्ण विचार, दिमाग़ से बिल्कुल निकल गए।

सन् १८६३ में वीरा विद्यालय में भर्ती हुई। वहाँ वह ६ वर्ष तक पढ़ती रही। अन्य विद्यार्थियों के साथ, एक साधारण विद्यार्थी का सा जीवन व्यतीत करने से, उसके तौर-तरीक़े सुधर गए और उसके हृदय में बन्धुत्व का भाव पैदा हो गया। समय पर दैनिक कार्यों को पूरा करने से, वह अनुशासन में रह कर नियमित काम करने की आदी हो गई।

विद्यालय में रह कर वीरा की दिमाग़ी काम करने की आदत पहले से कुछ अधिक बढ़ गई, परन्तु यहाँ उसकी वैज्ञानिक योग्यता नहीं बढ़ी और न यथेष्ट रूप से उसके मस्तिष्क का विकास ही हो सका। यही कारण था कि वीरा यहाँ की शिक्षा से सन्तुष्ट नहीं थी। यहाँ के अध्यापक भी सन्तोषजनक नहीं थे। यहाँ वीरा ने इतिहास, रूसी भाषा, विदेशी साहित्य, बनस्पति-शास्त्र, प्राणि-शास्त्र, शरीर-विद्या, धातु-विद्या आदि विषयों का अध्ययन किया। विद्यालय की पढ़ाई से अवसर मिलने पर वह अङ्गरेज़ी के उपन्यास पढ़ा करती थी।

विद्यालय की पढ़ाई से वीरा इसलिए असन्तुष्ट थी कि जीवन-संग्राम की तैयारी के लिए वहाँ जो नैतिक शिक्षा दी जानी चाहिए, उसका बिल्कुल अभाव था। वहाँ कोई विद्यार्थियों को यह तक बताने वाला नहीं था कि अपने परिवार, समाज और देश के प्रति उनका कर्तव्य क्या है ?

साहित्य का प्रभाव

जीवन के आरम्भ ही से वीरा की रुचि उत्तम साहित्य की ओर आकृष्ट हो चुकी थी। परन्तु वह गम्भीर विषय की पुस्तकें पढ़ने की आदी नहीं थी। अक्सर उपन्यास और कहानियाँ पढ़ा करती थी। छुट्टियों में घर जाकर अपनी माँ की देख-रेख में वह अच्छी-अच्छी पुस्तकें पढ़ा करती थी। घर पर उसे तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित अच्छी से अच्छी कहानियाँ पढ़ने को मिलती थीं।

वीरा फ़िगनर के हृदय पर एक उपन्यास ने बड़ा प्रभाव डाला। उसका नाम था—'One man in the field is no warrior' (एक व्यक्ति रण-भूमि में योद्धा नहीं है)। इस उपन्यास ने उसके मानसिक क्षितिज को बहुत व्यापक बना दिया। इसके पढ़ने से उसके हृदय पर दो विरोधी चित्र खिंच गए। एक चित्र में उच्च आदर्श, सङ्घर्षण, त्याग और कष्ट-सहन के भाव अङ्कित थे और दूसरे में सुख-स्वार्थ तथा जीवन की ऊपरी चमक-दमक की प्रतिछाया। नेकरासौव (Nekrasov) की साशा (Sasha) नाम की कविता ने भी वीरा के चरित्र पर बहुत गहरा प्रभाव डाला।

वीरा को कहानियाँ और उपन्यास पढ़ने का शौक़ था। परन्तु फिर भी उसने अपने कुछ सम्बन्धियों के अनुरोध से डार्विन, लायल (Lyell), लूइज़ (Lewes) और वौगट (Vogt) की पुस्तकें तथा पीसारैव के कुछ लेख भी पढ़ डाले। इन विषयों में उस समय वह अधिक न समझ सकी। उसके चाचा प्रजासत्तावादी थे। धार्मिक, सामाजिक तथा जातिगत विद्वेषी भावनाओं से वे बिल्कुल मुक्त थे। विश्व-व्यापी सार्वजनिक शिक्षा, स्वावलम्बी श्रम और स्त्रियों के समान अधिकार के पक्षपाती थे। वे वास्तव में बहुत शिक्षित और समझदार थे। सादगी से रह कर ऊँचा सोचने और उसके अनुसार ऊँचे काम करने के वे आदी थे। वीरा की सुनहली अँगूठी, कान की बालियाँ और तरह-तरह के फ़ैशनेबुल कपड़ों को

देख कर वे कहते—"प्यारी वीरा, बताओ तो सही कि बालियों के रूप में तुम्हारे कानों में कितने पौण्ड अनाज लटक रहा है?" पास ही में कहीं से उसका उत्तर मिलता—"अठारह सौ पौण्ड (साढ़े बाईस मन)।" इसी तरह के प्रश्न वीरा से किए जाते थे। उस समय वह इन प्रश्नों का वास्तविक अर्थ न समझ सकी। आगे चल कर जब उसके विचारों का विकास हुआ, तब उसे अनुभव हुआ कि उसके चाचा के इस प्रकार के प्रश्नों में कितना व्यङ्ग होता था।

वीरा ने सब से पहले अपने चाचा से उपयोगितावाद के सिद्धान्त की व्याख्या सुनी। उन्होंने कहा—"अधिक से अधिक आदमियों की अधिक से अधिक भलाई करना प्रत्येक व्यक्ति के जीवन का उद्देश्य होना चाहिए।" सामयिक साहित्य के प्रभाव से वीरा के मन में इन विचारों का अङ्कुर पहले ही जम चुका था। उपयोगितावाद के सिद्धान्त की इस व्याख्या ने रङ्ग और भी गहरा कर दिया।

देहात में रहने वाले दीन-दुखियों की सेवा के लिए वीरा डॉक्टर बनना चाहती थी। उसकी इच्छा थी कि अपने ज्ञान का, देहात में फैली हुई बीमारी, ग़रीबी और अज्ञान के दूर करने में, सदुपयोग करे। इसी भावना से प्रेरित होकर वह देश से बाहर जाकर किसी युनिवर्सिटी में डॉक्टरी पास करना चाहती थी, किन्तु उन दिनों स्त्रियों का अपने देश से बाहर जाकर शिक्षा प्राप्त करना रूसी-समाज की कल्पना के बाहर था, इसलिए वीरा के पिता उसे बाहर भेजने पर राज़ी न हुए।

शादी

कैज़ाँ में रहने वाला फ़िलीपौव नाम का एक बूढ़ा ज़मींदार वीरा के पिता का बड़ा मित्र था। वीरा अपने पिता के साथ एक बार उसके यहाँ गई, वहाँ फ़िलीपौव के सब से बड़े लड़के एलेक्सी विक्टौरौविच (Aleksey Victorovich) से वीरा की मित्रता हो गई। वह क़ानून का पण्डित था और उस समय, मैजिस्ट्रेट के पद पर काम कर रहा था। थोड़े दिन कैज़ाँ में रह कर वीरा अपने गाँव में वापस आ गई।

आगे चल कर एलेक्सी का कैज़ाँ से टैटीऊशी को तबादला हो गया। वहाँ वीरा को उससे मिलने-जुलने का और भी अधिक अवसर मिला। इस युगल जोड़ी को परिचित हुए एक वर्ष भी न बीता था कि १८ अक्टूबर, सन् १८७० को निकीफ़ौरौवौ (Nikiforovo) के गिर्जे में दोनों की शादी हो गई।

ग्रेजुएट होने के बाद वीरा ने जर्मन भाषा सीखी। माँ से लेकर उसने शिलर और गटे की पुस्तकें पढ़ डालीं तथा अपने पति से रेखा-गणित और बीज-गणित पढ़ा। सन् १८७२ के बसन्त में वीरा फ़िगनर अपनी बहिन लिडीया और पति के साथ निकीफ़ौरौवौ से ज़ूरिच चली गई।

वीरा फ़िगनर
(जेल जाने से पूर्व)

ज़ूरिच में

वीरा डॉक्टरी पढ़ने के लिए ज़ूरिच के विश्वविद्यालय में भर्ती हो गई। वहाँ उसे बिलकुल नया क्षेत्र मिला। नई-नई बातें और नई-नई घटनाएँ देखने को मिलीं। विद्यार्थियों के लिए एक सुव्यवस्थित पुस्तकालय था। स्त्रियों के लिए वाद-विवाद करने को एक क्लब था। इन सब बातों से वीरा को मानसिक विकास के लिए बहुत

सामग्री मिली। एक दूसरे 'फ़्रीची क्लब' में वीरा ने सामाजिक प्रगति, श्रमजीवी समस्याओं और साम्यवाद के इतिहास का अध्ययन किया। इसके साथ ही विश्व-विद्यालय की पढ़ाई भी बराबर जारी रक्खी।

एक बार विद्यालय में सरकारी हुक्म आया कि वीरा फ़िगनर और उसके कुछ अन्य साथी विद्यालय छोड़ दें। बहाना यह था कि इन लोगों का चरित्र अप्रमाणित है। विद्यार्थियों की एक सभा में सरकार के इस हुक्म का विरोध किया गया। जो लोग दक़ियानूसी ख़्याल के थे, उन्होंने विरोध में वीरा का साथ नहीं दिया।

क्रान्तिकारी दल में

वीरा के पति और उसके विचारों में मतभेद हो गया। आगे चल कर मतभेद बहुत बढ़ गया। एलेक्सी की प्रवृत्ति दक़ियानूसी थी और वीरा गरम दल की ओर खिंचती जा रही थी। धीरे-धीरे वीरा को यह विश्वास हो गया कि डॉक्टरी एक बहाना है। इससे समाज और देश की वास्तविक सेवा नहीं हो सकती। असल में समाज और देश की बीमारियों का उचित इलाज तो सामाजिक और राजनैतिक सुधारों ही से हो सकता है। वीरा के हृदय में यह धारणा दृढ़ हो गई कि अन्याय-पूर्ण नाशक सामाजिक ढाँचा ही देश की अधोगति का मूल कारण है। इस मूल कारण-स्वरूप बीमारी के लिए एक ही रामबाण औषधि है। वह यह कि प्रजा-पीड़क और अधिकार-प्राप्त जातियों की सत्ता उलट देने के अभि-प्राय से, लड़ाई-झगड़ा करके, इस सामाजिक ढाँचे को बदल दिया जाय। इन्हीं भावों से प्रेरित होकर स्विट्ज़र-लैण्ड में, २१ वर्ष की उम्र में, वीरा फ़िगनर अपनी बहिन लिडीया के क्रान्तिकारी दल में शामिल हो गई। वह दल साम्यवादी युवक विद्यार्थियों का था। उसका कार्यक्रम साम्यवादी सिद्धान्तों पर आधारित था। वीरा ने साधारण आदमियों में रह कर काम करने और उन्हें विद्रोह के लिए खड़ा कर देने के लिए एक व्यावहारिक कार्यक्रम बना लिया।

एक वर्ष से अधिक समय तक वीरा, बर्न (Berne) के विश्वविद्यालय में डॉक्टरी पढ़ती रही। जिस क्रान्ति-कारी दल से वीरा का सम्बन्ध था, वह रूस में बड़े ज़ोरों के साथ काम कर रहा था। उस दल का अपना एक मासिक पत्र था। उसका नाम था 'श्रमजीवी' (The Worker)। वह पत्र किसी दूसरे देश से प्रकाशित होता था। आरम्भ में उस दल का उद्देश्य था कि शान्तिमय ढङ्ग से प्रचार कर जनता में साम्यवादियों का एक दल बना दिया जाय। परन्तु उसी समय उस दल ने, ज़रूरत के अनुसार, एक बड़े और सफल विद्रोह की प्रतीक्षा किए बिना ही, छोटे-छोटे स्थानीय बलवों की स्वीकृति दे दी। दल के काम का ढाँचा बिल्कुल राष्ट्र-वादी सिद्धान्तों पर बनाया गया था। उसमें किसी महन्ती शासन अथवा किसी एक दल को दूसरे दल पर निरङ्कुशता से शासन करने की गुआइश नहीं थी। दल के सभी मेम्बर अपने आचरण में प्रजातन्त्र के सिद्धान्तों का पालन करते थे। उनके कामों में सार्वजनिक सेवा-भाव की स्पष्ट झलक थी।

क्रान्तिकारी दल के आदमी मज़दूरों में प्रचार करने के उद्योग में लगे। ट्रेक्टों और भाषणों द्वारा प्रचार किया गया। दल के सदस्य कारख़ानों के केन्द्रों में बँट गए। कुछ लोग मास्को के कारख़ानों में घुस गए और कुछ एक दूसरी जगह पहुँच कर जुलाहे का काम करने लगे। कुछ आदमी कियेव (Kiev) के शक्कर के कारख़ाने में काम करने चले गए। एक दल तुला (Tula) में जाकर बस गया। सन् १८७५ की शरद् ऋतु में, इस दल के आदमी तथा बहुत से मज़दूर क़ैद कर लिए गए, जो कुछ बचे उन्होंने अपना काम जारी रखने के लिए नया प्रोग्राम बना लिया।

पार्टी ने वीरा से अनुरोध किया कि मास्को आकर काम करे। ५-६ महीने के बाद उसकी डॉक्टरी की परीक्षा होने वाली थी। परीक्षा के लिए जो लेख लिखना था, उसका विषय भी उसने सोच लिया था। परन्तु क्रान्तिकारी दल की आज्ञा से, मास्को जाकर काम करने के लिए, उसने उस समय डॉक्टरी का डिप्लोमा प्राप्त करने का अवसर खो दिया। लोक-सेवा का मार्ग निष्कण्टक बनाने के लिए वीरा फ़िगनर ने अपने पति से भी सम्बन्ध-विच्छेद कर दिया। उसने पति को स्पष्ट लिख दिया कि अब मैं आपसे आर्थिक सहायता नहीं लूँगी और मेरे साथ आज से आपका कोई सम्बन्ध नहीं रहा! इस प्रकार घर-बार से नाता तोड़, वीरा ने उस कण्टकाकीर्ण पथ में प्रवेश करने का निश्चय कर लिया,

जो देश के आत्मोद्धार के लिए उस समय प्रत्येक रूसी युवक और युवती के लिए अनुकरणीय था।

वीरा मास्को में आकर रहने लगी। तितर-बितर हुए क्रान्तिकारी दल का वहाँ केन्द्र था। वीरा की छोटी बहिन लिडीया उस समय मास्को के एक थाने में क़ैद थी। वह उससे नहीं मिल सकी, इसलिए कि उसके और साथियों के ऊपर पुलीस वालों की निगाह न पड़ सके।

जेल में मित्रों से मिलने-जुलने का काम वीरा के सुपुर्द किया गया। उसका बहुत सा समय इशारों की भाषा में पत्र लिखने में बीतता। शाम को वह गन्दे शराबख़ानों में जाकर कुछ लोगों से मिलती, अथवा मास्को की अँधेरी और तङ्ग गलियों में पुलीस के उन आदमियों से मिलती, जिनसे मिलने का समय नियत रहता था। वीरा ने अपने कुछ मित्रों को जेल से छुड़ाने का प्रोग्राम भी बनाया, किन्तु उसमें उसे सफलता नहीं मिली।

ज़ारशाही का दमन-चक्र बड़ा ज़बर्दस्त था। वह प्रायः क्रान्तिकारी दल के ऊपर गाज गिराया करता था। दमन से सब दल अस्त-व्यस्त हो गए। लगभग ८०० आदमी विभिन्न अपराधों के कारण जेल में बन्द थे। विचाराधीन अभियुक्तों की संख्या तो और भी अधिक थी। जो लोग जनता में काम करने गए थे, उनकी आशा भङ्ग हो गई। क्रान्तिकारी काम का पुराना तार टूट गया। नई-नई बातों के आयोजन समाप्त हो गए। इससे वीरा को बड़ी निराशा हुई।

थोड़े दिन बाद वीरा फ़िगनर, एक दूसरे आदमी के ऊपर अपने काम की ज़िम्मेदारी छोड़ कर मास्को से यरोस्लाव चली आई। उसने वहाँ के अस्पताल में जाकर काम शुरू कर दिया। ६ सप्ताह के बाद असिस्टेण्ट सर्जन की जगह के लिए मेडिकल-बोर्ड की परीक्षा हुई। वीरा ने बड़े अच्छे नम्बरों से वह परीक्षा पास करके डॉक्टरी का डिप्लोमा ले लिया।

यरोस्लाव से वीरा कैज़ाँ चली गई। २४ वर्ष की उम्र से उसका जीवन पूर्ण रूप से रूस के क्रान्तिकारी आन्दोलन से सम्बद्ध हो गया।

सन् १८७६ के अन्त में, वीरा और उसके साथियों ने जनता में काम करने के लिए एक नई पार्टी बनाई। उसका नाम था 'लैण्ड एण्ड फ़्रीडम' (भूमि और स्वतन्त्रता)। इस पार्टी का प्रोग्राम था समाज के सब लोगों में जाकर काम करना, पल्टन, नौकरशाही, देहात में रहने वाले अधिकारी तथा अन्य छोटे-मोटे पेशेवर आदमियों पर अपना आतङ्क जमाना और रूसी सरकार के विरुद्ध लोकमत सङ्गठित करना। इन्हीं उद्योगों के फल-स्वरूप सेण्ट पीटर्सबर्ग में कैज़ाँ के गिर्जे में एक जुलूस निकाला गया। उस समय पुलीस ने बहुत से आदमियों को पीटा और गिरफ़्तार किया। बाद में मुक़दमा चला कर उन्हें सज़ा दे दी गई।

देहात में

वीरा फ़िगनर देहात में रह कर अपढ़-कुपढ़ लोगों की सेवा करना चाहती थी। इसीलिए वह समारा (Samara) में एक डॉक्टर के पास काम करने चली गई। उसने अपने ज़िले के स्टेडेण्ट्सी नाम के एक गाँव में उसे नियुक्त करा दिया। वीरा के सर्किल में १२ गाँव थे। हर महीने वह उन सब गाँवों का दौरा करती थी। अपने जीवन में पहली बार उसने देहाती कार्य-क्षेत्र में प्रवेश किया। आरम्भ में १८ दिन तक वह घर से दूर गाँवों और छोटे नगलों का दौरा करती रही। अब तक उसे पत्र-पत्रिकाओं और लेखों से देहाती लोगों की ग़रीबी और उनकी मुसीबतों का हाल मालूम हुआ था। परन्तु अब यहाँ आकर वीरा को व्यावहारिक रूप से वह देहाती दुनिया देखने को मिली, जो दुखों के अथाह सागर में डूब रही थी। वीरा जब कहीं दौरा करने जाती, तब प्रायः कहीं एक झोंपड़े में ठहर जाती। उसके आने की ख़बर पाकर वहाँ ३०-४० रोगी इकट्ठे हो जाते। उनमें बूढ़े, जवान, स्त्रियाँ और वे बच्चे होते थे, जिनकी चीख़-पुकार सारे वायु-मण्डल में गूँज उठती थी। इन मैले-कुचैले और गन्दे मरीज़ों को वीरा बिल्कुल समानता और आदर के भाव से देखती थी। उनके अधिकांश रोग बहुत पुराने होते। चमड़े की बीमारियों से प्रायः सभी पीड़ित थे। सिर-दर्द और गठिया के रोग तो १० से १५ वर्ष तक के पुराने थे। बहुत से आदमी सन्निपात, साँस, गर्मी आदि भयङ्कर रोगों के शिकार थे। वे प्रायः सभी दायमुल मरीज़ थे। उन्हें तन ढँकने को कपड़ा और पेट भरने को भोजन तक नसीब नहीं था। देहात के लोगों की यह दयनीय दशा देख कर वीरा का हृदय सिहर उठा। इन अभागे लोगों के

लिए दवा तैयार करते समय उसकी आँखों से आँसुओं की झड़ी लग जाती थी।

सुबह से शाम तक बड़ी शान्ति और पूरी सहानुभूति के साथ वीरा मरीज़ों को दवा बाँटती थी। किसी को चूरन देती और किसी को मरहम। साथ ही वह दवा इस्तेमाल करने का तरीक़ा भी बतलाती जाती। दवा बाँट चुकने पर वह ज़मीन पर पड़ी हुई घास के ढेर पर पड़ रहती। निराशा के काले बादल उसे घेर लेते। वह सोचने लगती—चारों ओर फैली हुई गन्दगी में ये दवाओं के नुस्ख़े भला क्या काम देंगे? इस भयङ्कर ग़रीबी का कभी अन्त भी होगा? भयङ्कर रोगों और ग़रीबी के भँवर में पड़े हुए इन लोगों से विद्रोह और सङ्घर्षण की आशा करना बालू में से तेल निकालने की आशा के समान है।

इतने पास से आज तक कभी वीरा ने रूसी जनता का दर्शन नहीं किया था। तीन महीने तक वह बराबर यही दृश्य देखती रही। इस दयनीय दशा में, प्रचार के लिए लोगों के सामने उसका मुँह तक नहीं खुल सका। उन्हीं दिनों समारा में चेपुटनौवा नाम की एक महिला गिरफ़्तार कर ली गई। उसके काग़ज़ों में वीरा तथा अन्य मित्रों के लिए लिखे गए पत्र भी पाए गए। इसके लिए वीरा को सेण्ट पीटर्सबर्ग से चेतावनी दी गई और वहाँ से उसका तबादला कर दिया गया। वीरा के चले आने के बाद ही वहाँ हथियारबन्द पुलीस रख दी गई।

इसके बाद वीरा अपने दो मित्रों के साथ वौरौने (Voronezh) में जाकर रही, फिर सेण्ट पीटर्सबर्ग चली गई। कुछ दिन वहाँ काम करने के बाद वह पैट्रौस्क ज़िले में जाकर काम करने लगी। उसकी बहिन ईव्जीनिया भी वहाँ आ गई। वह डॉक्टरी का इम्तिहान पास कर चुकी थी। दोनों बहिनें देहात में रह कर सार्वजनिक सेवा करने लगीं। किसानों के लिए स्त्रियों का डॉक्टर होना बड़े ताज्जुब की बात थी। लोग इन महिलाओं के सम्बन्ध में तरह-तरह की बातें पूछने लगे। जब उन्हें मालूम हो गया कि ये स्त्रियाँ इलाज के लिए यहाँ रहती हैं, तब तो वे सैकड़ों की संख्या में उनके पास आकर इलाज कराने लगे। सवेरे से रात तक डॉक्टर का झोंपड़ा छकड़ा-गाड़ियों से घिरा रहता था। थोड़े ही दिनों में वीरा का नाम देहात में चारों ओर फैल गया।

वीरा फ़िगनर यहाँ किसी डॉक्टर की मातहती में काम नहीं कर रही थी। काम करने की उसे पूरी आज़ादी थी। वह ज़रूरत के अनुसार मेडिकल-बोर्ड से दवा मँगा लेती थी। वीरा की सेवाओं से किसानों को बड़ा लाभ हुआ। एक अभागी किसान-स्त्री ४०-५० मील से पैदल चल कर उसके पास पहुँची। उसे रक्त-प्रदर का रोग था। उसने घर लौटते समय कहा कि जैसे ही वीरा ने उसे छुआ, वैसे ही उसका ख़ून गिरना बन्द हो गया। कुछ लोग तेल और पानी लेकर इस युवती डॉक्टर के पास पहुँचे और कहा कि इस पर "मन्त्र पढ़ दो!" उन्होंने सुन रक्खा था कि उसने "मन्त्र पढ़ कर" अद्भुत सफलता के साथ लोगों की बीमारियाँ दूर कर दी हैं!

वीरा के पास, पहले महीने में आठ सौ और दस महीने में ५ हज़ार मरीज़ आए। इस पुण्य-कार्य में बहिन ईव्जीनिया ने भी उसका हाथ बँटाया। थोड़े दिन बाद वीरा ने एक स्कूल खोल दिया। स्कूल की किताबें, काग़ज़, क़लम, दावात आदि पढ़ने का सब सामान लड़कों को मुफ़्त दिया जाता था। तुरन्त ही वीरा के घर २५ लड़के-लड़कियाँ पढ़ने के लिए आने लगे। उस ज़िले के तीनों परगनों में एक भी स्कूल नहीं था। ईव्जीनिया के पास दूसरे गाँवों से भी लड़के आते थे। इन पढ़ने वाले लड़कों में, १५ मील दूर तक के लड़के होते थे।

डॉक्टर के झोंपड़े ही में स्कूल और अस्पताल था। जब वीरा और उसकी बहिन मरीज़ों को दवा बाँटने का काम कर चुकतीं, तब गाँवों में कहीं किसानों के घर चली जातीं। अपने साथ कोई पुस्तक ले लेतीं, अथवा करने को कोई दूसरा काम। इन उत्साही महिलाओं की बातें सुनने के लिए चारों ओर से बात की बात में लोग इकट्ठे हो जाते। बस, पढ़ना आरम्भ हो जाता और रात के १०-११ बजे तक लोग बड़े ध्यान से उसे सुनते। कभी किसानों को उपयोगी कहानियाँ और लेख पढ़ कर सुनाए जाते और कभी चुनी हुई मनोरञ्जक ऐतिहासिक बातें। अवसर मिलने पर, कभी किसानों के जीवन, उनके काम की बातें, खेती-बारी, ज़मींदारों, अधिकारियों और उनके पारस्परिक सम्बन्धों की चर्चा हुआ करती थी। वे महिलाएँ किसानों की ज़रूरतों को समझतीं, उनकी शिकायतों और कष्ट-कथाओं को सुनतीं, उनसे सहानु-

भूति प्रकट करतीं और उनके दुख-सुख में अपना हाथ बँटाती थीं। असल बात यह है कि उस देहाती वायु-मण्डल में वीरा किसानों के साथ बहुत ही घुल-मिल गई थी। किसान लोग उसे 'देवी' कह कर पुकारते थे।

वीरा का काम बड़ी सरगर्मी से हो रहा था। इधर ज़िला-बोर्ड के अधिकारियों के द्वारा गाँव में यह अफ़वाह उड़ी कि वह फ़रार हुए लोगों को आश्रय देती है। इसके फल-स्वरूप वीरा के यहाँ आने-जाने वाले लोगों की निगरानी होने लगी। गाँव के लोगों ने यह भी कहा कि प्रिन्स चेगोडाइयैव ने प्रत्येक आदमी को यह विश्वास दिला दिया है कि वीरा किसानों के झोंपड़ों में हर जगह जाकर क्रान्तिकारी घोषणाएँ पढ़ कर सुनाती है और एक भी मरीज़ को ऐसा नहीं जाने देती, जिसके सामने यह बात न कहती हो कि सब जगह अन्याय का राज्य है और हर एक अधिकारी बेईमान है !

ज़ार की हत्या

इस समय देहात में वीरा फ़िगनर की स्थिति बहुत डावाँडोल थी। पादरी तथा कुछ अधिकारियों ने उसके विरुद्ध तरह-तरह की अफ़वाहें उड़ा दी थीं। इसी बीच में क्रान्तिकारी पार्टी का एक कार्यशील व्यक्ति सोलोयैव वीरा से मिलने आया। उसका प्रोग्राम था कि सेण्ट पीटर्सबर्ग जाकर ज़ार एलेक्ज़ेण्डर द्वितीय की हत्या कर डाली जाय। सैरटौव में हुई दल की एक बैठक में निश्चय किया गया कि गाँवों में ज़मींदारों और पुलीस के विरुद्ध मार-काट का त्रासमय वातावरण बना दिया जाय और हर सम्भव उपाय का सहारा लेकर, पूरी शक्ति से न्याय की रक्षा की जाय।

ज़ारशाही की करतूतों से रूस का सार्वजनिक जीवन बहुत ख़तरे में था। लोगों की आत्मा ग़रीबी और ज़ोर-ज़ुल्म के मारे बिल्कुल पिस गई थी, उनमें इतना दम न रह गया था कि ज़रा भी सर उठा कर अन्याय का प्रतिकार करते। इस काम के लिए नई क्रान्तिकारी शक्तियों की ज़रूरत थी। इस दशा को ध्यान में रखते हुए सोलोयैव ने वीरा और उसके साथियों से कहा :—

"सम्राट ज़ार की हत्या से देश के सामाजिक जीवन में परिवर्तन होगा और हमारा आगे बढ़ कर काम करने का मार्ग साफ़ हो जायगा। पढ़े-लिखे आदमी अधिक समय तक संशय में न पड़े रह कर, अधिक व्यापक और ऐसे फलप्रद क्षेत्र में प्रवेश करेंगे, जो देश के सार्वजनिक जीवन के लिए बहुत ही उपयोगी सिद्ध होगा। देश में सर्वत्र सच्ची युवक-शक्ति का श्रोत उमड़ उठेगा। ठीक यही श्रोत है, जिसकी रूस के समस्त किसानों के जीवन पर प्रभाव डालने के लिए बड़ी ज़रूरत है!"

सोलोयैव ने वीरा और उसके साथियों को विश्वास दिला दिया कि वह स्वयं पूरी सफलता के साथ ज़ार की हत्या कर डालेगा। ज़ार की हत्या के सम्बन्ध में वीरा फ़िगनर ने अपनी आत्म-कथा में लिखा है :—

"यदि निरङ्कुश अधिकारियों अथवा राज्य से जनता की आवश्यकताओं और समाज की इच्छाओं की पूर्ति में किसी तरह से कुछ सहायता मिले, तो राजनैतिक स्वाधीनता का अभाव दबाया भी जा सकता है। इस दशा में यह भी हो सकता है कि लोग उस अभाव को गम्भीरता से अनुभव न करें। परन्तु यदि राज-सत्ता इन दोनों बातों को भुला कर, अपने ही रास्ते चलती जाय, यदि लोगों के करुण-क्रन्दन, मज़दूरों की माँगों और सार्वजनिक कार्यकर्त्ताओं की आवाज़ सुनने के लिए उसके कान बहरे हो जायँ, यदि विद्वानों की ढूँढ़ निकाली हुई गम्भीर बातों, और अर्थशास्त्रियों द्वारा निकाले हुए आँकड़ों की वह उपेक्षा करे, यदि उसकी प्रजा का एक भी समुदाय अपने सामाजिक जीवन पर प्रभाव डालने का कोई भी साधन न रक्खे; यदि सारे आधार व्यर्थ हो जायँ, सारे रास्ते रोक दिए जायँ; यदि युवकों के रूप में समाज का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भाग अपने कामों के लिए कोई क्षेत्र न पावे, और उसके सामने सार्वजनिक हित के नाम पर कोई ऐसा काम न हो, जिसमें वह अपना हार्दिक उत्साह लगा सके—तो इस दशा में स्थिति असहनीय हो उठती है, और समाज का सारा रोष अपने आप उस आदमी पर इकट्ठा हो जाता है, जो उस शाही अधिकार का प्रतिनिधित्व करता है, जो सामाजिक जीवन से बिल्कुल अलग है; लोगों को क्रोध आता है उस राजा पर, जो राष्ट्र के जीवन, उसकी भलाई और प्रसन्नता के लिए स्वयं अपने को ज़िम्मेदार ठहराता है, किन्तु जो करोड़ों आदमियों की बुद्धिमत्ता और बल की अपेक्षा, अपनी बुद्धिमत्ता और अपने ही बल की क़ीमत अधिक लगाता है। और यदि, उस राजा को सन्तुष्ट करने के

लिए अख़्त्यार किए गए सारे ढङ्ग व्यर्थ सिद्ध हुए हों, तब क्रान्तिकारियों के लिए केवल एक ही—हिंसा का मार्ग रह जाता है। यही कारण है कि सोलोयैव ने रिवॉल्वर उठा ली !"

सेण्ट पीटर्सबर्ग में समर गार्डन के पास सोलोयैव ने ज़ार पर रिवॉल्वर से गोली चलाई। एक किसान ने उसकी कुहनी में धक्का दिया, इससे निशाना चूक गया ! इस अपराध में सोलोयैव को फाँसी दे दी गई ! अधिकारियों को यह भी पता चल गया कि सोलोयैव से वीरा का सम्बन्ध था। इसी प्रकार अनेक बार ज़ार को मारने का उद्योग किया गया, किन्तु सफलता न मिली।

वीरा फ़िगनर क्रान्तिकारी दल की कार्यकारिणी कमिटी की एक बहुत ही योग्य और कार्यशील मेम्बर थी। ज़ारशाही के दमन का उत्तर उसने अधिकाधिक शक्ति, साहस और क्रियाशीलता से दिया। वीरा ने बड़ी तत्परता के साथ नई-नई शक्तियों का सङ्गठन किया। अपने दल को उसने "प्रजातन्त्रवादी साम्यवादी" बना दिया। यह दल केवल राजनैतिक ही न था, और न केवल राजनैतिक सफलता प्राप्त करना उसका एकमात्र उद्देश्य ही था। साधारण जनता तक पहुँचने और स्वतन्त्रता के वायु-मण्डल द्वारा उनकी उन्नति तथा आवश्यकताओं का राजमार्ग खोल देने का यह एक साधन था। साम्यवादी दृष्टि से वीरा और उसकी पार्टी का उद्देश्य यह था कि आर्थिक क्षेत्र की सब से उपयोगी चीज़, उपज और ज़मीन, किसान-सङ्घ के हाथ में पहुँच जाय और राजनैतिक क्षेत्र में एकतन्त्र अधिकार की जगह प्रजातन्त्र शासन की स्थापना हो।

पार्टी की आज्ञा से ज़ार की हत्या के उद्योग में सहायता करने के लिए वीरा फ़िगनर ओडैसा चली गई। वहाँ उसके कई साथी और आ गए। एक मकान लेकर सब लोग रहने और बड़े उत्साह से काम करने लगे।

काम करने में वीरा बहुत चतुर थी। जहाँ वह रहती थी, वहीं के लोगों से ख़ूब घुल-मिल जाती थी। ओडैसा में उसकी मित्रता प्रोफ़ेसर, सेनापति, ज़मींदार, विद्यार्थी, डॉक्टर, सरकारी अधिकारी, श्रमजीवी आदि छोटे-बड़े सभी तरह के लोगों से हो गई। जहाँ वह जाती, वहीं क्रान्तिकारी विचारों का प्रचार और अपनी पार्टी के कामों का समर्थन करती थी।

ओडैसा में वीरा के मकान पर ज़ार की हत्या के लिए ज़रूरी सामान का प्रबन्ध किया जाने लगा। कई प्रयत्न निष्फल हो चुके थे, इसलिए क्रान्तिकारी कमिटी ने निश्चय कर लिया कि इतवार पहली मार्च को ज़ार की हत्या ज़रूर कर डाली जाय। शनिवार की रात भर काम होता रहा। वीरा ने भी इस काम में अपने साथियों का हाथ बटाया। ज़ार के निकलने के रास्ते में पनीर की एक दूकान खोल दी गई। वहीं से ज़ार पर आक्रमण किया जाने को था।

रविवार को वीरा और उसके साथी अपने प्रोग्राम को पूरा करने में जुट गए। परन्तु ज़ार वहाँ होकर निकला ही नहीं, जहाँ कि उसे मारने का प्रबन्ध था। वीरा की एक साथिनी सोफ़िया पैरोव्स्काया बड़ी कार्य-कुशल थी। वह तुरन्त ही ताड़ गई कि ज़ार ईकैटैरिनिन्स्काया नहर के बाँध के रास्ते लौटेगा, इसलिए उसने पहले बना हुआ प्रोग्राम रद्द कर, एक मिनट में दूसरा प्रबन्ध कर लिया। उसने एक दूसरे रास्ते पर बम फेंकने वाले चार आदमी खड़े कर दिए और हुक्म दे दिया कि मेरा रूमाल हिलते ही ज़ार पर बम बरसा दिए जायँ।

दिन के दो बजे एक के बाद दूसरी तोप छूटने की सी आवाज़ हुई ! यह बमों की आवाज़ थी। सोफ़िया का रूमाल हिलते ही शाही गाड़ी पर बम फेंक दिए गए ! शाही गाड़ी चूर-चूर हो गई ! देखते-देखते ज़ार के प्राण-पखेरू उड़ गए ! बम फेंकने वालों में से वीरा का एक साथी भी बम की चोट से घायल हुआ और चल बसा ! शहर भर में सनसनी फैल गई। चारों ओर ज़ार की हत्या की चर्चा हो उठी। ज़ार की हत्या के अपराध में सोफ़िया पैरोव्स्काया और उसके बम फेंकने वाले साथी फाँसी पर चढ़ा दिए गए।

सोफ़िया वीरा की जीवन-सहचरी के तुल्य थी। उसके फाँसी पर चढ़ जाने से उसे बड़ी वेदना हुई। वीरा ने अपनी आत्म-कथा में सोफ़िया के महान व्यक्तित्व की बड़ी प्रशंसा की है। वह रूस भर में पहली महिला थी, जो अपने देश की आज़ादी की दीप-शिखा पर, इठलाते हुए पतङ्ग की भाँति बलि चढ़ गई !

वीरा फ़िगनर कार्यक्षेत्र में डट कर अपना काम करती रही। ज़ारशाही के दमन से वह ज़रा भी विचलित न हुई। क्रान्तिकारी दल ने उसे अपना वैदेशिक मन्त्री बना

दिया था। इस काम को उसने बड़ी लगन और बुद्धिमत्ता से पूरा किया। जब क्रान्तिकारी दल का केन्द्र सेण्ट पीटर्सबर्ग से उठ कर मास्को लाया गया, तब वीरा भी वहीं काम करने के लिए आ गई। दमन-चक्र बराबर चल रहा था। ढूँढ़-ढूँढ़ कर क्रान्तिकारी दल के आदमी पकड़े जा चुके थे। ऐसा वक्त भी आ गया, जब पार्टी की कार्यकारिणी कमिटी में वीरा फ़िगनर के अतिरिक्त एक भी मेम्बर नहीं बचा। सब लोग पकड़ कर जेल में डाल दिए गए। एक साथी ने विश्वासघात करके वीरा को भी पकड़वा दिया। वह गिरफ़्तार करके सेण्ट्स पीटर और पौल के दुर्ग में बन्द कर दी गई। नए ज़ार एलेक्ज़ेण्डर तृतीय ने कहा—ईश्वर को धन्यवाद है कि ऐसी ख़तरनाक औरत पकड़ी गई!

पीटर और पौल का दुर्ग बड़ा भयानक था। जो व्यक्ति वहाँ पहुँच जाता था, उसका ख़ुदा ही हाफ़िज़ था। मुक़दमे से पहले २० महीने तक वीरा को इसी दुर्ग में बन्द रहना पड़ा। १८ सितम्बर, सन् १८८४ को उस पर फ़र्द जुर्म लगा दिया गया। मामले की पैरवी के लिए सरकार की ओर से एक वकील भी मिल गया। परन्तु वीरा ने अपनी पैरवी कराने की ज़रूरत नहीं समझी।

वीरा ने अदालत के सामने अपनी सफ़ाई देने की क़तई ज़रूरत नहीं समझी। हाँ, उसने एक ज़ोरदार भाषण देकर क्रान्तिकारी दल की कार्यकारिणी की मेम्बर की हैसियत से अपनी स्थिति पर प्रकाश डाल कर अपना कर्तव्य-पालन ज़रूर किया। भाषण में उसने कहा—

"स्वतन्त्र प्रेसों के अभाव से, जनता में शान्तिमय उपाय से विचारों का फैलाना भी असम्भव था। यदि शासन-पद्धति को बदलने के लिए, देश की वर्तमान स्थिति में, कोई और साधन दीख पड़ता, तो मैं हिंसात्मक कार्यों में प्रवृत्त न होकर उसका प्रयोग ज़रूर करती। परन्तु उस वक्त, न तो कोई ऐसा साधन ही था, और न इस प्रकार का साहित्य ही था, जिससे हमें कोई दूसरा मार्ग सूझ पड़ता। इस दशा में सशस्त्र क्रान्ति के प्रोग्राम के सिवा और कोई चारा ही न था।"

वीरा फ़िगनर के साथ कुछ और अभियुक्तों को भी फाँसी का हुक्म सुनाया गया। उनमें ६ फ़ौजी अफ़सर थे। फाँसी के हुक्म के बाद वीरा के घर के कपड़े उतरवा कर, क़ैदी के फटे-पुराने कपड़े पहना दिए गए। जो वीरा एक धनी परिवार की गोद में बड़े नाज़ से पाली-पोसी गई थी, वही आज क़ैदी के वेष में, फटे-पुराने कपड़े पहने हुए, बड़े गौरव से ऊँचा मस्तक किए खड़ी थी! फाँसी का हुक्म सुन कर वह अपने आदर्श से ज़रा भी विचलित न हुई। उसकी नस-नस में स्वदेशानुराग की बिजली दौड़ रही थी। एक दिन शनिवार को जेल में डॉक्टर ने आकर पूछा—"आपका स्वास्थ्य कैसा है?" जो व्यक्ति अपना सर हथेली पर लिए हुए फाँसी की प्रतीक्षा कर रहा हो, उसके लिए डॉक्टर का प्रश्न कैसा
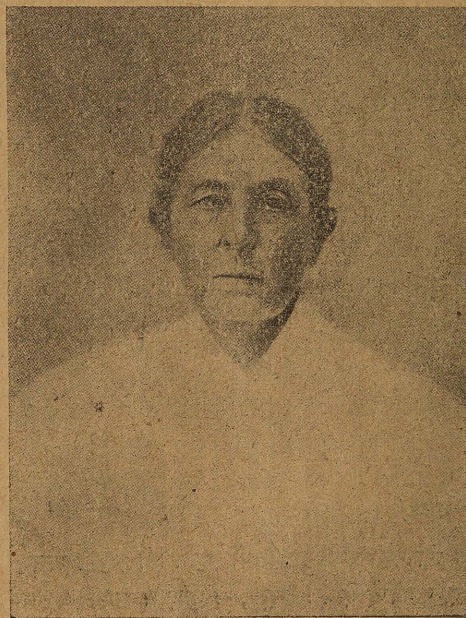
वीरा फ़िगनर

(जेल से लौटने पर)

विचित्र है? परन्तु फिर भी, वीरा ने मुस्कुराते हुए उत्तर दिया—"बहुत अच्छा!"

फाँसी का हुक्म सुनाए जाने के आठवें दिन शाम को दुर्ग के कमाण्डर ने आकर वीरा को एक काग़ज़ पढ़ कर सुनाया—"श्रीमान सम्राट ने कृपा कर यह हुक्म दिया है कि तुम्हारी फाँसी की सज़ा बदल कर, तुम्हें जीवन भर के लिए क़ैद कर दिया जाय।"

फाँसी की चर्चा करते हुए वीरा ने स्वयं लिखा है—

यदि मेरी फाँसी की सज़ा बहाल रहती, तो मैं बिल्कुल निश्चिन्त होकर फाँसी पर चढ़ जाती। मेरा मन मृत्यु के लिए तैयार था। मैंने घुल-घुल कर मर जाने की अपेक्षा फाँसी के तख़्ते पर झूल कर एकदम समाप्त हो जाना अच्छा समझा था!

वीरा फ़िगनर को अपने जीवन के २०-२२ वर्ष रूस के कई जेलख़ानों में बिताने पड़े। जेल-जीवन के प्रारम्भ में कई वर्ष तक उन्हें घोर कष्ट सहना पड़ा। कालकोठरी में बन्द रहने के कारण ९ वर्ष बाद उन्हें आसमान के तारे देखने को नसीब हुए थे! रूस की भूमि से पराधीनता का अन्त कर, वहाँ स्वातन्त्र्य-सूर्य की सुनहली प्रभा का प्रसार देखने के लिए, इस साहसी वीराङ्गना ने जिस वीरता से जेल की कठोर यातनाएँ सहीं, उसकी कल्पना से हृदय काँप उठता है। आरम्भ से अन्त तक देवी वीरा का जीवन, त्याग और तपस्या का एक आदर्श जीवन रहा है। उसने घर-बार से नाता तोड़, राजसी वैभव को ठुकरा कर जो काम कर दिखाया, वह उसीके अनुरूप था। वीरा और उसके अनेक साथी अमर शहीदों के बलिदान से रूस में नवयुग की वह अनुपम ज्योति जग सकी, जो आज़ाद दुनिया के इतिहास में अपना सानी नहीं रखती। न जाने, वीरा फ़िगनर के कितने साथी रूस के नव्य राष्ट्र के निर्माण की साध में, उसकी नींव में अपनी अस्थियाँ गला कर, विस्मृति के गहरे गर्त्त में गिर पड़े। किन्तु आज आज़ाद रूस के इतिहास में उनका अमर नाम सुनहले अक्षरों में दूर से चमकता हुआ दिखाई पड़ता है। आज़ाद रूस में आज जगह-जगह उन शहीदों के कीर्त्ति-स्तम्भ गौरव से ऊँचा मस्तक किए आकाश से बातें कर रहे हैं। हर्ष की बात है कि ज़ारशाही का दमन-चक्र वीरा फ़िगनर को दुनिया से मिटा देने में समर्थ न हो सका, इसलिए वे आज़ाद रूस की भव्य भूमि पर, अपने तथा अपने साथियों के विकट उद्योगों के फल-स्वरूप स्वतन्त्रता देवी का विशाल मन्दिर खड़ा होते हुए देख सकीं। निस्पृह सेवा, त्याग और बलिदान की प्रतिमूर्त्ति वीरा फ़िगनर ऐसी साहसी वीराङ्गना को पाकर भला किस देश का मस्तक गौरव से ऊँचा न हो उठेगा?

[अगले अङ्क में समाप्त]

उद्वेलित-स्मृति

[श्री० 'सतीश']

आज आ पड़ी क्यों अतीत-विस्मृति की स्मृति अनजान!
तुम न सकीं हे देवि! भूल, मैं कुछ न सका पहचान!!
किन्तु आँख खुल गई अचानक, सुन वह मधुर कहानी—
याद आ पड़ीं उस अतीत-युग की रतियाँ दीवानी!!
रे उन्माद! दूर हट, हट जा स्मृति-दुनिया की रानी!
क्या पाओगी आज सुना जी की वह कसक-कहानी?

अब क्यों इस उजड़ी दुनिया में फेंक रही हो आग?
क्यों, बिखेरती हो कण-कण में विष के बने पराग?
ये विप्लव के गीत! और ये प्रलय-पतन के राग!
हाय! डराती हो क्यों रह-रह मेरा व्यथित विराग??
प्रलय-भरे जीवन में क्यों प्रतिपल आती-जाती हो?
नस-नस में मदिरा सी—विष-सागर सी लहराती हो!!

अभिलाषा? आशा?? यह कैसा—कैसा देवि! प्रकाश???
मुझे सुनाने आई हो, मेरा काला-इतिहास!!
कितने पतझड़ हुए...! आह! वह क्षणिक-वसन्त-विलास!
हाथ जोड़ता हूँ...न करो दुर्दिन में यों उपहास!!
आज रहा क्या शेष? देवि! क्या कहती? क्या पाओगी?
जीवन की तम-राशि-बीच, तुम भी हे...! खो जाओगी...!!

भारतीय नारी-जीवन

[कविवर—श्री० आनन्दीप्रसाद जी श्रीवास्तव]

[चित्रकार—श्री० पी० मुकर्जी]

[१]
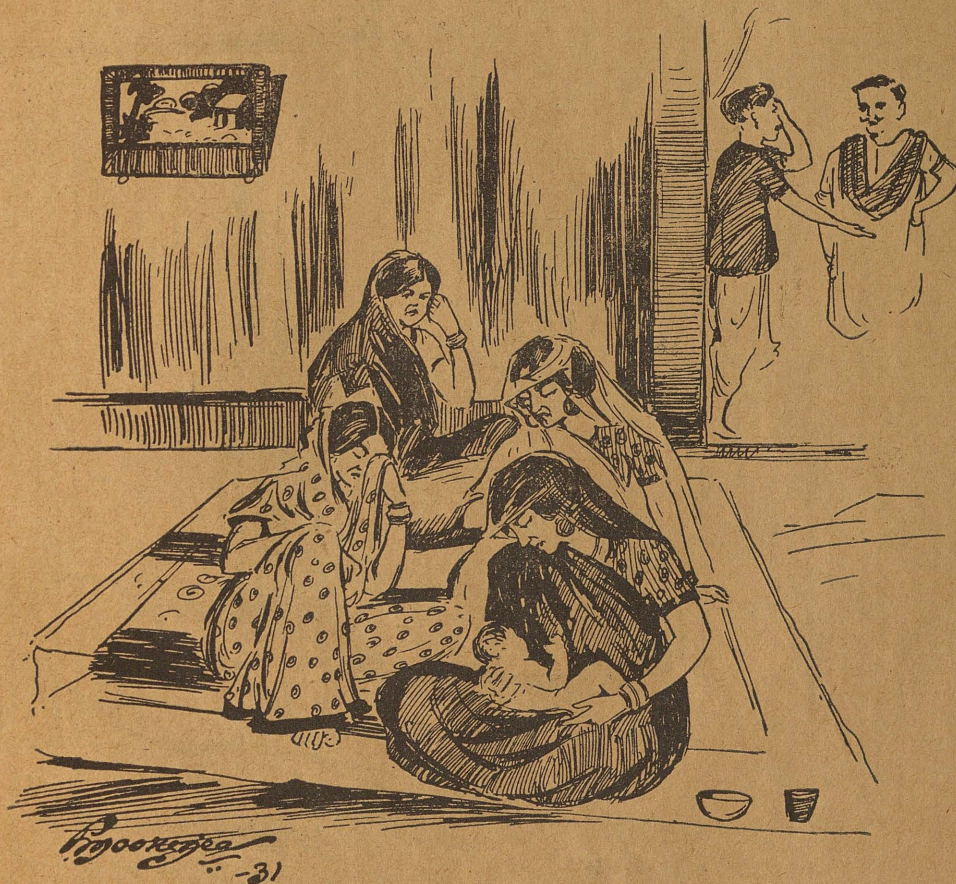
जन्म हुआ कन्या का घर में, सब यह कह रोते हैं आज—
"हा भगवन्! किसलिए गिरा दी, तुमने यों इस घर पर गाज,
धन इतना आवेगा कैसे, होगा कैसे इसका ब्याह,
इस विपत्ति से समुद्धार की, नहीं सूझती हमको राह।"

होकर के वय-प्राप्त माँजने बरतन लगी वही सुकुमार,
यही एक शिक्षा है उसकी, और रसोई-घर संसार।
हो जावेगी बस इस शिक्षा से वह गृहिणी-पद के योग,
पति के घर जा उन्हें करावेगी भोजन का गुरु-सुखभोग।

समुचित शिक्षा मिली; हो रहा है अब बूढ़े नर से ब्याह,
है कन्या के हेतु वृद्ध के अधरामृत का सिन्धु अथाह।
मिला किसी को द्रव्य, किसी के शिर का उतर गया है भार,
और किसी के हेतु खुल रहा कठिन यातना-गृह का द्वार !!

दिन भर चक्की लगी पीसने, लिए हुए बच्चे को गोद,
सद्गृहिणी को और चाहिए किस प्रकार का मधुर प्रमोद ?
करे रात-दिन काम, गालियाँ सहे, यही है उसका भाग,
डाँट-मार कर पति भी उस पर नित दिखलाते हैं अनुराग ।
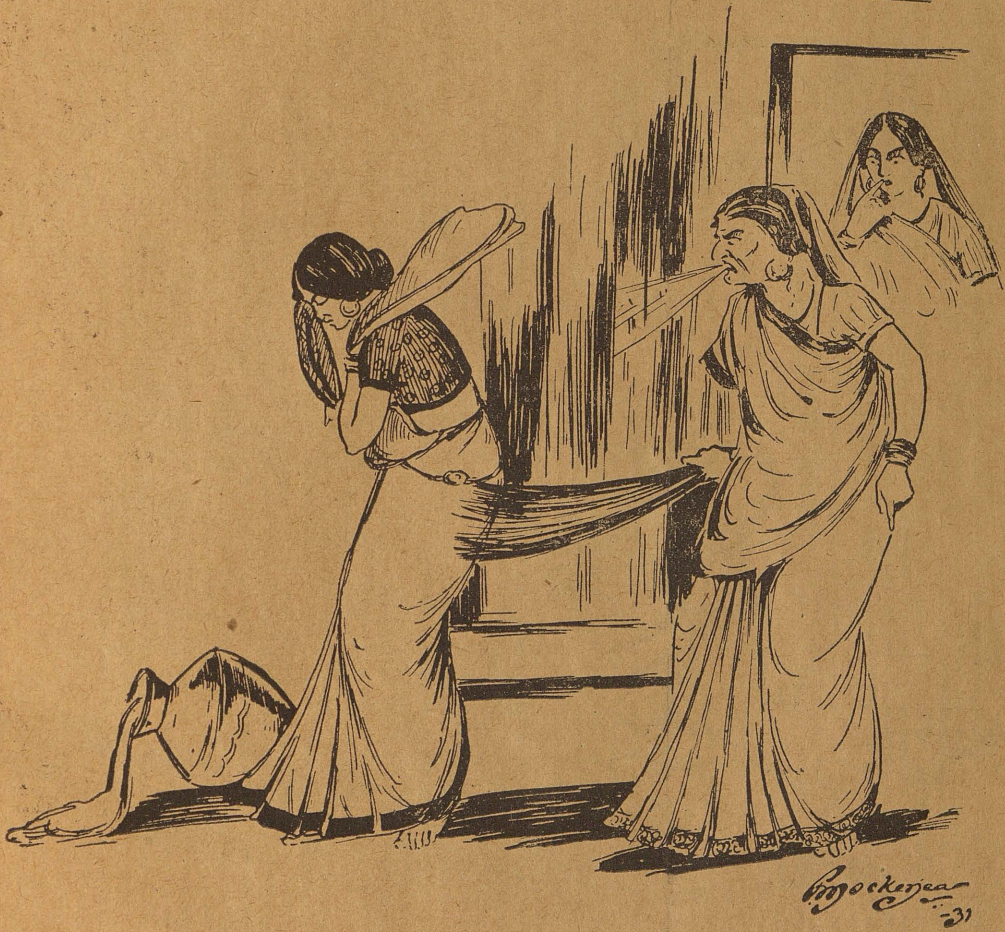
बूढ़े की माता करती है झाड़ू से उसका सत्कार,
त्रुटि है अथवा नहीं काम में, करता है यह कौन विचार !
किस पर और, उतारे अपने महाक्रोध का दुर्धर भार,
अगर रहे चुप बिगड़े गौरवपूर्ण सासपन का संसार।

ताड़न में जो त्रुटि है उसको पूरा करते हैं पतिदेव,
मातृ-अवज्ञा करें ! प्रिया पर यद्यपि मरते हैं पतिदेव !
सब बुराइयों के महारि का करते हैं वे तो उपयोग,
कौन कुटिलता दूर न कर दे जिसको पाद-त्राण-प्रयोग ?

इन सब अत्याचारों का फल हुआ, पड़ गई वह बीमार,
पास न उसके कोई फटका, सेवा की यों भली प्रकार !
भारत में होता रहता है विपुल गृहों में यह व्यापार,
अबलाओं की करुण दशा पर क्यों न पिघलते करुणागार !

हुए बना कर मुँह उदास अब, अबला के मर जाने पर,
शोक मनाते उसके कुदशा-मुक्ति इस तरह पाने पर !
अथवा यही सोचते हैं ये, कौन करेगा घर का काम,
है बच्चा रो रहा फूट कर हुआ विधाता उससे वाम !

बदला

[श्रीमती तेजरानी पाठक, बी० ए०]

"बेटा! मेरा अपमान न भूलना। याद रक्खो, तुम क्षत्रिय हो। क्षत्रिय किसी स्त्री का अपमान नहीं सह सकते। फिर तुम मेरे पुत्र होकर, क्या अपनी माँ के अपमान का बदला न लोगे?"

प्रताप ने अर्द्ध-कम्पित स्वर में कहा—माँ! तुमने अब तक अपने अपमान की बात मुझसे क्यों नहीं कही? मैं अपने रक्त की एक-एक बूँद बहा कर भी तुम्हारे अपमान का बदला लेता। विश्वास रक्खो, वह चाहे कोई भी क्यों न हो, मुझसे बच नहीं सकता। बोलो, देर न करो, मुझे जल्दी बताओ, वह पापी कौन है, जिसने तुम्हारा अपमान किया?

वृद्धा ने थोड़ी देर के लिए प्रताप के तमतमाते हुए चेहरे पर अपनी आँखें गड़ाईं और फिर कुछ सोच कर बोली—इतने उत्तेजित न हो बेटा, नहीं तो कुछ भी नहीं कर पाओगे। क्योंकि जो गरजते हैं वे बरसते नहीं। उस समय तुम दो साल के बालक थे, बदला नहीं ले सकते थे। उस समय तो तुम्हारी रक्षा करना ही कठिन था। तुमको बचाने के लिए, तुम्हें गोद में लेकर मैं अपना निवास-स्थान को छोड़ कर, यहाँ मेवाड़ भाग आई थी। मैं.........!

वृद्धा कुछ और कहने वाली थी कि प्रताप बीच में ही बोल उठे—यह क्या माँ! तो क्या हम लोग मेवाड़ के वासी नहीं हैं?

वृद्धा—शान्त रहो बेटा, धीरज धरो। उतावले मत हो। मैं सब तुम्हें बताती हूँ। परन्तु हाँ, एक बात बताओ। क्या तुम उस अपमान की बात सुनना चाहते हो? क्या उस अपमान की पूरी कथा सुनोगे?

वृद्धा ने एक तीव्र दृष्टि प्रताप के चेहरे पर डाली। परन्तु प्रताप को चुप देख कर उसके मुख-मण्डल पर खेद और चिन्ता के भाव दृष्टिगोचर होने लगे।

एकाएक प्रताप बोले—नहीं, अपनी माँ का अपमान मैं सुनना नहीं चाहता। मेरी माँ का अपमान किसी ने किया है, बस यही मेरे बदला लेने के लिए यथेष्ट है। बस, अब देर न करो। बताओ, वह पापी कौन है? मैं अभी उसका सिर काट कर तुम्हारे चरणों पर डाल दूँगा और संसार को दिखा दूँगा कि प्रताप की माँ का अपमान करना खेल नहीं है।

वृद्धा का मुँह प्रसन्नता से खिल उठा। उसके चेहरे पर छाया हुआ चिन्ता का भाव दूर हो गया। वह बोली—शाबाश बेटा, मुझे तुमसे यही आशा थी, इसी आशा पर मैं उस अपमान को इन अट्ठारह वर्षों तक अपने हृदय में दबाए रख सकी थी। मेरे विचार से जो पुत्र अपनी माँ के अपमान की बात कहानी के रूप में सुनने को उत्सुक हो, उससे प्रतिकार की आशा रखना विडम्बना है। इसी से मैंने तुम्हारी परीक्षा लेने की इच्छा से पूछा था कि क्या तुम उस अपमान की बात सुनोगे। यदि तुम मेरे अपमान की कहानी सुनने की इच्छा प्रकट करते तो मैं तुम्हें कदापि न सुनाती। तब मुझे विश्वास हो जाता कि तुम बदला नहीं ले सकोगे। किन्तु अब तुम्हें वह बात अवश्य बताऊँगी। क्योंकि सम्भव है, भविष्य में कभी इस विषय को जानना तुम्हारे लिए आवश्यक हो जावे। अच्छा सुनो।

प्रताप बड़े ध्यान से सुनने लगा।

वृद्धा बोली—"हम लोग पहिले जयपुर में रहते थे। तुम्हारे पिता बड़े अमीर तो न थे, परन्तु समाज में उनका यथेष्ट सम्मान था। नाम तो उनका तुम जानते ही हो, यदि उनकी सूरत का अनुमान करना चाहो और उनका पूरा परिचय जानना चाहो, तो मेरी पूजा की चौकी पर से वह रामायण उठा कर देख लो। उसमें उनका एक चित्र रक्खा है और उसके नीचे उनका पूरा पता लिखा है।

प्रताप रामायण लेने के लिए उठने लगा, किन्तु वृद्धा ने उसे वहीं रोक कर कहा—ठहरो बेटा, जल्दी न

करो। पहले सब बातें सुन लो। मेरे जीवन का कुछ ठिकाना नहीं है। न मालूम कब इसका अन्त हो जाए। क्योंकि तैलहीन दीपक की टिमटिमाती हुई अन्तिम ज्योति का कोई भरोसा नहीं होता। मुझे ऐसा लगता है, मानो कोई मेरे अन्दर से पुकार-पुकार कर कह रहा है कि यही ज्वर मेरा काल-ज्वर है। इसीलिए तुम्हें सब बातें बताने के लिए मैं जल्दी कर रही हूँ। मुझे भय है कि कहीं मेरे मन की इच्छा मन ही में न रह जाय।

प्रतापसिंह फिर जहाँ के तहाँ चुपचाप बैठ गए। वृद्धा थोड़ी देर चुप रह कर फिर बोली—उसी शहर में तुम्हारे पिता के एक मित्र भी रहते थे। दोनों में इतनी घनिष्ट मित्रता थी कि वे परस्पर भाई-भाई मालूम पड़ते थे। लोग उन्हें राम-लक्ष्मण की जोड़ी कहा करते थे। तुम्हारे पिता के मित्र काफ़ी अमीर थे। वे जब कहीं बाहर जाते तो मित्रता के नाते तुम्हारे पिता के लिए कुछ न कुछ भेंट अवश्य लाते थे। परन्तु हम लोग इतने ग़रीब थे कि उस भेंट का बदला भेंट में नहीं चुका सकते थे। अतएव हम लोग उनकी उदारता की सराहना किया करते और उनकी बड़ाई कर-कर के अपने मनोगत कृतज्ञता के भावों को शान्त किया करते थे। उस समय हम लोगों को मालूम न था कि ग़रीब और अमीर में यथार्थ मित्रता होना असम्भव है। जैसे हम लोगों में कुछ छल-कपट नहीं था, वैसे ही हम दूसरों को भी समझते थे। यदि हमें उसी समय मालूम हो जाता कि संसार छल से भरा है; जो जितना ही बड़ा आदमी होता है, उसमें उतनी ही अधिक मात्रा में छल-प्रपञ्च भरा रहता है, तो शायद वह दुखदाई समय हम लोगों पर न आता और न दुष्टों को ऐसा करने का मौक़ा ही मिलता। और तब मैं उस अपमान से बच जाती।

वृद्धा ने एक लम्बी साँस ली। आँसुओं की दो बूँदें टपका कर उसके झुर्रीदार गालों पर लुढ़क आईं। प्रताप चित्र-लिखित की भाँति अपनी माता की ओर देखता रहा। वृद्धा फिर कहने लगी—एक बार महामारी का प्रकोप बड़े ज़ोर से शहर भर में फैल रहा था। उसीमें तुम्हारे पिता भी हम लोगों को असहाय अवस्था में छोड़ कर सदा के लिए चल बसे! उनके न रहने पर एक दिन मुझ दुखिया पर उनके मित्र की नज़र पड़ी और उसकी नीयत बदल गई। अपनी इस नीच इच्छा को पूरी करने में हर तरह से असफल होने पर, उस दुष्ट ने और कोई उपाय न देख, अपनी उन सब भेंटों को मय सूद-ब्याज के जोड़ कर ऋण-रूप में हमारे ऊपर नालिश कर दी। हम लोगों की सारी जायदाद—सारी पूँजी—यहाँ तक कि घर भी उसी कल्पित ऋण में नीलाम हो गया। मैंने बहुत अनुनय-विनय की, परन्तु उस दुष्ट ने एक न सुनी। अब मेरे रहने के लिए एक कोठरी भी नहीं थी, उसने मेरे बाल पकड़ कर मुझे घर से बाहर निकाल दिया। बेटा, उस समय तुम केवल दो वर्ष के थे। लज्जा के कारण मैं उस शहर में और न ठहर सकी और तुम्हें लेकर रात में अपनी जन्म-भूमि से विदा हो, जङ्गल की राह ली। पहले सोचा था कि दोनों ही अब इस संसार से विदा हो जायँगे। परन्तु तुम्हारे भोले मुँह को देख कर ऐसा न कर सकी। माता होकर पुत्र की हत्या! ओह! इतना साहस मेरे उस दुखी हृदय में भी न था। फिर बदला लेने की आग भी मुझ क्षत्राणी के हृदय में धधक रही थी। अपने इस छोटे पुत्र से उस बदले की आग के शान्त होने की आशा में मैं तुम्हें लेकर मेवाड़ चली आई और एक-एक दिन गिन, तुम्हारे बड़े होने की बाट जोहने लगी। आज ईश्वर की कृपा से तुम समर्थ हो गए हो। बोलो प्रताप, क्या तुममें साहस है, अपनी माँ के अपमान का बदला लेने का? या योंही कायर की भाँति सिर झुका कर सब सहन कर लोगे?

अभी तक प्रतापसिंह चुपचाप सब बातें सुन रहा था। अब वह अपने को सँभाल न सका और उत्तेजित होकर बोला—माँ विश्वास रक्खो, जब तक मैं तुम्हारे अपमान का बदला ले न लूँगा, तब तक मुझे शान्ति न मिलेगी। माँ, मुझे उस नराधम का नाम बताओ। मैं अभी जाकर उसका सर उतार लाऊँगा।

माता की आँखों में प्रसन्नता के आँसू छलक आए। उसके मुँह से अनायास ही निकल पड़ा—धन्य हो बेटा, आख़िर नाम की लाज तुमने रख ली। महाराणा प्रतापसिंह के वंशज होकर और उन्हीं के नामधारी होकर तुम्हें ऐसे ही शब्द शोभा देते हैं। किन्तु जिससे तुम्हें बदला लेना है, उसका नाम सुन कर भी तुम्हारे अन्दर यही भाव रहना चाहिए।

वृद्धा ने एक तीव्र दृष्टि प्रताप के मुँह पर डाली। प्रताप का मुख-मण्डल शान्त था।

वृद्धा फिर कहने लगी—वह दुष्ट और कोई नहीं, वही तुम्हारी सहपाठिनी विजया का पिता त्रिभुवनसिंह है।

नाम सुनते ही प्रताप चौंक पड़ा। और उसके मुँह से एकाएक निकल पड़ा—ऐं! त्रिभुवनसिंह!!

प्रताप के शब्द सुनते ही वृद्धा क्षत्राणी के मुँह पर घृणा के भाव फैल गए। वह अपने को बहुत सँभाल कर बोली—क्यों, क्या साहस नहीं होता? नाम सुन कर घबड़ा गए? यदि हृदय में इतना भी साहस नहीं था, तो फिर बढ़-बढ़ कर बातें क्यों बना रहे थे, बेटा? तब तुमने व्यर्थ ही क्षत्रिय का जन्म पाया है। मैं जानती हूँ कि विजया ने तुम्हारे हृदय पर पूर्ण अधिकार कर लिया है; वह तुम्हें प्राणों से भी बढ़ कर प्यारी है। उसके पिता से बदला लेकर तुम उसे दुखी नहीं देख सकते। किन्तु प्रताप, क्या यही तुम्हारा क्षत्रिय-धर्म है? अच्छी बात है! जाओ, तुम अपनी विजया को प्यार करो—उसकी सेवा करो—उसके चरणों पर अपना आत्म-सम्मान और अपना धर्म निछावर कर दो। किन्तु मैं अपने अपमान का बदला लिए बिना उस दुष्ट को नहीं छोड़ सकती! मैंने अभी तक तुमको इसी आशा से पाला था। नहीं तो मेरे और तुम्हारे अपमानित जीवन का न जाने कब अन्त हो गया होता! परन्तु भाग्य का लिखा कौन मिटा सकता है? मेरा भाग्य ही खोटा है। ख़ैर, आज से मैं यही समझ लूँगी कि मैं बन्ध्या हूँ—मेरे कोई पुत्र ही नहीं है, जो मेरे अपमान का बदला ले! परन्तु यह निश्चय है कि विश्वासघाती त्रिभुवनसिंह अब जीता नहीं बच सकता। मैं स्वयं उससे अपमान का बदला लूँगी।

यह कहते-कहते वृद्धा का मुँह क्रोध से तमतमा उठा। प्रताप अभी तक चुपचाप उसकी बातें सुन रहा था! परन्तु उसका मन विजया के चारों ओर मँडरा रहा था। विजया का वह भोला-भाला सुन्दर मुख बार-बार उसके ध्यान में आकर उसे विचलित कर रहा था। माँ के अन्तिम शब्द सुन कर वह चौंका। एक क्षण में उसके चेहरे पर से सारी घबड़ाहट विलीन हो गई और उसके स्थान पर दृढ़ता चमकने लगी। उसने शान्त, किन्तु दृढ़-स्वर में कहा—माँ, क्या कहती हो? यदि मेरे रहते तुम्हें अपने अपमान का बदला अपने आप लेना पड़े, तो मेरे जीवन को धिक्कार है। मेरे होते हुए तुम्हें अपने अपमान का बदला लेने के लिए किसी और को ढूँढ़ना नहीं पड़ेगा। तुम्हारे अपमान के आगे प्रेम क्या, मेरे प्राण भी कुछ नहीं हैं। क्षत्रियों के लिए मान से बढ़ कर संसार में कुछ नहीं होता। माँ, एक नहीं, हज़ार विजया भी मुझे मेरे कर्तव्य से नहीं हटा सकतीं।

यह कहते-कहते प्रताप का मुख-मण्डल अजीब तेज से चमक उठा।

माँ ने बड़े ध्यान से प्रताप को देखा, फिर कुछ शान्त स्वर में बोली—क्षत्रिय केवल शब्दों के वीर नहीं होते। अब देखना है कि तुम कहाँ तक अपना कर्तव्य पालते हो। यदि तुम्हारी नसों में, बहते हुए रक्त में, क्षत्रियपन का कुछ भी जोश मौजूद है, यदि तुममें क्षत्रियपन का कुछ भी आत्माभिमान है, तो तुम अवश्य ही अपने कर्तव्य का पालन करोगे। एक ओर प्रेम है, दूसरी ओर कर्तव्य! भगवान जाने किसकी जय होती है।

वृद्धा ने फिर प्रताप की ओर देखा। प्रताप का मुँह लाल था।

२

रात का समय था, प्रताप पलङ्ग पर पड़ा-पड़ा बड़ी बेचैनी से करवटें बदल रहा था। उसका मन चिन्ता-सागर की तरल तरङ्गों में डूब और उतरा रहा था। वह मन ही मन सोचने लगा—बदला! बदला!! विजया! अब तुम्हें भूलूँगा। परन्तु उफ़! तुम्हें भूलना कितना कठिन है, कितना कष्टप्रद। मैं यह तो जानता था कि मैं तुमसे प्रेम करता हूँ, किन्तु मुझे यह न मालूम था कि तुमने धीरे-धीरे मेरे ऊपर इतना अधिक अधिकार कर लिया है—मेरे हृदय पर, मेरी आत्मा पर और मेरे मन पर तुमने अपना ऐसा अटल राज्य फैला लिया है।

पर नहीं! कर्तव्य, कर्तव्य ही है। क्षत्रियों के लिए कर्तव्य के सामने प्रेम कोई चीज़ नहीं। विजया! तुम चाहे मेरे प्राणों की भी प्राण क्यों न हो, किन्तु फिर भी तुम मुझे अपने कर्तव्य-पथ से नहीं डिगा सकतीं। मेरी माँ ने केवल अपने अपमान का बदला लेने के लिए नाना प्रकार के कष्टों को झेलते हुए भी मेरे प्राणों की

रक्षा की और अब जब मैं इस योग्य हो गया हूँ कि उस अपमान का बदला लेकर अपनी माँ के हृदय को शान्ति प्रदान कर सकूँ, तब मैं अपना मुँह छिपाऊँ ? किस लिए ? केवल अपने प्रेम के लिए ! उस दुष्ट को केवल इसलिए छोड़ दूँ कि वह मेरी विजया का पिता है ? छिः ! मेरे समान भी क्या कोई अधम होगा ?

माना, विजया को दुखी देख कर मुझे अपार वेदना होगी ! परन्तु अपने को उस वेदना से बचाने के लिए मैं अपनी स्नेहमयी माता को दुखी कैसे देख सकता हूँ ? पहले कर्तव्य है फिर और कुछ। मुझे बदला लेना है। किससे ? त्रिभुवनसिंह से—प्यारी विजया के पिता से। विजये ! तुम्हारी जिन आँखों में प्रसन्नता की एक झलक देख कर मैं ख़ुशी से फूल जाता था, जिन आँखों में वेदना के भाव देख कर मैं दुख से पागल हो जाता था, अब उन्हीं आँखों से सदा के लिए प्रसन्नता को धो बहाने के लिए मैं उतावला हूँ—उन्हीं प्यारी आँखों को आँसू-भरी देखने के लिए मैं पागल हो रहा हूँ।

किन्तु ! किन्तु, क्या मेरा सारा कर्तव्य केवल माँ के ही प्रति है ? विजया के प्रति कुछ भी नहीं ? उस भोली बालिका के प्रति क्या मेरा कोई कर्तव्य नहीं, जिसने मेरे ऊपर अपना सर्वस्व निछावर कर दिया है ? मेरे इस परिवर्तन को जब वह सुनेगी—जब उसे मालूम होगा कि मैं उसका शुभचिन्तक नहीं हूँ—उसको कष्ट पहुँचाना ही मेरी इच्छा है, तब उसे कितना दुख होगा ! परन्तु मैं उसके साथ विश्वासघात नहीं करूँगा। तो फिर मैं क्या करूँ ? केवल एक उपाय है। जो धक्का अचानक लगता है, वह बहुत दुखदाई होता है। मैं विजया को धक्का पहुँचाऊँगा, किन्तु उसे अचानक धक्के के भीषण दुख से अवश्य बचाऊँगा। पहले इसके कि मैं कार्य आरम्भ करूँ, मैं सब से पहले स्वयं जाकर विजया को सब बातें बताऊँगा—उसे धीरज बँधाऊँगा। ठीक है—यही ठीक है !! यदि विजया मुझसे प्रेम करती है, तो फिर उसे भी कुछ त्याग करना ही होगा। सच्चा प्रेम तो त्याग ही है। इस प्रकार मेरा भी कर्तव्य पूरा होगा—माँ के प्रति भी और विजया के प्रति भी ! विजया ! विजया !! तुम मेरे ऊपर दया करो, मुझे मेरे कर्तव्य से विचलित न करो—मेरी सहायता करो ?

त्रिभुवनसिंह ! तुम विजया के पिता क्यों हुए ? मैं अपना कर्तव्य पालने में जो कुछ हिचकिचाता हूँ—जो थोड़ी-बहुत देर लगा रहा हूँ, वह केवल इसलिए कि तुम विजया के पिता हो। यदि तुम विजया के पिता न होते तो तुम्हारा इस संसार में एक क्षण भी रहना मुश्किल था ! क्षत्रिय शान पर मरना जानते हैं और मारना भी, त्रिभुवनसिंह ! तुम विजया के पिता हो तो क्या हुआ ? मेरी माँ का अपमान करने वाले भी तो तुम्हीं हो। प्रताप की माँ का अपमान करके तुम इस संसार में नहीं रह सकते ! तुमने एक क्षत्राणी का अपमान किया है। विश्वासघाती ! मित्र-द्रोही !! बस अब तैयार हो जाओ, मरने के लिए।

पलङ्ग पर पड़ा-पड़ा प्रताप बड़ी बेचैनी से सूर्योदय की प्रतीक्षा करने लगा।

३

विजया को प्रताप के भयानक इरादे का पता लग चुका है। स्वयं प्रताप ने ही उसे सारा क़िस्सा सुना दिया है। उसकी दशा साँप-छछून्दर की सी हो रही है। एक ओर प्रताप का प्रेम है और दूसरी ओर पिता का जीवन, विजया बैठी-बैठी सोच रही है :—

"प्रताप, क्या यह सच है ? क्या सचमुच तुम मेरे पिता को मारने के लिए तैयार हो ? क्या मुझे दुख पहुँचा कर ही तुम्हें सुख होगा ? क्या तुम्हारा सब कर्तव्य केवल तुम्हारी माँ के ही प्रति है, मेरे प्रति कुछ नहीं ?

"तुम कितने निष्ठुर हो प्रताप ! कितने धोखेबाज़ हो ? बहेलिए को लोग बुरा क्यों कहते हैं ? क्योंकि वह चिड़ियों को पहले चारा दिखा कर फुसलाता है, फिर जब देखता है कि अब चिड़ियाँ जाल में बिल्कुल फँस गई हैं, तब वह उन्हें मार डालता है या पकड़ कर पिंजड़े में बन्द कर देता है। तुम भी तो ठीक उसी प्रकार हो। तुमने पहले प्रेम जता कर मुझे फुसलाया और अब, जब कि तुम जान गए कि मैं पूर्ण रूप से तुम्हारे चङ्गुल में फँस गई—तुम्हें छोड़ कर अब कहीं नहीं जा सकती, तब फिर तुम मुझे सताने लगे। आह ! कितनी निष्ठुरता से तुम मुझे ठुकरा रहे हो ? तुम्हारा इसमें क्या दोष ? पुरुषों का स्वभाव ही ऐसा होता है। वे प्रेम करना और फिर उसे ठुकरा देना ख़ूब जानते हैं।

"प्रताप ! तुम क्षत्रिय हो। मैं भी क्षत्रिय की कन्या हूँ। मैं क्षत्रिय के कर्तव्य को भली-भाँति जानती हूँ। क्षत्रिय का धर्म ही है, कर्तव्य-पालन। कर्तव्य के आगे उसे सब कुछ त्याग देना पड़ता है। यह सच है कि तुम अपने कर्तव्य से विवश हो। मैं जानती हूँ, मुझे त्यागने में तुम्हें कितना दुख होता होगा! मुझे मालूम है कि तुम्हारे हृदय में इस विचार से ही कितनी हलचल मची होगी—तुम्हें कितना दारुण दुख हो रहा होगा। परन्तु तुम अपनी माँ के लिए सहर्ष उस दुख का स्वागत कर रहे हो! तुम तो स्वयं दुखी हो, अब मैं तुम्हें भला-बुरा कह कर और दुखी नहीं करूँगी। तुम्हारा उद्देश्य ही मेरा भी उद्देश्य होगा। तुम अपने कर्तव्य का पालन करो। वास्तव में तुम्हारा कर्तव्य पहले तुम्हारी माँ की ओर है, फिर मेरी ओर। यदि माँ के प्रति अपने कर्तव्य का पालन करने में तुम्हें मेरे प्रति अपने कर्तव्य की अवहेलना भी करनी पड़े, तो मुझे दुखी नहीं होना चाहिए। इसलिए मैं तुम्हारे कर्तव्य-पालन में यदि सहायक नहीं, तो बाधक भी होना नहीं चाहती।

"मुझे तुम्हारी उस समय की सूरत याद आती है, जब तुम मेरे पास आए थे और अपने इन भावों के इस दुखप्रद परिवर्तन को बता रहे थे। कितनी दीनता से तुम मुझसे कह रहे थे—"विजये! अब तुम उस पुराने रङ्ग को धो डालो और नए रङ्ग में रँग जाओ। आज से मुझे अपना समझना भूल जाओ। यद्यपि मेरा हृदय तुम्हारा अनुरागी है, किन्तु अपने कर्तव्य के कारण अब मैं उसे तुम्हारा द्रोही बनाऊँगा। अब सदा के लिए याद रक्खो कि प्रताप तुम्हारा मित्र नहीं—कट्टर शत्रु है।" कहते-कहते तुम्हारा मुँह कैसा उदास हो गया था! यद्यपि तुमने अपनी आन्तरिक वेदना मुझसे छिपाने का भरसक प्रयत्न किया था, किन्तु फिर भी मुझसे वह वेदना छिपी न रही। परन्तु प्रताप! तुम्हें मैं भूल जाऊँ—क्या यह भी कभी सम्भव है? नारी-हृदय क्या एक बार देकर फिर कभी लौटाया जा सकता है? मैंने तुमसे प्रेम किया है और अन्त समय तक करूँगी। मैं संसार को दिखा दूँगी कि पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियाँ प्रेम करना अधिक जानती हैं। प्रेम पर जीना तो सभी जानते हैं, किन्तु वे प्रेम पर मरना भी जानती हैं।

"यदि पिता जी को तुम्हारी इच्छा अभी से बता दूँ, तो सम्भव है, कोई बड़ा भारी अनिष्ट हो जाए। तुम्हारा जीवन भी शङ्का में पड़ जाए। पर पिता जी के प्रति भी तो मेरा कुछ कर्तव्य है? उनके जीवन पर आक्रमण होने वाला है, यह जान कर भी मैं चुप बैठी रहूँ, तो फिर मेरे समान विश्वासघातिनी भी कोई नहीं होगी। मैं पिता जी से तुम्हारे विषय में कुछ नहीं कहूँगी। परन्तु गुप्त रूप से उनकी रक्षा अवश्य करूँगी।

"मेरा प्रेम तुम्हारे कर्तव्य-पालन में बाधक न होगा। परन्तु प्रेम एक ओर है और कर्तव्य एक ओर। तुम्हारा कर्तव्य तुम्हारी माँ की ओर है, तो मेरा भी कर्तव्य मेरे पिता के प्रति है। तुम मेरे पिता के शत्रु हो, तो मेरे भी शत्रु हो। मैं अपने पिता की रक्षा करूँगी और उनकी रक्षा करते-करते तुम्हारी तलवार से मरूँगी! मेरी तलवार तुम्हारे ऊपर नहीं चल सकेगी, परन्तु मेरा सिर तुम्हारी तलवार के आगे अवश्य झुक सकेगा। मैं अपने कर्तव्य का पालन करते-करते अपने प्रेम को पालूँगी। तुम्हारी तलवार के वार से अपने इन प्राणों को हँसते-हँसते छोड़ दूँगी। तुम्हें मैंने इस जन्म में नहीं पाया; किन्तु यदि मेरा प्रेम सच्चा है, तो फिर तुम्हें दूसरे जन्म में अवश्य पाऊँगी!

"सुनती हूँ, कल ही मेरे पिता का और प्रताप का द्वन्द्व युद्ध होगा। कहाँ? वहीं सिपरा नदी के किनारे। मालूम नहीं, कौन जीतेगा। मैं तैयार हूँ। पहले प्रताप का और मेरा युद्ध होगा, फिर मेरे बाद मेरे पिता जी लड़ेंगे।

"मेरे जीवन-धन! तुम्हारे लिए कितनी आशाएँ बाँध रक्खी थीं, किन्तु अब उन आशाओं को अपने साथ हृदय में ही लेकर मरूँगी। मेरे जीवन की पूर्ण तथा अपूर्ण आकांक्षाएँ, मुझे विदा दो। अब केवल कल तक मेरा और जीवन है। फिर उसके बाद......... । भगवन्! मेरी जो आशाएँ अपूर्ण रह गई हैं, जिन्हें लेकर मैं मर रही हूँ, उन्हें मेरे अगले जन्म में पूर्ण करना!

"प्रताप! प्रताप!! तुम मेरे पथ-प्रदर्शक देवता हो, मेरे हृदय में साहस दो, बल दो, जिससे मैं अपने कर्तव्य का पालन कर सकूँ!"

४

सायङ्काल का समय है, दिन का अन्त करके रात्रि सारे विश्व को अपने आँचल में ढक लेना चाहती है।

दिन और रात्रि में लड़ाई हो रही है। उनके युद्ध से सारा आसमान लाल हो गया है। भगवान सूर्य अपने साम्राज्य पर आक्रमण होते देख, लाल हो रहे हैं। प्रताप भी त्रिभुवनसिंह से युद्ध करने के लिए क्रोध से लाल हो रहा है। रह-रह कर वह काँपने लगता है और उसके होंठ फड़कने लगते हैं। वह बड़ी उतावली से सिपरा के किनारे टहल रहा है और त्रिभुवनसिंह के आने की प्रतीक्षा कर रहा है। आज इसी पवित्र नदी के तट पर वह अपनी माता के अपमान का बदला लेने के लिए अपने जीवन की सारी आशाओं को, जिन्हें बड़े यत्न से आज तक हृदय में पाल रक्खा था, एक साथ ही छोड़ कर, अपने जीवन और मरण के प्रश्न पर बड़ी बेचैनी से विचार कर रहा था। आज उसका और त्रिभुवनसिंह का युद्ध होगा। देर होती देख, वह अपने आप बड़-बड़ाने लगा। त्रिभुवनसिंह, मालूम होता है, कायर है। द्वन्द-युद्ध के लिए यही समय और यही स्थान निश्चित किया गया था। मैं कब से उसकी बाट देख रहा हूँ, परन्तु अभी तक उसका पता नहीं। छिः! क्षत्रिय होकर बुढ़ापे में जीवन का इतना मोह! अभी प्रताप की विचार-धारा जारी ही थी कि सामने से त्रिभुवनसिंह को आता देख, ठहर गया। त्रिभुवनसिंह ने आते ही कहा—प्रताप, तुम नहीं जानते कि युद्ध का निमन्त्रण देकर तुमने सोते हुए शेर को जगाया है। बड़ी शान से तुमने मुझे द्वन्द-युद्ध का निमन्त्रण दिया है, परन्तु यह तुम्हारी बाल-बुद्धि है। जो हो, क्षत्रिय कभी युद्ध का निमन्त्रण अस्वीकार नहीं करते। अच्छा, अब आओ, तलवार खींचो।

प्रताप ने फड़कते हुए कहा—मित्रद्रोही! विश्वास-घाती!! आ, आज मैं तुझसे अपनी माता के अपमान का बदला लूँगा। तू मुझे बालक न समझ। आज तुझे मालूम होगा कि असहाय अवस्था में एक अबला पर अत्याचार करने का क्या परिणाम होता है? यदि मुझे माँ ने यह वृत्तान्त पहले ही बताया होता, तो आज तक तुम जीवित नहीं रह सकते। अच्छा, अब आओ, तलवार खींचो। आज ही सही।

दोनों की तलवारें एक साथ ही झनझनाहट के साथ अपनी म्यानों को छोड़, बिजली की तरह चमक उठीं। वृद्ध और युवा का द्वन्द-युद्ध एक अजीब दृश्य था। दोनों ही अपने जीवन की आशा छोड़ युद्ध में डटे थे। दोनों में अपूर्व जोश था। प्रताप ने कहा—लो सँभलो। इस शब्द के साथ ही उसकी उठी हुई तलवार त्रिभुवनसिंह के सिर पर गिरने ही वाली थी कि उसी क्षण विजया बिजली की चमक के समान बीच में आकर खड़ी हो गई और प्रताप का वार अपनी ढाल पर रोक लिया। विजया को देखते ही दोनों ही एक क्षण के लिए ठिठक गए। त्रिभुवनसिंह ने कहा—"विजया! बेटी! तू यहाँ क्यों? बीच से हटो। द्वन्द-युद्ध में तीसरे का काम नहीं।"

विजया ने पिता की बातों का कुछ उत्तर न देकर प्रताप से कहा—प्रताप, रुक क्यों गए? तलवार चलाओ। माता-पिता का प्रेम हर एक सन्तान के हृदय में उसी प्रकार होता है, जैसा तुम्हारे हृदय में है। यदि तुम अपनी माँ के अपमान का बदला लेने आए हो, तो मैं भी अपने वृद्ध पिता की सहायता करने आई हूँ। आओ, पहले मुझसे तुम्हारा द्वन्द-युद्ध होगा।

प्रताप ने आश्चर्य-चकित स्वर में कहा—विजया, तुम व्यर्थ बीच में न पड़ो। क्षत्रिय कभी स्त्रियों के साथ नहीं लड़ते। हटो, युद्ध में बाधा न दो।

विजया ने तीव्र स्वर में कहा—अगर एक वृद्ध से तुम्हारा क्षत्रियत्व बाधक नहीं हो सकता, तो एक स्त्री के साथ लड़ने में भी तुम्हें सङ्कोच नहीं होना चाहिए। मैं बाधा देने नहीं, तुमसे लड़ने आई हूँ। इसलिए कायरों सी व्यर्थ बातें न बनाओ, पहले मुझसे निबट लो। फिर पिता जी से भिड़ना।

विजया की ललकार से प्रताप उत्तेजित हो उठा। क्रोध से आँखें लाल किए अपनी तलवार को उठाते हुए बोला—तो फिर आओ, विजया, पहले तुम्हीं से सही, यदि तुम्हारी यही इच्छा है, तो लो, मेरा वार बचाओ। इस समय मुझे कुछ नहीं सूझता। सँभलो, इस समय मैं अपने क़ाबू में नहीं हूँ। माता के अपमान की ज्वाला मेरे हृदय में धधक रही है।

प्रताप की तलवार चमक उठी। उधर विजया ने भी फुर्ती से अपनी तलवार निकाल ली और बड़ी होशियारी से पैंतरा बदल, प्रताप के वार को ख़ाली कर दिया। वृद्ध त्रिभुवनसिंह अपनी पुत्री की वीरता देख कर

चकित रह गए। बेतहाशा उनके मुँह से निकल गया—वाह बेटी, धन्य हो !

प्रताप अपना पहला वार ख़ाली जाता देख अत्यन्त क्रुद्ध हो उठा। परन्तु अवसर पाकर भी विजया ने प्रताप पर वार नहीं किया, बल्कि उसके दूसरे वार की राह देखने लगी। प्रताप ने अब की बड़े ज़ोर का वार विजया पर किया। उसकी भयङ्कर मूर्ति और उसके दृढ़ निश्चय को देख त्रिभुवनसिंह का हृदय अज्ञात आशङ्का से काँप उठा।

प्रताप का सधा हुआ हाथ इस बार निश्चय ही विजया की जीवन-लीला समाप्त कर देता। परन्तु यह क्या ? अचानक पीछे से प्रताप की माँ ने उसका उठा हुआ हाथ पकड़ लिया और बोली—"बस बेटा, बस ! तुम यथार्थ में क्षत्रिय हो। कर्तव्य के आगे सब छोड़ सकते हो। बदला मेरे अपमान का बदला पूरा हो गया। मेरा बदला ! विजया से नहीं, त्रिभुवनसिंह से था, परन्तु वह पूरा हो चुका। त्रिभुवनसिंह हार गए। क्योंकि युद्ध आरम्भ करके फिर पीछे हट जाना हारना नहीं तो क्या है ? तुम्हारे समान वीर पुत्र को पा, आज मैं धन्य हो गई।" आश्चर्य-चकित हो प्रताप अपनी माँ की ओर देखता रह गया। माँ फिर विजया से बोली—"बेटी विजया, शान्त होओ, युद्ध समाप्त करो। मेरा बदला पूरा हो चुका, अब मेरी तुम्हारे पिता से कोई लड़ाई नहीं रही। मुझे तुम दोनों के प्रेम का हाल मालूम है। मैं अपने कारण तुम्हारे जीवन को आरम्भ होने से पहले ही नष्ट करना नहीं चाहती। मेरा क्या, मैं तो उस पके हुए आम के समान हूँ, जो टपकने ही वाला है। मेरी इच्छा है कि तुम्हारे समान स्त्री-रत्न को अपनी पुत्र-बधू बना कर अपनी आँखें ठण्डी करूँ। यदि तुम्हारे पिता को कोई आपत्ति न हो, तो तुम इसी समय से मेरे पुत्र प्रताप की वाग्दत्ता पत्नी हो गई।"

विजया का सुन्दर मुँह लज्जा और प्रसन्नता से लाल हो गया। प्रताप की माँ की बात पूरी होते ही त्रिभुवनसिंह आगे बढ़ा और वृद्धा से बोला—"देवि ! मेरा अपराध क्षमा करो, मैं उस समय जवानी और धन के मद में अन्धा हो रहा था। अपने धर्म का भी ख़्याल न रख सका। अब मैं अपने किए हुए का फल पा चुका। अपनी हार के चिन्ह-स्वरूप तथा अपने पुराने मित्र की मित्रता की स्मृति-स्वरूप मैं अपनी एकमात्र पुत्री विजया को वीर प्रताप को सौंपता हूँ !" यह कह कर त्रिभुवनसिंह ने विजया का हाथ प्रताप के हाथ में दे दिया और बोले—"बेटा प्रताप, मेरी विजया आज से तुम्हारी हो गई !"

प्रताप और विजया ने एक बार एक-दूसरे की ओर देखा। फिर दोनों का मुँह लज्जा से लाल हो गया। दोनों ने माँ और त्रिभुवनसिंह के चरणों में प्रणाम किया ! *

* लेखिका की 'अञ्जलि' नामक पुस्तक (जो शीघ्र ही इस संस्था द्वारा प्रकाशित होने वाली है) की एक कहानी।

—स० 'चाँद'

विचित्र उपहार

[श्री० 'अधीर']

सजनि मुरलिका के मधु—
स्वर को कैसे अपना लूँ सत्वर।
मद से छक कर लाड़ लड़ाते
मोहन के मृदु बिम्बाधर॥

मोहन की वंशी को सजनी,
करती हूँ मैं जितना प्यार।
मर्म-वेदना से व्याकुल होती हूँ—
कैसा यह उपहार ?

जो अपने वश कर पाऊँ मैं, तो हर लूँ सखि सारी पीर।
अन्तरतम के भाव जगा लूँ, तन-मन जिससे हो न 'अधीर'।

अवध के मुसलमान शासक

[मुन्शी नवजादिकलाल जी श्रीवास्तव]
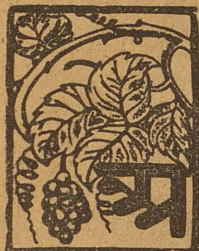
अवध के मुसलमान शासकों में मिरज़ा महम्मद अमीन या नवाब सआदत ख़ाँ बुर्हानुल-मुल्क का नाम विशेष उल्लेखनीय है। क्योंकि सब से पहले इन्होंने ही लखनऊ में नवाबी की नींव डाली थी। जिस समय दिल्ली के राजसिंहासन पर महम्मद शाह रँगीले विराजमान थे, उस समय सूबा अवध की शासन-व्यवस्था अत्यन्त शिथिल हो गई थी। लखनऊ के शेख़ बड़े ही दुर्धर्ष और ढीठ हो गए थे। उनकी देखादेखी आसपास के अन्यान्य ज़मींदार भी अपने को स्वतन्त्र समझने लगे थे। दिल्लीपति के कई सूबेदारों की इन्होंने हत्याएँ भी कर डाली थीं। इसलिए बादशाह किसी ज़बरदस्त शासक को अवध की सूबेदारी पर भेजना चाहते थे।

उधर दिल्ली के शाही दरबार में मिरज़ा साहब का बड़ा दबदबा था। यहाँ तक कि स्वयं बादशाह सलामत भी इनके प्रभाव से घबराया करते थे। इसलिए वह इन्हें सम्मानपूर्वक दरबार से हटाने की युक्ति सोचा भी करते थे। फलतः इस अवसर से उन्होंने लाभ उठाने का विचार किया और मिरज़ा साहब को अवध की सूबेदारी पर प्रतिष्ठित करके बड़ी आसानी से एक कण्टक दूर कर दिया।

बादशाह ने मिरज़ा साहब को अवध की सूबेदारी और ख़िल्लत तो दे दी, परन्तु उनकी मदद के लिए फ़ौज या रिसाले का कोई प्रबन्ध नहीं किया। परन्तु मिरज़ा चतुर और साहसी मनुष्य थे, उन्होंने बेकार और आवारे मुसलमान युवकों का एक दल तैयार किया और उन्हें समझाया कि यों बेकार पड़े-पड़े क्यों अपना जीवन नष्ट कर रहे हो। आओ, मेरे साथ अवध चलो। अगर ख़ुदा ने मेहरबानी की, तो बड़े आनन्द से जीवन बिता सकोगे।

इन लोगों ने मिरज़ा की सलाह मान ली और हज़ारों की तादाद में उनके साथ अवध जाने को तैयार हो गए। शाही अस्त्रागार से कुछ शस्त्रास्त्र और कई तोपख़ाने भी मिल गए। सेना का ख़र्च तथा तोपों को ले जाने के लिए बैल ख़रीदने को मिरज़ा ने अपनी बेगम के मूल्यवान गहने बेच डाले।

इस प्रकार सारी तैयारी हो जाने पर मिरज़ा का बृहत् दल एक दिन अवध के लिए रवाना हो गया। रास्ते में आगरे के सूबेदार ने स्वागत किया और मिरज़ा साहब यानी नवाब बुर्हानुलमुल्क बहादुर की मेहमानदारी करने का विचार प्रकट किया, परन्तु नवाब ने कहा कि दावत और मेहमानदारी में जो रुपए आप ख़र्च करेंगे, उन्हें नक़द ही मुझे दे दीजिए; क्योंकि इस समय मुझे रुपयों की बड़ी आवश्यकता है। आगरे के सूबेदार ने इसे स्वीकार कर लिया। वहाँ से बरेली पहुँचे और वहाँ के सूबेदार से भी दावत के बदले रुपए लेकर फ़र्रुख़ाबाद आए। यहाँ के नवाब ने सलाह दी कि अवध के निवासी अत्यन्त सरकश और ख़ासकर लखनऊ के शेख़ तो बड़े ही लड़ाके और ढीठ हैं। इसलिए आप गङ्गा पार होकर अकस्मात् दाख़िल न हों। बल्कि पहले आसपास के ज़मींदारों और रईसों को अपनी ओर मिला लें और उनकी मदद से लखनऊ पर चढ़ाई करें। बुर्हानुलमुल्क ने यह सलाह मान ली और वहाँ से चल कर काकोरी नामक स्थान में डेरा डाला। यहाँ के शेख़ से लखनऊ के शेख़ों से शत्रुता थी। इस सुयोग से नवाब ने लाभ उठाया और उसकी सलाह से अपने आने की ख़बर लखनऊ के शेख़ों के पास भेज दी। शेख़ों ने लिखा कि आप अपनी सेना का पड़ाव गोमती के उस पार डालें। नवाब ने यह बात मान ली और गोमती के उस पार, मच्छी-भवन नामक क़िले के सामने अपना पड़ाव डाल दिया।

शेख़ों ने नवाब की महती सेना के सामने सिर उठाना उचित नहीं समझा और उनके रहने के लिए लखनऊ का मच्छी-भवन नामक क़िला चुपचाप ख़ाली कर दिया। बुर्हानुलमुल्क को स्वप्न में भी यह आशा न

थी कि लखनऊ के शेख़ बिना उत्पात मचाए ही दब जायँगे। इस सफलता के लिए उन्होंने ख़ुदा का शुक्रिया अदा किया।

नवाब बुर्हानुलमुल्क बड़े चतुर और अच्छे शासक थे। थोड़े ही दिनों में इन्होंने सूबे की आमदनी सत्तर लाख से बढ़ा कर एक करोड़ सात लाख कर दी और अट्ठाइस वर्षों तक बड़ी नेकनामी के साथ सूबेदारी करने के बाद सन् ११५० हिजरी में इस संसार से चल बसे। इनकी मृत्यु के बाद नवाबी ख़ज़ाने में ९ करोड़ रुपए थे।

हुसेनाबाद का तालाब और घण्टाघर
(विक्टोरिया टॉवर)

नवाब सफ़दरजङ्ग ख़ाँ

नवाब बुर्हानुलमुल्क के बाद इनके भानजे और दामाद मिरज़ा मुहम्मद मुक़ीम अबुलमन्सूर ख़ाँ सफ़दरजङ्ग बहादुर अवध के वज़ीर नवाब नियुक्त हुए।

नवाब सफ़दरजङ्ग ने अपनी राजधानी फ़ैज़ाबाद में बनाई। वहाँ नवाब बुर्हानुलमुल्क ने एक बँगला बनवा रक्खा था और सेना की छावनी भी थी। यह अच्छे शासक न थे। इसलिए इन्हें अपना सारा जीवन युद्ध और विग्रह में ही व्यतीत करना पड़ा। लखनऊ से फ़ैज़ाबाद जाने-आने से वहाँ के शेख़ों का साहस फिर पूर्ववत् बढ़ गया। अन्यान्य सरदार भी बाग़ी हो गए। इन्हें अपनी बीबी नवाब सदरजहाँ बेगम से बड़ा प्रेम था। इन्हें मुसलमान बादशाहों और नवाबों का अपवाद कहना चाहिए। क्योंकि ये एक नारी-व्रती थे। बेगम भी छाया की भाँति इनके साथ रहती थीं। यहाँ तक कि युद्धस्थलों में भी वह साथ नहीं छोड़ती थीं। ये सन् ११६६ हिजरी में, सुलतानपुर निज़ामत के बादरघाट नामक स्थान में मरे थे। बेगम ने इस बात को गुप्त रक्खा और एक हाथी पर पति का शव लेकर फ़ैज़ाबाद चली आईं। फ़ैज़ाबाद के गुलाबपाड़ी नामक स्थान में इनका मक़बरा है। इन्होंने सोलह वर्षों तक अवध की वज़ारत की थी।

नवाब शुजाउद्दौला

सन् ११६६ हिजरी में, सफ़दरजङ्ग के बाद मिरज़ा जलालुद्दीन हैदर लखनऊ की नवाबी की मसनद पर बैठे। इन्होंने अपना नाम नवाब शुजाउद्दौला बहादुर रक्खा। इस समय इसकी उमर कुल चौबीस वर्ष की थी। शुजाउद्दौला थे तो एक वीर और साहसी युवक, परन्तु इनमें चरित्र-बल की अत्यन्त कमी थी। मसनदनशीन होते ही इसने एक हिन्दू-स्त्री के सम्बन्ध में हिन्दुओं को नाराज़ कर दिया। परन्तु उनकी माँ की बुद्धिमानी से झगड़ा बड़ी आसानी से तय हो गया। इसने दरबार के हिन्दू-सरदारों को बुला कर बहुत समझाया-बुझाया और इस मामले की उपेक्षा कर जाने की सलाह दी। हिन्दू दरबारियों में राजा रामनारायण नाम के एक पुराने दरबारी भी थे। मृत नवाब इन्हें बहुत मानते थे। बेगम ने उन्हें बुला कर नवाब की पुरानी मेहरबानियों की याद दिलाई। फलतः राजा रामनारायण ने हिन्दुओं को समझा-बुझा कर शान्त कर दिया। शुजाउद्दौला का चचेरा भाई मुहम्मदक़ुली ख़ाँ इस अवसर से लाभ उठाने की फ़िक्र में था और इस्माइल ख़ाँ काबुली नाम के एक सेनाध्यक्ष की सहायता से नवाब को गद्दी पर से उतरवा देना चाहता था। परन्तु स्वर्गीय नवाब की विधवा बेगम ने इस्माइल ख़ाँ को भी समझा-बुझा कर दबा दिया।
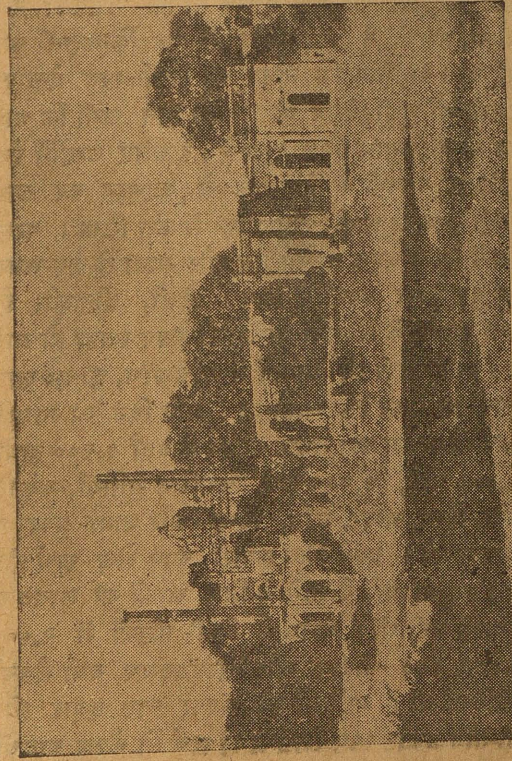
मस्जिद रेज़िडेन्सी
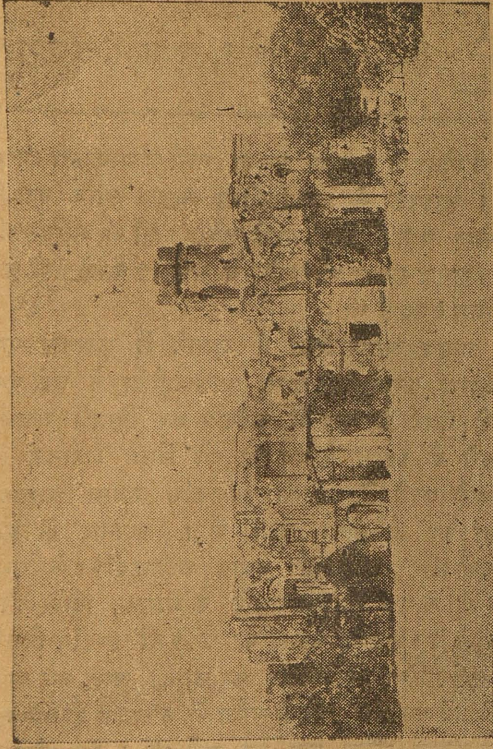
रेज़िडेन्सी
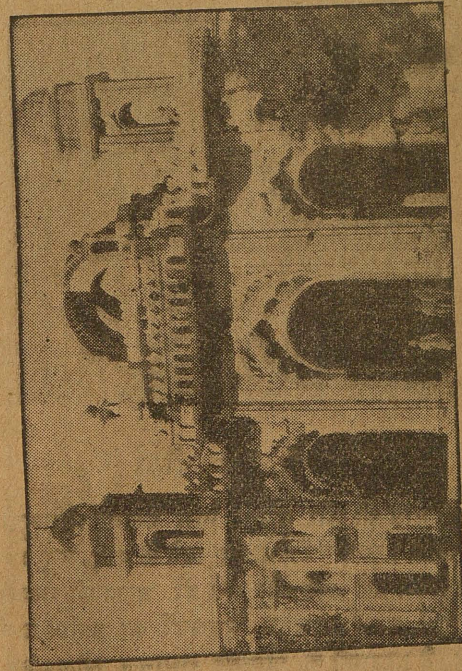
क़ैसरबाग़ का लक्खी-दरवाज़ा
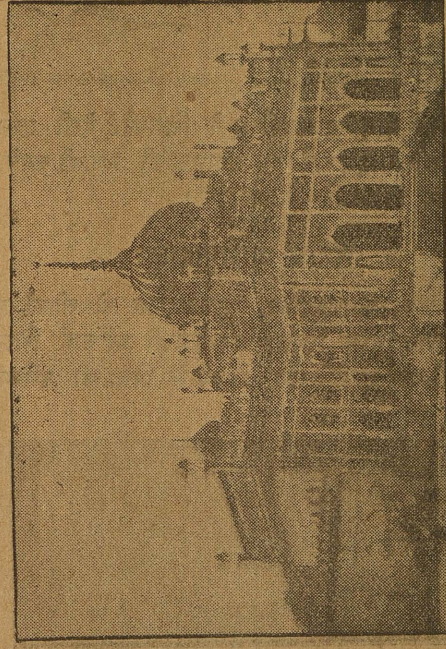
हुसेनाबाद का इमामबाड़ा

इसके बाद शुजाउद्दौला ने फिर कोई ऐसी हरकत न की और बाइस वर्ष तक लखनऊ की नवाबी करने के बाद सन् ११८८ हि० में मर गए।

नवाब आसफ़ुद्दौला

नवाब आसफ़ुद्दौला, शुजाउद्दौला के तीसरे पुत्र थे। इनका नाम मिरज़ा अनजीअली ख़ाँ उर्फ़ मिरज़ा अमानी था। इन्होंने सन् १७७४ में पिता की परित्यक्त

नवाब आसफ़ुद्दौला

नवाबी प्राप्त की और अपना नाम नवाब आसफ़ुद्दौला ख़ाँ रक्खा। सात वर्ष फ़ैज़ाबाद रहने के बाद, सन् १७८१ में लखनऊ चले आए और उसे ही अवध की राजधानी बनाया। यों तो लखनऊ भारतवर्ष का अतीव प्राचीन नगर है। पुराणों के अनुसार रामानुज श्रीलक्ष्मण जी के पुत्रों ने त्रेतायुग में इसका निर्माण किया था और अपने पिता के नाम पर इसका नाम लक्ष्मणवती रक्खा था। लखनऊ के लक्ष्मणटीला नामक स्थान पर जो मस्जिद बनी है, वहाँ पहले लक्ष्मण जी का मन्दिर भी था। मुग़ल सम्राट औरङ्गज़ेब ने उसे नष्ट करके वहीं यह मस्जिद बनवाई थी।

नवाब आसफ़ुद्दौला के ज़माने में लखनऊ एक साधारण क़स्बा था, परन्तु आसफ़ुद्दौला ने उसे एक अच्छे नगर के रूप में परिणत कर दिया। नवाबी ज़माने के अतुल ऐश्वर्य के जो चिन्ह लखनऊ में दिखाई पड़ते हैं, उनका अधिकांश नवाब आसफ़ुद्दौला का बनवाया हुआ है। लखनऊ के कई मुहल्ले और बाज़ार भी नवाब आसफ़ुद्दौला के बनवाए हैं। ये एक स्वतन्त्र प्रकृति के शासक, दिलेर और ख़र्चीले थे। नवाबी मसनद पर बैठते ही इन्होंने कितने ही कर्मचारियों को निकाल कर उनकी जगह नए कर्मचारी नियुक्त किए। इनके समय में लखनऊ दरबार की शान-शौकत सीमा पार कर गई थी। दानशीलता और उदारता की यह हालत थी कि "जिसको न दे मौला, उसको दे आसफ़ुद्दौला," यह किम्बदन्ती चल गई थी। यहाँ तक कि नवाब का ख़र्चीलापन देख कर उनकी माँ मुन्नी बेगम को चिन्ता होने लगी कि कहीं यह सारा ख़ज़ाना ही न लुटा दे। इसलिए उन्होंने ईस्ट इण्डिया कम्पनी के रेज़िडेण्ट से कह-सुन कर सारा शाही ख़ज़ाना अपने तत्वावधान में करा लिया। परन्तु इससे नवाब बहुत नाराज़ हुए और माता से लड़-झगड़ कर ६२ लाख रुपए ले लिए। होली, दीवाली, ईद तथा मुहर्रम के अवसरों पर लाखों रुपए स्वाहा हो जाते थे। ब्याह-शादी की दावतों में पाँच-पाँच, छः-छः लाख रुपयों पर पानी फिर जाता था। प्रति दिन का मामूली ख़र्च भी कम न था। नवाब साहब के यहाँ १,२०० हाथी, ३,००० घोड़े, १,००० कुत्ते, अगणित मुर्ग़ियाँ, कबूतर, बटेर, हिरन, बन्दर, साँप, बिच्छू और नाना प्रकार के जानवर थे। इनके लिए हज़ारों रुपए रोज़ ख़र्च होते थे। इन जानवरों के रहने के लिए लाखों की लागत से इमारतें बनी थीं। नवाब के निजी नौकरों में २,००० फ़रोश, १०० चोबदार और ख़िदमतगार तथा सैकड़ों लौंडियाँ थीं। मालियों की संख्या चार हज़ार थी। दो-तीन हज़ार रुपए रोज़ाना का ख़र्च तो केवल बावर्ची-

शाह नजफ़ के भीतरी फाटक का दृश्य
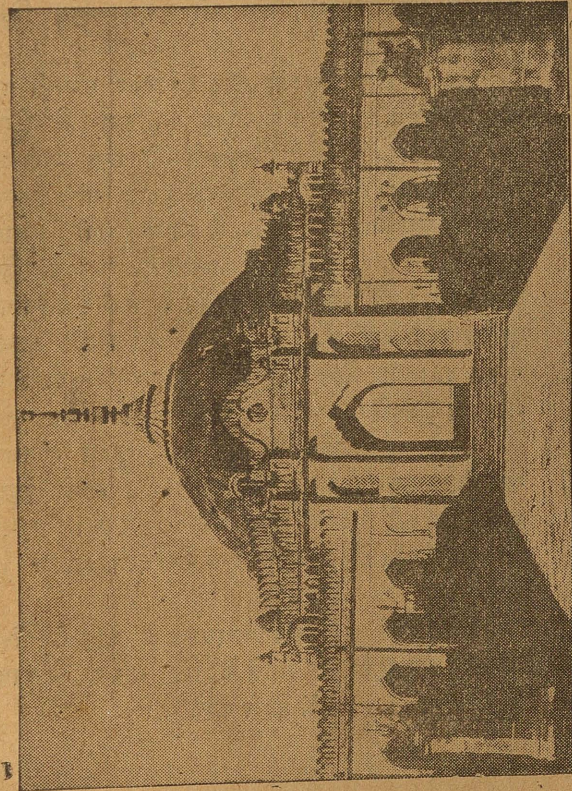
कोठी फ़रहत बख़्श
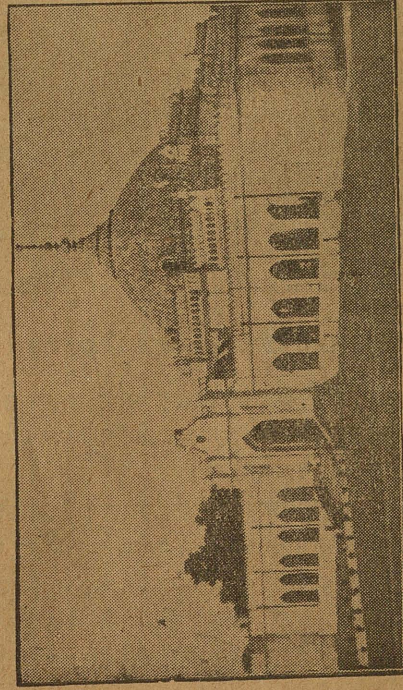
शाह नजफ़ के बाहरी फाटक का दृश्य
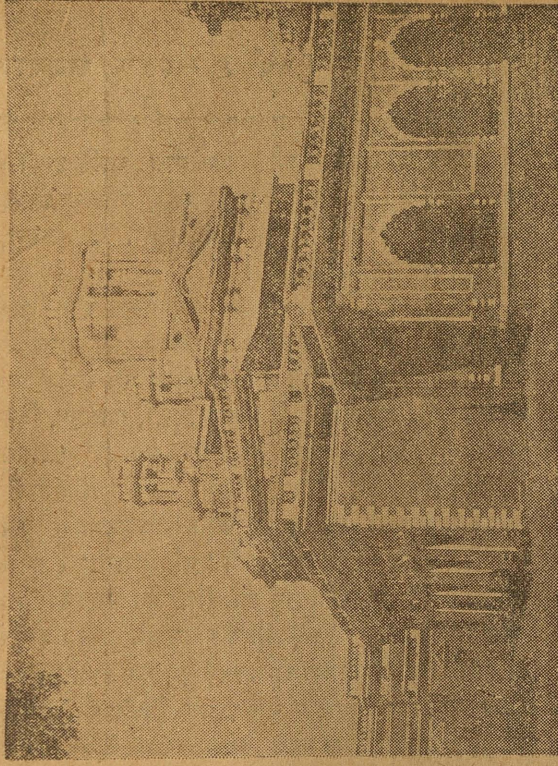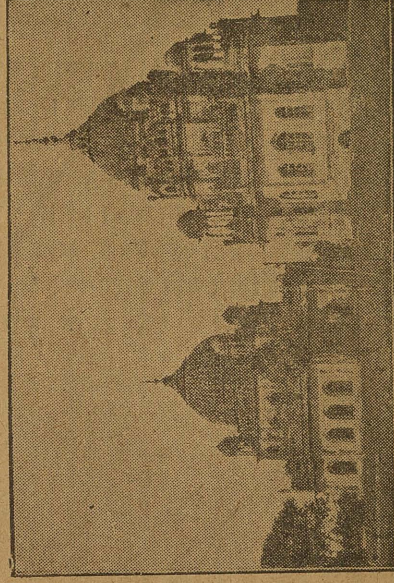
नवाब सआदतअली और उनकी बीबी का मक़बरा

ख़ाने का था। सैकड़ों बावर्ची थे। शाहजादा वज़ीरअली की शादी में तीस लाख रुपए ख़र्च हुए थे।

इस उदारता और अमित-व्ययता के साथ ही नवाब आसफ़ुद्दौला एक योग्य शासक माने जाते थे। इनके दरबार में गुणियों का बड़ा आदर था। मीर, सौदा और हसरत आदि उर्दू के नामी कवि इनके दरबारी कवि थे। इनके अलावा हज़ारों ऐसे कवि और गायक थे, जो साल में सिर्फ़ एक बार दरबार में हाज़िर होते और हज़ारों

नवाब आसफ़ुद्दौला के दरबार में अङ्गरेज़ रेज़िडेण्ट

रुपए पाते थे। सङ्गीत-समारोह और काव्य-चर्चा प्रतिदिन का व्यापार था। एक-एक शेर पर कवि लोग हज़ारों रुपए पुरस्कार पा जाते थे।

नवाब आसफ़ुद्दौला को इमारतें बनवाने का भी बड़ा शौक़ था। इस कार्य में प्रायः दस लाख रुपए प्रति वर्ष ख़र्च हुआ करते थे। लखनऊ का बड़ा इमामबाड़ा, रूमी दरवाज़ा, बिबियापुर की कोठी, चिनहुट की कोठी, मूसाबाग़, ऐशबाग़, चारबाग़, नौबस्ता, पक्का पुल, लखनऊ का चौक बाज़ार और हसनबाग़ आदि इन्हीं के बनवाए हुए हैं। दौलतगञ्ज या दौलतख़ाना नवाब का ख़ास निवास-स्थान था। एक दिन इसकी शोभा इन्द्र-भवन को भी मात करती थी।

इनके दरबारियों में भी कई बड़े उदार और दानी थे, जिनमें राजा टिकैतराय और लाला झाऊलाल का नाम विशेष उल्लेखनीय है। ये दोनों ही सज्जन बड़े धर्मात्मा और दरियादिल थे। बाराबङ्की, कानपुर, बिठूर और प्रयाग आदि स्थानों में इनकी भी कई कीर्तियाँ मौजूद हैं, जिनसे इनकी दानशीलता का पता मिलता है।

आसफ़ुद्दौला की दानशीलता का ज़िक्र हम ऊपर कर ही आए हैं। इन्हें लोगों ने 'हातिमेसानी' (दूसरा हातिम) की पदवी प्रदान की थी। एक बार भयानक दुर्भिक्ष पड़ा। लोग दाने-दाने को तरसने लगे। हज़ारों आदमी भूख की ज्वाला से तड़प-तड़प कर प्राण विसर्जन करने लगे। नवाब को यह ख़बर मिली तो उन्होंने फ़ौरन इमामबाड़ों का कार्य आरम्भ करा दिया। लाखों अन्न-कष्ट पीड़ितों को रोज़ी मिल गई। जो एक ईंट उठा कर रख देता था, उसे भी कुछ न कुछ मिल ही जाता था।

इस समय भारत में ईस्ट इण्डिया कम्पनी का दौरदौरा था और मुग़ल साम्राज्य का चिराग़ टिमटिमा रहा था। अन्यान्य कई रियासतों की तरह लखनऊ में भी कम्पनी का एक रेज़िडेण्ट रहता था। परन्तु आजकल के रियासती रेज़िडेण्टों की तरह वही रियासत का सर्वेसर्वा न होता था। इसलिए उस समय के रेज़िडेण्ट बहादुर को भी नवाब साहब के सामने आने पर दरबार के नियमों तथा अदब-क़ायदे का पालन करना पड़ता था। और जिस तरह अन्यान्य दरबारी अदब से नवाब से मिलते थे, उसी तरह रेज़िडेण्ट भी मिलता था।

नवाब आसफ़ुद्दौला का बनवाया हुआ लखनऊ का इमामबाड़ा, एक दर्शनीय भवन है। उसकी भूल-भुलैया, उसकी सजावट, बेगमों के बैठ कर क़ुरान सुनने का स्थान और हौज़ आदि देख कर दर्शक चकित रह जाते हैं।

बिबियापुर का महल नवाब के सैरगाह के लिए बना था। जब शिकार आदि के लिए वे शहर से बाहर जाते, तो इसी महल में ठहरा करते थे।

हैवलॉक कोठी
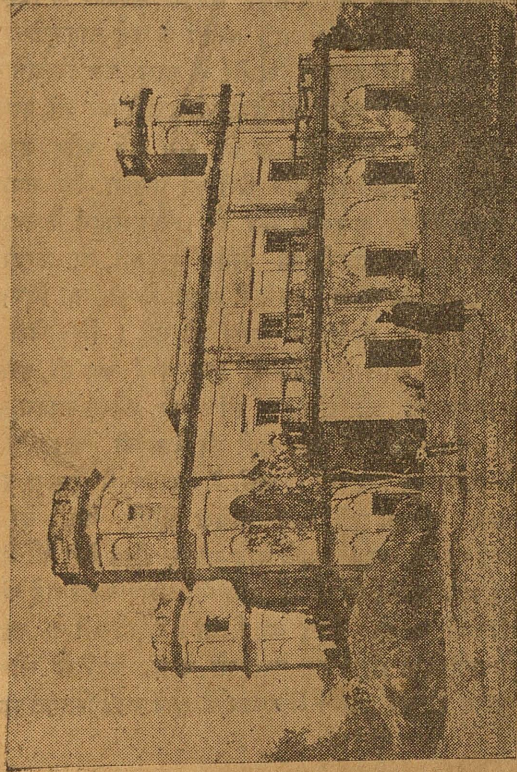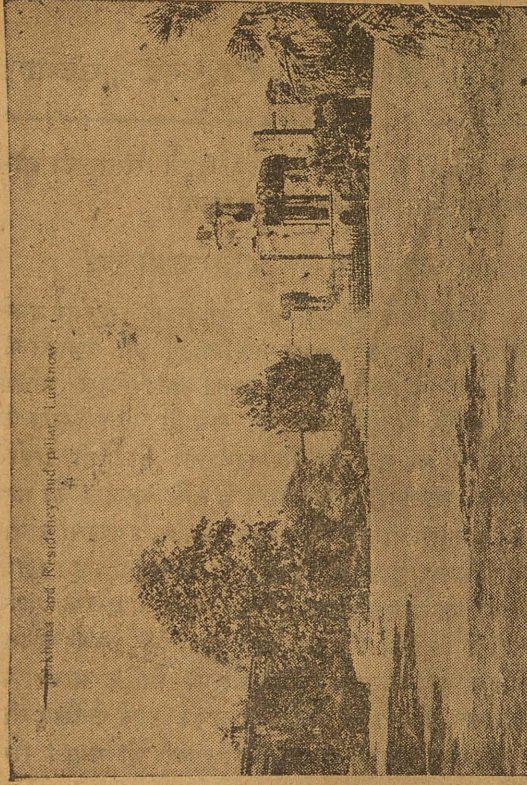
लॉरेन्स मेमोरियल
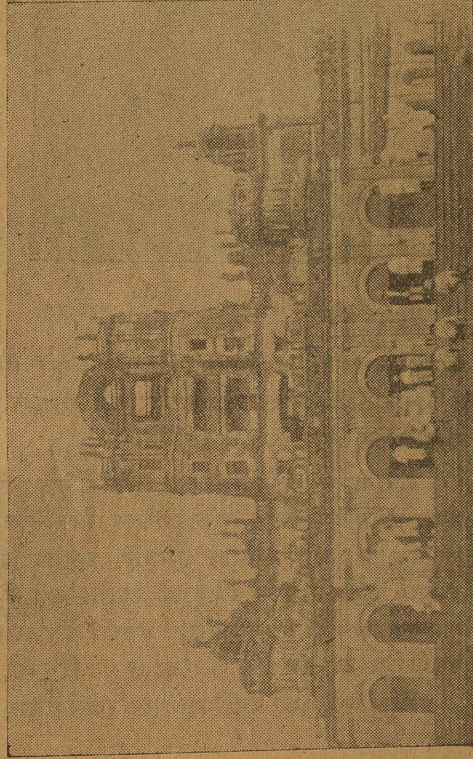
मार्टिनियरी
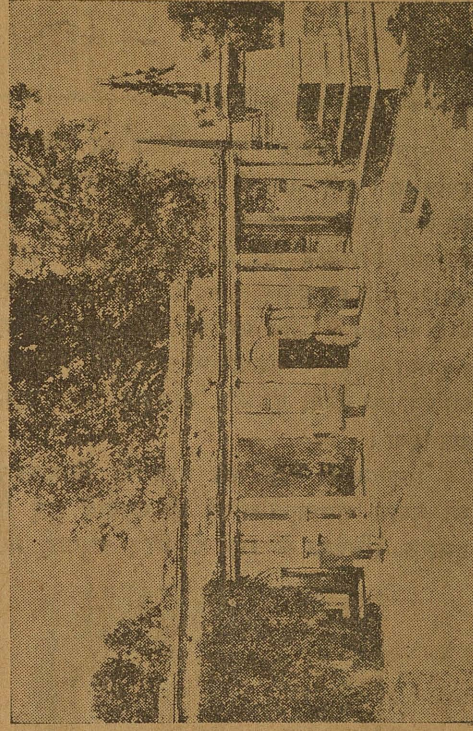
ख़ज़ाना

मूसाबाग़ नवाब आसफ़ुद्दौला का अत्यन्त प्रिय स्थान था। इसी बाग़ में उनके मनोरञ्जनार्थ जानवरों की लड़ाइयाँ हुआ करती थीं। इस बाग़ का इतिहास भी कम मनोरञ्जक नहीं है। कहते हैं, एक बार नवाब बहादुर घोड़े पर सवार होकर कहीं जा रहे थे। एकाएक घोड़े की टाप के नीचे एक चूहा पड़ गया और दब कर मर गया। इससे नवाब अत्यन्त दुखी हुए और वहीं चूहे की एक क़ब्र बनवा दी और बाग़ का नाम 'मूसाबाग़' रख दिया।

लखनऊ की रेज़िडेन्सी नाम की विख्यात इमारत भी नवाब आसफ़ुद्दौला की ही बनवाई हुई है। यह इमारत रेज़िडेण्ट के रहने के लिए बनवाई गई थी।

वज़ीर आग़ामीर मौतमुद्दौला

परन्तु सन् १८५७ के सिपाही-विद्रोह ने इसे एक और ही ऐतिहासिक महत्त्व दे डाला और अब वह उस विद्रोह की एक स्मृति का काम दे रही है।

बेली गारद, रेज़िडेन्सी की मस्जिद, ख़ज़ाना, डॉ० फ़ेरार का निवास-स्थान और लॉरेन्स मेमोरियल आदि लखनऊ की कई दर्शनीय इमारतें, आसफ़ुद्दौला की बनवाई हुई न होने पर भी उनके शासन-काल से उनका कम सम्बन्ध नहीं है। इसलिए पाठकों के अवलोकनार्थ उनके चित्र भी इस लेख में संग्रहीत कर दिए गए हैं।

तेईस वर्षों तक बड़ी शान से राज्य-शासन करके सन् १७९७ में नवाब आसफ़ुद्दौला ने संसार को छोड़ कर अमर-धाम के लिए प्रस्थान किया।

नवाब मिरज़ा वज़ीरअली ख़ाँ

नवाब आसफ़ुद्दौला की वसीयत के अनुसार उनके मरने पर, नवाब मिरज़ा वज़ीरअली ख़ाँ वज़ारत की गद्दी पर विराजमान हुए। इनका शासन-काल क्षणिक था, क्योंकि ये कुल साल भर तक ही नवाबी-सुख का उपभोग कर सके थे। मसनदनशीन होते ही इन्होंने नवाब आसफ़ुद्दौला के ज़माने के मन्त्रि-मण्डल को तोड़ कर अपना नवीन मन्त्रि-मण्डल बनाया। फलतः दरबार के अधिकांश पुराने अहलकार शत्रु बन गए और इन लोगों ने यह आन्दोलन आरम्भ किया कि ये नवाब के वंशज नहीं हैं। इसका परिणाम यह हुआ कि गवर्नर जनरल ने इन्हें गद्दी से उतार दिया और ये ब्रिटिश सरकार की हिरासत में बनारस भेज दिए गए। ख़र्च के लिए तीन लाख रुपए सालाने का वज़ीफ़ा मुक़र्रर हो गया। परन्तु नवाबी की लालसा इनके दिल से दूर नहीं हुई थी। इसलिए इन्होंने नवाब तथा ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध गुप्त षड्यन्त्र आरम्भ किया। अवध के कई ताल्लुक़ेदारों और अफ़ग़ानिस्तान के अमीर के पास पत्र लिखने के साथ ही इन्होंने थोड़ी सी सेना भी इकट्ठी कर ली, परन्तु इसकी ख़बर गवर्नर जनरल को लग गई और उसने तत्कालीन रेज़िडेण्ट मि० चेरी को लिखा कि नवाब वज़ीरअली को कलकत्ता भेज दो। चेरी साहब ने नवाब को बुलवा कर गवर्नर का पैग़ाम सुनाया, तो उन्होंने इस आज्ञा का पालन करने से साफ़ इन्कार कर दिया। इस पर कुछ गर्मागरम बहस हो गई। मि० चेरी ने नवाब की शान के ख़िलाफ़ कुछ बातें कह दीं, इससे वे बिगड़ उठे और तलवार खींच कर फ़ौरन साहब पर टूट पड़े। साहब ने भाग जाने की चेष्टा की, परन्तु कुर्सी से उलझ कर गिर गए। इतने में नवाब ने दूसरा वार किया। साहब बुरी तरह घायल होकर थोड़ी देर के बाद ही मर गए। इसके बाद नवाब मि० चेरी की मेम की ओर लपके, परन्तु वह भाग कर ऊपर चली गई और सीढ़ियों का द्वार बन्द कर लिया। रेज़िडेन्सी के रक्षक सिपाहियों ने रङ्ग बेढब देखा तो वे भी वहाँ से नौ-दो ग्यारह हो गए। इतने में नवाब के छोटे भाई मिरज़ा मुमा

हाथी पर सवार होकर पहुँच गए और भाई को अपने साथ लेकर रेज़िडेन्सी से बाहर निकल आए। परन्तु थोड़ी दूर जाने के बाद ही मालूम हुआ कि अङ्गरेज़ी फ़ौज पीछा करती हुई आ रही है। इसलिए नवाब ठहर गए और एक वीर की भाँति लड़ कर प्राण दे देने का इरादा कर लिया। परन्तु भाई के अनुरोध से ऐसा नहीं कर सके। अगत्या वहाँ से भाग कर किसी तरह आश्रम जा पहुँचे। परन्तु वहाँ रहना भी निरापद न समझा। इसलिए वहाँ से भाग कर गोरखपुर चले गए और बहुत दिनों तक नेपाल के वनों में मारे-मारे फिरते रहे। अन्त में फ़क़ीर के वेष में फ़ैज़ाबाद आए और वहाँ कुछ दिन रह कर वैरागी के वेष में लखनऊ गए। सरकारी जासूस बराबर पीछा कर रहे थे। इसलिए वहाँ से भी भाग कर जयनगर गए। जयनगर के राजा ने समझाया कि इस तरह मारे-मारे फिरने की अपेक्षा यह अच्छा होगा कि आप सरकार से समझौता कर लें। अन्यथा अगर गिरफ़्तार हो गए तो अङ्गरेज़ बिना सूली पर लटकाए न मानेंगे। अन्यान्य शुभचिन्तकों ने भी बहुत-कुछ ऊँच-नीच समझाया। बेचारे राज़ी हो गए। परन्तु वास्तव में यह जयनगर के राजा का षड्यन्त्र था। उसने धोखा देकर नवाब को पकड़वा दिया। बेचारे वहाँ से कलकत्ता लाए गए। मि० चेरी की हत्या के अभियोग में मुक़दमा चला। परन्तु कोई चश्मदीद गवाह न मिला, इसलिए फाँसी से बच गए और आजीवन कलकत्ते में नज़रबन्द रहे। रहने के लिए एक बँगला मिला था, जो चारों ओर से लोहे के छड़ों से बन्द था। भोजन इच्छानुसार मिलता था। परन्तु किसी हिन्दुस्तानी से मिलने नहीं दिया जाता था। पढ़ने के लिए पुस्तकें मिल जाती थीं और उन्हीं के साथ किसी तरह समय व्यतीत कर लेते थे। अन्त में सिपाहियों की निगरानी में हवाख़ोरी की आज्ञा मिल गई थी। परन्तु इस आजीवन क़ैद के कारण वे छत्तीस वर्ष की उमर में ही मर गए!

नवाब सआदतअली ख़ाँ

नवाब आसफ़ुद्दौला के सौतेले भाई, नवाब सआदतअली ख़ाँ सन् १७९८ में गद्दीनशीन हुए। इस समय इनकी उमर ६० वर्ष की थी। इनका पूरा नाम नाज़िमुल-मुल्क यमीनुद्दौला नवाब सआदतअली ख़ाँ मुबाज़िरे-जङ्ग था। ये बड़े बुद्धिमान, ईमानदार, दूरदर्शी, मितव्ययी और सुयोग्य शासक थे। नवाब आसफ़द्दौला के ज़माने में जिन लोगों ने अपनी मुट्ठियाँ गरम की थीं, वे इन्हें कञ्जूस कहा करते थे। परन्तु वास्तव में ये समय पर ख़र्च करने में कभी कञ्जूसी नहीं करते थे। इन्होंने कई इमारतें भी बनवाई थीं। नवाब सआदतअली ख़ाँ की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि ये अङ्गरेज़ी सरकार के अनन्य भक्त थे। सेना-विभाग के ख़र्च के लिए नवाब की सरकार की ओर से जो रक़म अङ्गरेज़ सरकार को दी जाती थी, उसमें इन्होंने १६,२२,३६२) की वृद्धि कर दी। इसके सिवा प्रायः डेढ़ करोड़ की वार्षिक आय

नवाब सआदतअली ख़ाँ

के इलाक़े भी इन्होंने ईस्ट इण्डिया कम्पनी को दे दिए थे। ये सरल-हृदय, दयालु और प्रजापालक शासक थे। जिस तरह अङ्गरेज़ों को प्रसन्न रखना अपना धर्म समझते थे, उसी तरह प्रजा की भलाई करना भी अपना कर्तव्य समझते थे। कभी किसी से कड़ाई का बर्ताव नहीं करते थे। इन्हीं की तरह इनका मन्त्रिमण्डल भी उदार, न्यायप्रिय और प्रजापालक था। नवाब सआदतअली के शासन-काल में अवधवासी अत्यन्त सुखी थे। सारे राज्य में कहीं अशान्ति का नामोनिशान भी न था।

परन्तु इन सद्गुणों के होते हुए भी नवाब सआदत-

अली में एक भयङ्कर दुर्गुण था। वे शराबी और विलासी थे। अपने शासन-काल के मध्य भाग में तो ये इन दुर्गुणों में ऐसे लिप्त हो गए थे कि राज-काज की सुध भी जाती रही थी। परन्तु सन् १८०१ में एकाएक इनकी आँखें खुल गईं और अधःपतन की वह भयङ्कर सीमा दिखाई देने लगी, जहाँ पहुँच कर मनुष्य फिर उठ नहीं सकता। फलतः नवाब ने इस दुर्व्यसन को परित्याग कर देने का इरादा किया और एक रोज़ हज़रत अब्बास की दरगाह में जाकर क़सम खा ली कि शराब नहीं पिएँगे।

गोमती-तट से सूर्यास्त का दृश्य

सुन्दर मकानात बनवाने में यह अपने पूर्ववर्ती नवाब आसफ़ुद्दौला से कम न थे। लखनऊ का विख्यात मोती-महल, बादशाद मञ्ज़िल, चाँदी वाली बारहदरी आदि सुविशाल और सुन्दर इमारतें इन्हीं की बनवाई हुई हैं। इन्होंने 'ख़ुर्शेद मञ्ज़िल' नाम का एक महल बनवाना भी आरम्भ किया था, परन्तु उसके तैयार होने से पहले ही चल बसे थे। इसलिए उसकी पूर्ति नवाब ग़ाज़ीउद्दीन हैदर ने की थी। इसके सिवा और भी बहुत सी इमारतें इनकी बनवाई हुई हैं, जो अब तक इनकी स्मृति का काम दे रही हैं। इनमें से कई कोठियाँ इन्होंने अपने लड़कों को रहने के लिए दे दी थीं और बाक़ी अपने मनो-रञ्जन के लिए रक्खी थीं। ये लखनऊ को एक सुन्दर शहर के रूप में देखना चाहते थे। इसलिए भव्य मकानों के सिवा इन्होंने कई महल्ले भी बसाए थे। सराय अली-ख़ाँ, अहाता मुहम्मदअली ख़ाँ, कटरा बिजनबेग ख़ाँ, कटरा सय्यद हुसैन, कटरा अबूतुराब और बाग़ महानारायण आदि लखनऊ के महल्ले इन्हीं के बसाए हुए हैं।

इनकी मृत्यु सन् १८१४ में हुई थी। इनका विशाल मक़बरा वर्तमान कैनिङ्ग कॉलेज के पास है। यहीं इनकी बेगम का शव भी दफ़नाया गया था।

शाह ग़ाज़ीउद्दीन हैदर

नवाब ग़ाज़ीउद्दीन हैदर सन् १८१४ में मसनदनशीन हुए थे। ये नवाब सआदतअली ख़ाँ के बड़े लड़के थे। इन्होंने ही नवाब वज़ीर के बदले पहले-पहल बादशाह की पदवी प्राप्त की थी। फलतः ये अपने वंश के पहले बादशाह थे। बादशाह की पदवी प्राप्त करने के बाद इनका पूरा नाम अबुल मुज़फ़्फ़र मुइज़ुद्दीन शाहेज़िमन ग़ाज़ीउद्दीन हैदर बादशाह पड़ा। इनके चलाए स्वतन्त्र सिक्के पर नीचे लिखा फ़ारसी भाषा का शेर खुदा होता था—

सिक्क ज़िदवर सीमोज़र अज़ फ़ज़्ल रब्बे ,ज़ुल्मेनम्,
ग़ाज़िउद्दीं हैदरे आलीन सब शाहे ज़िमन।

ग़ाज़ीउद्दीन हैदर एक उदार-हृदय, साहित्य-प्रेमी और गुणग्राही नरेश थे। इनके दरबार में गुणियों, गवैयों और कवियों का बड़ा आदर था। मिरज़ा महम्मद ख़ाँ नसीबी किरमानी इनके दरबारी कवि थे। उर्दू के मशहूर शायर 'नासिख़' और 'आतिश' इन्हीं के ज़माने में थे।
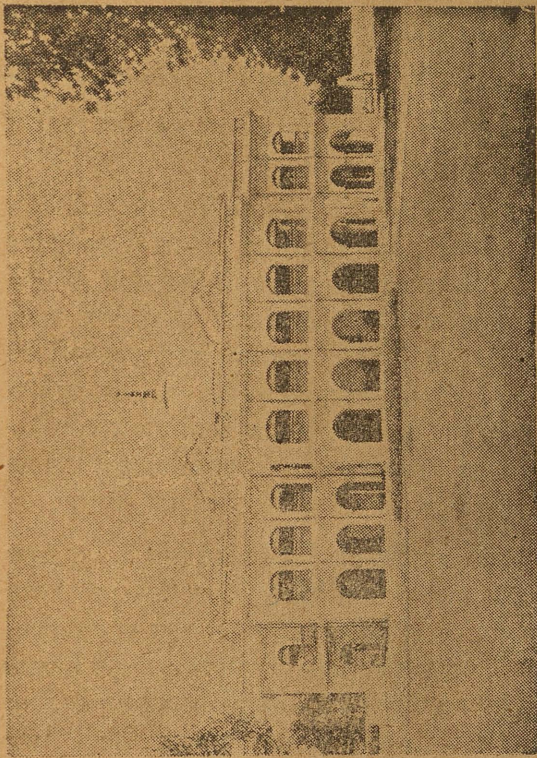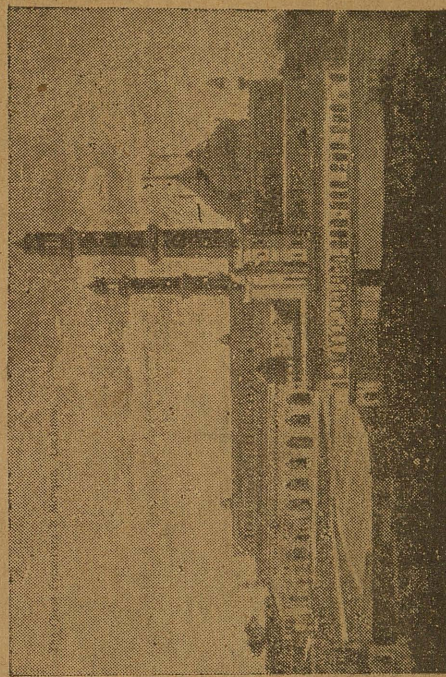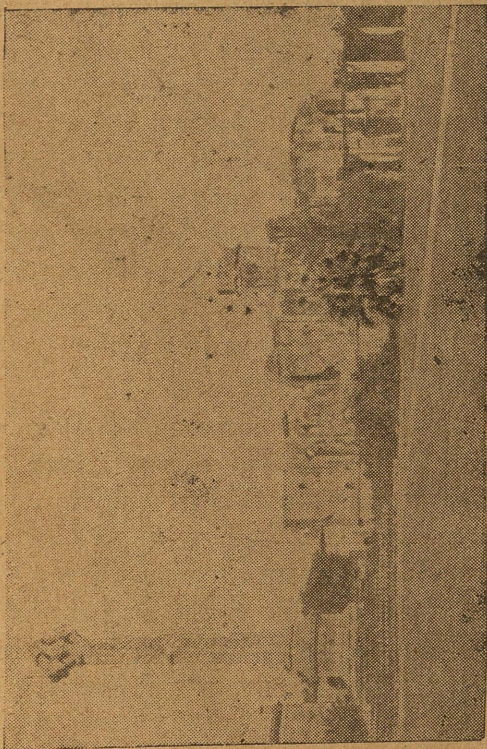
मार्टिनियरी के पास की नहर और मीनार का दृश्य

मुबारक-मन्ज़िल या मोती-महल

बेली गारद का फाटक

जुमा मस्जिद
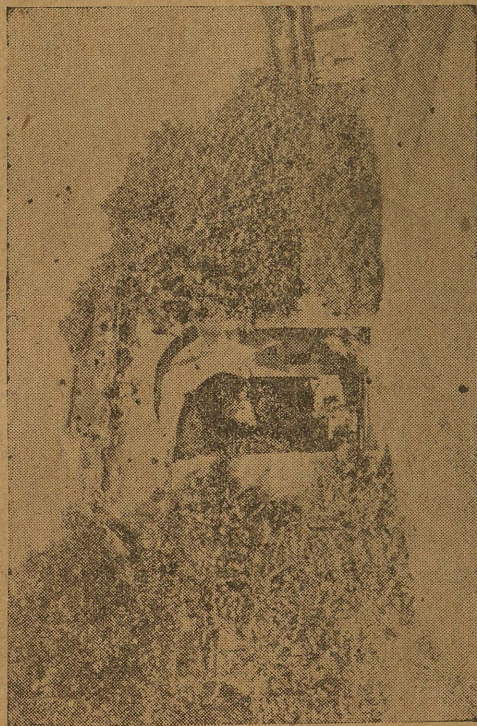
दरबारे-शाही में इनकी भी बड़ी इज़्ज़त थी। ईद के अव-सर पर इन कवियों की बड़ी तैयारी से विदाई होती थी। बादशाह स्वयं अपने हाथों से इन्हें इनाम-इकराम दिया करते थे। तत्कालीन विख्यात गवैये रजबअली और फ़ज़लअली का भी ख़ूब मान था। ये दोनों गायक 'ख़याल' गाने में अपना सानी नहीं रखते थे। सहरोबाई दक्षिण वाली नाम की गायिका का "ऐ नसीमे सहर आरा मगहे यार कुजास्त" गीत बादशाह को बहुत पसन्द था। वे बहुधा यह ग़ज़ल सुना करते थे।

बादशाह ग़ाज़ीउद्दीन हैदर

इनके प्रधान-मन्त्री नवाब मोतमिदउद्दौला आग़ा मीर थे। दरबार में इनकी तूती बोलती थी। परन्तु अन्त में कुछ चुग़लख़ोरों के बहकाने से बादशाह इनसे नाराज़ हो गए और इन्हें नज़रबन्द कर लिया था। मीर साहब एक साधारण स्थिति से महामन्त्री के महान पद पर पहुँचे थे। अपनी कार्यकुशलता से इन्होंने राज्य की उन्नति भी यथेष्ट की थी।

बादशाह ग़ाज़ीउद्दीन के शासन-काल में बादशाही ख़ज़ाना ख़ूब भरा-पुरा था। राज्य में चारों ओर अक्षुण्ण शान्ति विराज रही थी। ईस्ट इण्डिया कम्पनी को इन्होंने कई करोड़ रुपए उधार दिए थे।

ग़ाज़ीउद्दीन हैदर की प्रधान बेगम बादशाह बेगम के नाम से विख्यात थीं और बड़े ठाट-बाट से एक स्वतन्त्र महल में रहती थीं। इनकी रक्षा के लिए स्त्रियों की फ़ौज रक्खी गई थी। परन्तु बादशाह से इनकी कम बनती थी, इसलिए वे इनसे बहुत कम मिला-जुला करते थे। अन्त में तो यह पारस्परिक वैमनस्य यहाँ तक बढ़ गया था कि इनके कारण ही बादशाह अपने शाहज़ादे नासिरु-द्दीन का प्राण ले लेने पर उतारू हो गए थे। परन्तु बादशाह बेगम की सहायता से उसके प्राण बच गए।

शाह ग़ाज़ीउद्दीन हैदर की स्मृतियों में इस समय सब से मुख्य और प्रसिद्ध लखनऊ का 'शाह नजफ़' नाम का इमामबाड़ा है, जिसे बादशाह ने बहुत सा रुपया ख़र्च करके, सन् १८१७ में तैयार कराया था। यह विख्यात इमामबाड़ा गोमती नदी के किनारे बना है। इसके सिवा इन्होंने मोती-महल के साथ मुबारक मञ्ज़िल नाम की इमारत भी निर्माण कराई थी। 'गुलशने हरम' और 'दर्शन-विलास' नाम के भव्य भवन भी इन्हीं के बनवाए हुए हैं।

'शाह नजफ़' का दूसरा नाम 'नजफ़ अशरफ़' भी है। किम्बदन्ती है कि मुसलमानों के पैग़म्बर हज़रत महम्मद के दामाद और उत्तराधिकारी हज़रत अली की समाधि ईरान के नजफ़ नामक पहाड़ पर बनी हुई है और यह शाह नजफ़ उसी का अनुकरण है, इसीलिए इसका नाम 'नजफ़ अशरफ़' भी है। अस्तु, शाह नजफ़ लखनऊ की एक दर्शनीय इमारत है। इसकी कारीगरी और बनावट बड़ी ही चित्ताकर्षक है। अन्दर बादशाहों तथा बेगमों के हस्त-लिखित चित्र टँगे हैं।

इसके सिवा जन्नत आरामगाह नाम के दो और मक़बरे भी ग़ाज़ीउद्दीन हैदर ने बनवाए थे, जिनमें उनके माता और पिता की समाधियाँ हैं। लोगों का कहना है कि जिस स्थान पर ये समाधियाँ बनी हैं, वहीं इनके पिता का निवास-स्थान था और लड़कपन में ग़ाज़ीउद्दीन भी वहीं रहा करते थे। इसलिए जब वे राजसिंहासन पर बैठे, तो उन्होंने कहा कि मैंने अपने पिता का घर ले लिया है, तो मुझे भी अपना घर अपने पिता को दे देना
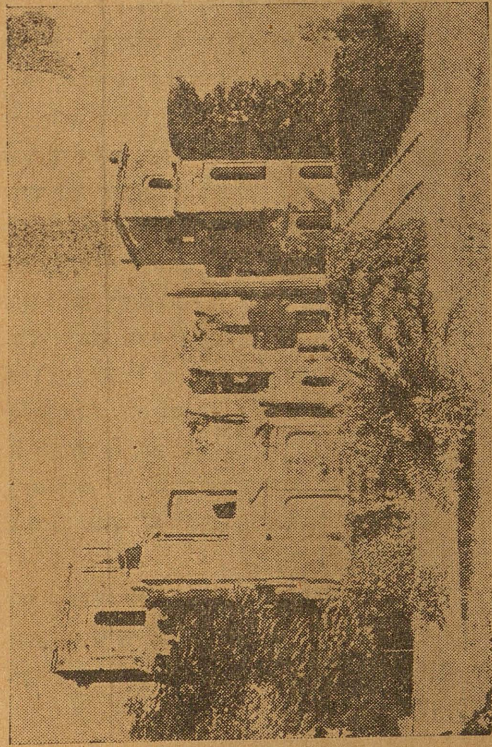
दिलकुशा-महल
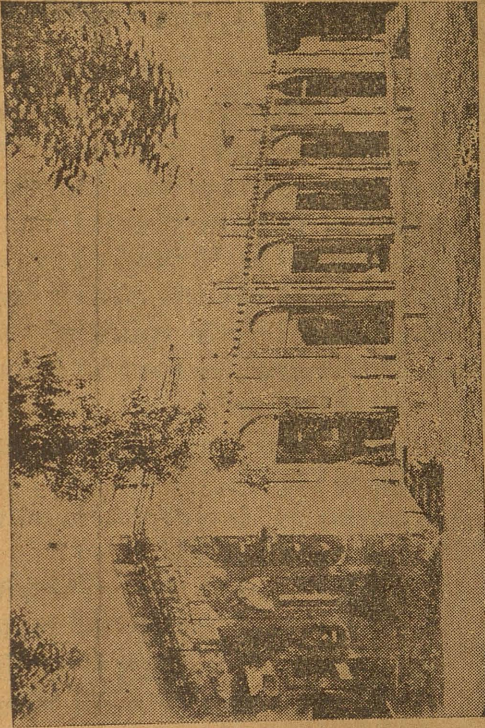
डॉ० फ़ेरार का निवास-स्थान
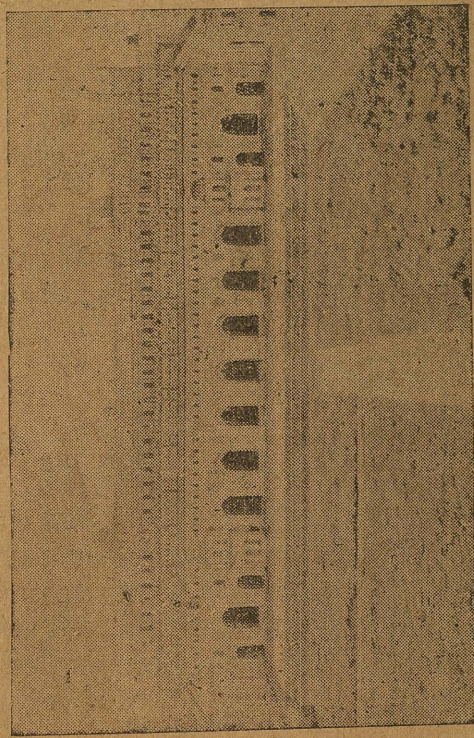
इमामबाड़ा
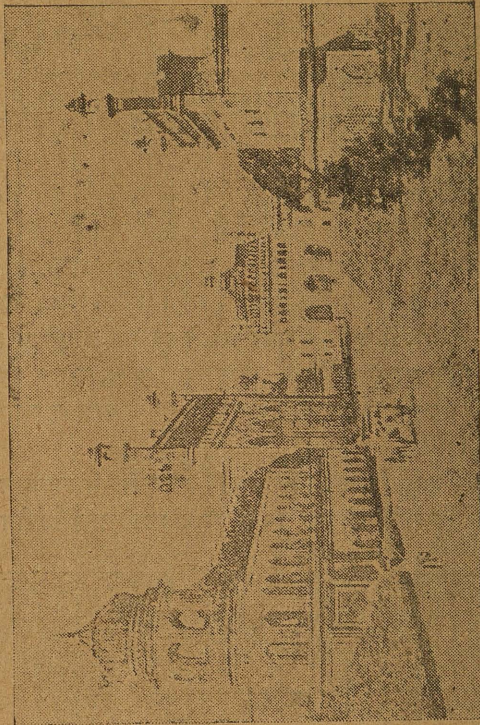
रूमी दरवाज़ा

चाहिए। तदनुसार अपना महल तुड़वा कर वहीं ये समाधियाँ बनवाईं।

लोहे का पुल जो गोमती नदी पर बना है, यह भी शाह ग़ाज़ीउद्दीन की ही कीर्ति है। इसे उन्होंने विलायत से बनवा कर मँगवाया था। परन्तु इसके भारत पहुँचने से पहले ही आपकी मृत्यु हो गई। इसके सिवा वह गङ्गा से गोमती तक एक नहर भी बनवाना चाहते थे। कार्य भी आरम्भ कर दिया गया था। परन्तु पूरा न हो सका। वह नहर आज भी 'सूखा नाला' के नाम से मशहूर है।

९६ वर्षों तक अवध के शाही तख़्त पर विराजमान रहने के बाद, हिजरी सन् १२४२ में बादशाह ग़ाज़ीउद्दीन हैदर ने इस संसार से अमर-धाम की यात्रा की। इनकी क़ब्र शाह नजफ़ में दी गई थी, जिसे इसी काम के लिए इन्होंने बनवाया था।
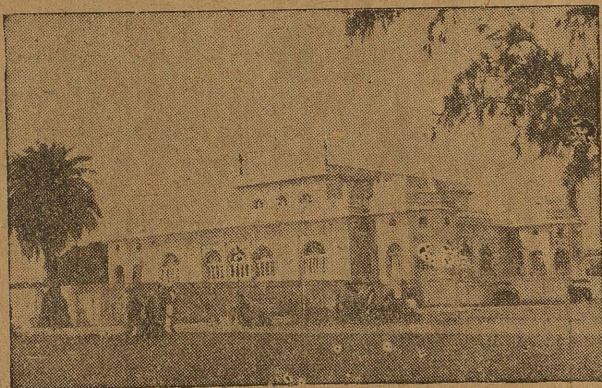
क़ैसरबाग़ की बारहदरी

बादशाह नसीरुद्दीन हैदर

अवध के प्रथम बादशाह ग़ाज़ीउद्दीन के बाद उनके बड़े लड़के ग़ाज़ी नसीरुद्दीन हैदर राजसिंहासनारूढ़ हुए और अपना नाम अबुलनसर क़ुतुबुद्दीन सुलेमान जाह नसीरुद्दीन हैदर बादशाह रक्खा। इस समय इनकी उमर कुल २५ वर्ष की थी। ये २१ अक्टूबर सन् १८२७ ई० में राजसिंहासन पर बैठे थे। इन्होंने सब से पहले अपने पिता के पुराने मन्त्री मोतमिदउद्दौला आग़ामीर को बरख़ास्त करके कानपुर भेजवाया और उसकी जगह मीर फ़ज़लअली ख़ाँ नाम के एक फ़ीलवान को दी। इसे एतमादुद्दौला का ख़िताब मिला। परन्तु साल भर के बाद ही बेचारे एतमादुद्दौला साहब चल बसे और फिर नवाब मुन्तज़िमुद्दौला हकीम मेहदी अलीख़ाँ वज़ीर हुए। ये बड़े नेक-दिल, प्रजा-प्रेमी और धर्मात्मा थे। इनके उत्साह-दान से बादशाह ने लखनऊ के ग़रीबों के लिए अस्पताल बनवाए। अन्धे, लँगड़े और लूलों के लिए एक 'ख़ैरातख़ाना' भी खुलवाया था। इस ख़ैरातख़ाने के लिए एक हज़ार रुपए महीना राजकोष से ख़र्च होता था। इसके सिवा 'सुलतानी लीथो छापाख़ाना' नाम का एक प्रेस भी खुलवाया था। एक अङ्गरेज़ी स्कूल खुला तथा रसदख़ाने की स्थापना हुई, जो अब तक सतारा वाली कोठी के नाम से विख्यात है।

बादशाह नसीरुद्दीन हैदर पूर्ण विलासी और शराबी थे। इनके रङ्गमहल में कई विलायती लेडियाँ भी थीं। परन्तु मृत्यु से पहले ही एक बार बीमार पड़ने पर उन्होंने शराब पीना एकदम बन्द कर दिया और विलायती बीबियों को भी विदा कर दिया।

बादशाह नसीरुद्दीन ने गोमती नदी के किनारे एक आलीशान महल बनवाया था, जो आज तक 'छतर-मन्ज़िल' के नाम से विख्यात है। इसीके अन्तर्गत शाह मन्ज़िल नाम का स्थान है। यहाँ बादशाह की पशु-शाला थी। इसके सिवा 'क़ैसर-पसन्द' रौशनुद्दौला और तारावाली कोठी आदि इमारतें भी बादशाह नसीरुद्दीन की ही बनवाई हुई हैं। तारावाली कोठी एक 'वेधशाला' (Observatory) है। उस समय राजज्योतिषी कर्नल विलकॉक्स (Colonel Wilcox) के हाथ वेधशाला का प्रबन्ध था। नक्षत्रों की गति-विधि देखने के कई अच्छे-अच्छे यन्त्रादि भी इस वेधशाला में संग्रहीत थे। अन्त में वाजिदअली शाह ने इसे बन्द करा दिया था और गत सिपाही-विद्रोह के समय इसके यन्त्रादि भी नष्ट-भ्रष्ट हो गए।

नसीरुद्दीन को विलायती फूलों और पौधों का बड़ा शौक़ था, इसलिए उन्होंने विलायती बाग़ नाम का एक बाग़ भी बनवाया था, जिसमें बहुत से विलायती पेड़-पौधे लगे थे।

इन्होंने केवल दस वर्ष तक राज्य-शासन किया था और कुल पैंतीस वर्ष की उमर में इस नश्वर-जगत से कूच कर गए।

बादशाह मुन्नाजान

कहते हैं, नसीरुद्दीन हैदर की अपनी स्त्री से कोई लड़का न था, इसलिए उनकी मृत्यु के बाद उनकी वेश्या का पुत्र मुन्नाजान राजसिंहासन पर बैठा और अपना नाम रफ़ीउद्दीन फ़रीदूँबख़्त मिरज़ा महम्मद मेहदी उर्फ़ मुन्नाजान बादशाह रक्खा। परन्तु नसीरुद्दीन हैदर की माता बादशाह बेगम को यह बात पसन्द न आई और उन्होंने बड़ी कोशिश करके मृत बादशाह के चचा नसीरुद्दौला को तख़्त पर बिठाया।

परन्तु कुछ इतिहासकारों का मत इसके बिल्कुल विपरीत है। उनका कथन है कि मुन्नाजान उनकी ख़ास बेगम का लड़का था। परन्तु उसकी परवरिश बादशाह बेगम ने की थी और बादशाह अपनी माता अर्थात् बादशाह बेगम से असन्तुष्ट रहा करते थे। इसलिए उन्होंने मुन्नाजान को उत्तराधिकार से वञ्चित कर दिया था। फलतः उनकी मृत्यु के बाद अवध के रेज़िडेण्ट जनरल लू ने उनके चचा को तख़्त पर बिठाने का प्रबन्ध किया और बादशाह के मरते ही शाही ख़ज़ाना, महल और अन्यान्य स्थानों पर फ़ौज का पहरा बिठा दिया। इधर बादशाह बेगम मुन्नाजान को लेकर दो हज़ार सेना की निगरानी में फ़रहतबख़्श नामक महल में आने लगी। रेज़िडेण्ट ने आदमी भेज कर कहलाया कि आप यहाँ न आएँ। परन्तु बेगम के आदमियों ने इसका कुछ भी ख़्याल न किया और फाटक तोड़ कर अन्दर घुस गए। महल के रक्षकों से लड़ाई भी हो गई। अन्त में रेज़िडेण्ट ने कहलाया कि आप पन्द्रह मिनट में मकान ख़ाली कर दें। परन्तु बेगम ने इस आज्ञा की भी परवाह न की। मुन्नाजान तख़्त पर बैठा दिया गया। अहलकार नए बादशाह का अभिवादन करने लगे। दूसरे दिन दरबार आरम्भ हुआ। नृत्य-गीत आरम्भ हुआ। फाटक पर शहनाई बजने लगी। दस्तरख़ान तैयार हुआ। ख़ूब धूमधाम से दावतें हुईं। इसी समय रेज़िडेण्ट की आज्ञा से कप्तान मेगनिन ने महल पर धावा बोल दिया और गोलेबारी आरम्भ कर दी। नए बादशाह कमर में तलवार बाँधे और हाथ में बन्दूक़ लिए क्रोधावेश में इधर-उधर टहल रहे थे। लगातार पाँच-छः गोले गिरे, धुएँ से सारा महल भर गया। नूरा भाँड़ का लड़का नाचते-नाचते जल-भुन गया। और भी कितनी ही जानें गईं। फ़ौज के सिपाही बाहर से सीढ़ियाँ लगा कर अन्दर घुस आए। एक हवलदार ने बादशाह मुन्नाजान को बाँध लिया। शाही ताज उनके सर से उतार लिया गया और तख़्त लूट लिया गया। इसके बाद शाह मुन्नाजान की बेगम अफ़ज़ल महल और स्वयं मुन्नाजान फ़ौज की संरक्षता में कानपुर भेज दिए गए और वहाँ से फिर चुनारगढ़ में लाकर क़ैद किए गए।

मिरज़ा मुहम्मदअली शाह

अबुलफ़तेह मुईमुद्दीन मिरज़ा मुहम्मदअली शाह, नवाब सआदतअली ख़ाँ के द्वितीय पुत्र थे और शाह मुन्नाजान के हङ्गामे के बाद सिंहासनारूढ़ हुए। उस समय उनकी उमर साठ वर्ष से अधिक थी। इन्होंने अपने राजत्व-काल में कई अच्छे काम किए थे। ये बड़े उदार, विद्या-व्यसनी और शान्तिप्रिय मनुष्य थे। लखनऊ के हुसेनाबाद का मशहूर इमामबाड़ा इन्हीं की स्थायी कीर्ति है। राज-भवन से हुसेनाबाद तक एक सड़क भी इन्होंने बनवाई थी, जो अब तक मौजूद है। इसके सिवा विख्यात जामा-मस्जिद भी इन्हीं की बनवाई हुई है। इन कामों में इन्होंने बीस लाख से अधिक रुपए ख़र्च किए थे। मुसलमानों के पवित्र तीर्थ-स्थान मक्का और मदीने को भी इन्होंने अधिक सहायता प्रदान की थी। इनके शासन-काल में कई प्रधान मन्त्रियों की मृत्युएँ हुई थीं। इन्होंने स्वयं भी केवल पाँच ही वर्ष तक बादशाहत की थी और मरने पर हुसेनाबाद के इमामबाड़े में दफ़नाए गए थे। मुहर्रम के दिनों में इस इमामबाड़े की सजावट और रोशनी दर्शनीय होती है। हुसेनाबाद पार्क के पास ही अङ्गरेज़ों का बनवाया हुआ विक्टोरिया टॉवर नाम का स्मृति-स्तम्भ है, जिसमें ३६ लाख रुपए लगे हैं। इसके बनवाने का ख़र्च इमामबाड़े के फ़ण्ड से ही लिया गया था। इस स्मृति-स्तम्भ पर जो घड़ी लगी है, वैसी घड़ी, कहते हैं, भारतवर्ष में दूसरी नहीं है।

मिरज़ा मुहम्मद अमजदअली ख़ाँ

इनका बादशाही नाम सिरियाजाह मिरज़ा मुहम्मद अमजदअली ख़ाँ बादशाह था। ये शाह मुहम्मदअली

के पुत्र थे और इन्होंने भी केवल पाँच ही वर्ष तक बादशाहत की थी। कतिपय राजकर्मचारियों को बरख़ास्त और बहाल करने के सिवा अपने शासन-काल में इन्होंने कोई उल्लेखनीय काम नहीं किया। एक नायब दारोग़ा को अपना प्रधान-मन्त्री बनाया था। इनकी मृत्यु सन् १८४७ ई० में हुई थी। अपने लिए क़ब्र ये स्वयं बनवा गए थे।

मिरज़ा वाजिदअली शाह

जाने आलम मिरज़ा वाजिदअली शाह अवध के बादशाहों में अन्तिम और विशेष विख्यात हैं। ये सन् १२६२ हिज्री में तख़्तनशीन हुए थे। इस समय इनकी उम्र कुल २५ वर्ष की थी। बड़े शौक़ीन, विलासी और आमोद-प्रिय थे। सारा समय आमोद-प्रमोद में ही व्यतीत किया करते थे। इनकी विलासिता की कहानी बड़ी लम्बी-चौड़ी और बड़ी ही दिलचस्प है। बड़े अलहड़ स्वभाव के आदमी थे। इन्होंने नए फ़ैशन की टोपियाँ, कुरते और अँगरखे भी ईजाद कराए थे। वाजिदअली शाह का रङ्ग-महल मानो सुन्दरियों का अखाड़ा था। चौबीसो घण्टे राग-रङ्ग का समाँ बँधा रहता था। स्वयं भी नाचने और गाने का शौक़ था। इनके ज़माने में भाँड़ों, सफ़रदाइयों और दूसरे ऐसे लोगों को बड़ी मौज थी।

इन्होंने अपनी प्यारी बेगम सिकन्दरमहल के लिए सिकन्दरबाग़ नाम का एक सुन्दर महल और बाग़ीचा बनवाया था। इसके सिवा क़ैसरबाग़, चौलक्खी-महल आदि इमारतें और बाग़ भी इन्होंने ही बनवाए थे। अन्त में सन् १८५६ में लॉर्ड डलहौज़ी ने इन्हें शासन-कार्य के अयोग्य समझ कर कलकत्ते के पास मटियाबुर्ज नामक स्थान में क़ैद कर रक्खा। इन्हें ख़र्च के लिए एक लाख रुपए मासिक मिला करते थे। अन्त में वहीं इनकी मृत्यु भी हुई। इनके निवास-स्थान का भग्नावशेष वहाँ आज भी मौजूद है।

प्रेम

[श्री० बालकृष्ण राव जी]

(१)

प्रेम ! वसुधा के भूषण भव्य,
अलौकिक सौख्य, शान्ति के रूप।
तमोमय मानस के आलोक,
हमारे सुखमय स्वप्न अनूप !!

(२)

मीन-जल के पुनीत सम्बन्ध,
शान्तिमय जीवन के हे द्वार !
सुधा-सञ्चारी न्यारे मन्त्र,
हमारे हियहारी हियहार !!

(३)

जगाने वाले स्मृति की आग,
अरे शुचि शीतल मन्द समीर !
सुनाने वाले मादक राग,
हृदय-पञ्जर-वासी हे कीर !!

(४)

विश्व-उपवन के सरस प्रसून,
अकिञ्चन के हे रत्नागार !
प्रकृति के हे, प्रिय नियम पुनीत,
हमारे जीवन के आधार !!

इन्दौर की राजमाता—श्रीमती महारानी चन्द्रावती जी, जिन्होंने
अछूतों की सेवा करने का व्रत ग्रहण कर लिया है।

मैथिल-मनोवृत्ति

[प्रो० भोलालाल दास जी, बी० ए०, एल्-एल्० बी०]

जब से महाराजाधिराज दरभंगा विलायत से लौटे हैं, तब से मिथिला में समुद्र-यात्रा के प्रश्न को लेकर तुमुल आन्दोलन मचा हुआ है। हर्ष का विषय है कि विश्व-क्रान्ति से मिथिला भी अब अछूती नहीं है। आज से २०-२५ वर्ष पूर्व जहाँ कायस्थ जैसे उदार समाज में भी उसके कारण मिस्टर पार्टी बनती थी, वहाँ आज मैथिल जैसे कट्टर समाज में जातीय महासभा के द्वारा महाराज का समारोहपूर्ण स्वागत होना, भोज दिया जाना तथा महासभा का सभापति बनाया जाना और एक बृहत जन-समुदाय का उनका पक्षपाती होना कोई साधारण बात नहीं है। यह अवश्य जातीय मनोवृत्ति के परिवर्तन का भारी परिणाम है। परन्तु यह सब होते हुए भी यह लिखते खेद होता है कि ख़ास महाराजाधिराज के श्रोत्रिय समाज में उनके विरुद्ध भारी दलबन्दी खड़ी हुई है। यह बात स्मरण रखने योग्य है कि मैथिल ब्राह्मणों के तीन मुख्य भाग हैं—(१) जयवार (२) योग, और (३) श्रोत्रिय। साधारण ब्राह्मण 'जयवार' कहलाते हैं और सर्वोच्च 'श्रोत्रिय'। 'योग' इन दोनों के बीच की श्रेणी के माने जाते हैं। 'श्रोत्रिय' और 'जयवार' में जहाँ परस्पर खान-पान और शादी-विवाह नहीं होता, वहाँ योग की कन्याएँ बहुधा 'श्रोत्रिय' समाज में ब्याही जाती हैं। इस प्रकार योग श्रेणी के लोग जहाँ जयवार से लड़की लेते हैं और बहुधा देते भी हैं, वहाँ उनका सम्बन्ध केवल लड़की देने के कारण श्रोत्रिय समाज से भी स्थापित होता रहता है और जिस योग की लड़की ख़ास महाराजा के यहाँ ब्याही जाती है, वह घर तो श्रोत्रियों में ही परिगणित हो जाता है। हाँ, श्रोत्रिय लोग जब किसी योग से लड़की लेते हैं, तो उनका व्यवहार बड़ा ही विचित्र रहता है। उदाहरण के लिए जब किसी श्रोत्रिय का विवाह श्रोत्रिय की कन्या से होता है, तो आपस में खान-पान आदि सब कुछ होता है। किन्तु योग के यहाँ श्रोत्रिय लोग खान-पान नहीं करते। विवाह के उपरान्त केवल लड़की लेकर चले आते हैं और उस लड़की को भी अपने पति के घर में वह स्थान प्राप्त नहीं होता है, जोकि एक श्रोत्रिय कन्या को होता है। उसे जन्म भर अपने मायके लौटने का अवसर नहीं दिया जाता है, और जब कभी उसके मायके वाले उसे देखने जाते हैं, तो उनके साथ भी अछूतों का सा ही व्यवहार किया जाता है। इतना होने पर भी योगवंशी ब्राह्मण श्रोत्रियों के साथ सम्बन्ध स्थापित करने में अपनी प्रतिष्ठा समझते हैं। इससे कभी-कभी उन्हें श्रोत्रिय होने का भी मौक़ा मिल जाता है। इस प्रकार मैथिल ब्राह्मणों की तीन श्रेणियाँ हैं, जो आपस में एक-दूसरे से भिन्न हैं। इनमें जयवार ब्राह्मणों की ही संख्या प्रायः $\frac{3}{4}$ है। शेष चतुर्थांश में योग और श्रोत्रिय दोनों सम्मिलित हैं।

जब महाराजाधिराज गत जनवरी महीने में, राउण्ड-टेबिल कॉन्फ्रेन्स से लौटे, तो उन्होंने महामहोपाध्याय पण्डित रुञ्जे मिश्र की व्यवस्था के अनुसार प्रयागराज में आवश्यक प्रायश्चित्त कर लिया था और सबने मिल कर बड़े समारोह से दरभंगा स्टेशन पर उनका स्वागत किया था। मैथिल महासभा की ओर से उनको जो अभिनन्दन-पत्र दिया गया था, उसमें उनकी विलायत-यात्रा का समर्थन भी किया था। महाराजाधिराज ने भी अपनी कृतज्ञता, इस प्रतिज्ञा के द्वारा उद्घोषित की थी कि, उन्हें राउण्डटेबिल कॉन्फ्रेन्स में सम्मिलित होने के कारण सरकार से जो कुछ भत्ता आदि प्राप्त होगा, वह तथा उतनी ही रक़म और अपने राजकोष से मिला कर, मैथिल महासभा को प्रदान करेंगे। यह काम तो निर्विघ्न समाप्त हो गए। किन्तु उसके बाद, जब उन्होंने श्रीसत्य-नारायण की पूजा में अपनी बिरादरी वालों को सम्मिलित होने के लिए आमन्त्रित किया, तो श्रोत्रिय समाज तटस्थ हो गया। ऐसी बात नहीं थी कि वे अपने शिर-

मौर को उठाना नहीं चाहते थे, बल्कि उनका कहना यह था कि श्रीमान मिथिलेश के साथ जो अन्यान्य लोग विलायत गए थे, उनका मामला विचाराधीन रक्खा जावे। परन्तु महाराजाधिराज का कहना यह था कि हम सभी एक साथ गए थे और यथायोग्य प्रायश्चित्त भी सबने कर लिया है, तब किसी का मामला विचाराधीन क्यों रक्खा जाय ? इस सम्बन्ध में किस दल की क्या ज़्यादती थी, यह कहना तो असम्भव है, परन्तु उसी दिन से मतभेद का सूत्रपात हुआ। मिथिलेश ने इसकी कुछ परवाह न करके सत्यनारायण की पूजा कर ली। उसके पश्चात् मैथिल महासभा की ओर से उन्हें भोज देने का प्रस्ताव उठा और वह स्वीकृत भी हुआ। जितने भी गण्यमान्य व्यक्ति थे, ब्राह्मण और कायस्थ, सभी मैथिलों को इसमें सम्मिलित होने के लिए निमन्त्रण दिया गया। यद्यपि 'पार्टी' में भी पूर्ण सफलता हुई और बड़े-छोटे बहुत से मैथिल ब्राह्मण और कायस्थ इसमें सम्मिलित हुए, तथापि श्रोत्रिय समुदाय ने समष्टि रूप से असहयोग कर लिया और अन्य ब्राह्मणों में भी कुछ लोगों ने व्यक्तिगत असहयोग किया। इसके बाद दलबन्दी यहाँ तक बढ़ी कि जिन लोगों ने 'पार्टी' में भोजन किया था, उनका भी जहाँ तक हो सका, परित्याग किया गया। यहाँ तक कि उनसे सम्पर्क रखने वाले नौकर-चाकर तथा यजमान आदि को भी अलग किया गया और दिन-प्रतिदिन श्रोत्रियों की दलबन्दी महाराजा के विरुद्ध भीषण रूप धारण करती गई। जब मैथिल महासभा का २२वाँ अधिवेशन, ता० ४-५-६ मई को, दरभङ्गा में हुआ तो श्रोत्रियों ने महासभा से भी असहयोग कर लिया। क्योंकि इसके सभापति महाराजाधिराज थे। इस समाज से केवल पाँच-सात व्यक्ति ही महासभा में आए थे; शेष सभी श्रोत्रिय अनुपस्थित रहे।

आजकल स्थिति यह है कि समस्त प्रान्त के प्रत्येक गाँव में, जहाँ कहीं श्रोत्रियों तथा अन्य ब्राह्मणों का निवास है, वहाँ दलबन्दी बढ़ती जा रही है और सब जगह दोनों दलों में मनोमालिन्य भी बढ़ रहा है। महासभा के बाद दोनों दलों में समझौता कराने के लिए वयोवृद्ध वकील श्रीयुत हरनन्दनदास जी ने 'जयकर-सप्रू' का काम अपने हाथ में लिया, किन्तु यह उसी प्रकार निष्फल हुआ, जैसे कि पहली बार जयकर और सप्रू महाशय कॉङ्ग्रेस और सरकार के बीच मेल कराने में असमर्थ हुए थे। हो सकता है, आगे चल कर श्रोत्रिय समाज का कोई 'गाँधी' दोनों में वास्तविक सन्धि स्थापित करा सके, किन्तु निकट भविष्य में तो इसकी कोई सम्भावना नहीं देख पड़ती। सुनते हैं, इधर महाराजाधिराज की ओर से भी कर्मचारीगण जहाँ-तहाँ उनके असहयोगी समाज वालों पर अनेक प्रकार की ज़्यादतियाँ कर रहे हैं और लोगों को भाँति-भाँति से तङ्ग किया जा रहा है, किन्तु आजकल दमन का जो परिणाम होता है वह तो प्रत्यक्ष ही होता जा रहा है। अर्थात् उन लोगों का असहयोग और भी दृढ़ होता जा रहा है। यदि यह बात सच है तो कहना पड़ता है कि जातीय सहानुभूति पाने का यह मार्ग नहीं है। उन्हें प्रेम और प्रार्थना से ही जातीय सहानुभूति पाने की चेष्टा करनी चाहिए। उन्हें यह सोचना चाहिए कि यद्यपि मैथिलों की मनोवृत्ति में भारी परिवर्तन हुआ है, तथापि समाज के सभी व्यक्ति उनके समान उदार विचार के नहीं हुए हैं। दो-ढाई वर्ष पूर्व तक, जब तक स्वर्गवासी महाराजाधिराज जीवित थे, समुद्र-यात्रा का कोई नाम भी नहीं ले सकता था। मैथिल महासभा में प्रस्ताव के द्वारा इसका निषेध किया गया था और उनके मरते दम तक वह प्रस्ताव जीवित था। ऐसी स्थिति में यदि श्रोत्रिय समाज के अधिकांश लोग इसका विरोध करें, तो यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है। महाराजाधिराज की ओर से ऐसी भी कोई हरकत नहीं होनी चाहिए, जिससे यह समझा जावे कि वे जातिच्युत हो गए हैं और उन्हें जाति में सम्मिलित होने की आतुरता है। एक महाशय ने पटना से निकलने वाले महाराजाधिराज के अङ्गरेज़ी पत्र 'Indian Nation' में एक अपील भी निकाली थी कि यद्यपि महाराजाधिराज ने मैथिलों और मैथिली का बहुत-कुछ हित-साधन किया है, तथापि उनके जातिवालों ने विलायत जाने के कारण उनका बॉयकॉट किया है। ऐसा होना उन्होंने नितान्त अनुचित बतलाया था। महाराजाधिराज के साथ इन महाशय को जितनी हमदर्दी है, उससे कम इस लेखक को भी नहीं है, किन्तु यह बिल्कुल ग़लत है कि उनके जाति वालों ने उनका त्याग किया है। ब्राह्मणों का तीन चतुर्थांश तो उनके साथ ही है। श्रोत्रियों में भी उनके पक्षपाती बढ़ ही रहे हैं। फिर किसी को किसी

विलायत से लौटने वाले के हाथ का पानी ज़बर्दस्ती पिलाने का या ऐसा ही कोई और काम करने का क्या अधिकार है? समय आने पर परस्पर का भेदभाव स्वतः नष्ट हो जायगा और स्वयं जातीय एकता स्थापित होगी। आतुरता से कोई काम नहीं चल सकता।

इधर श्रोत्रिय समाज के विषय में एक साहब यह फ़र्मा रहे थे कि साहब, बिल्कुल सातवाँ आसमान उतर आया। श्रोत्रिय समाज में महाराजा के विरुद्ध ऐसा सङ्गठन हो जायगा, यह स्वप्न में भी सम्भव न था। जिस समाज के महाराजाधिराज सर्वेसर्वा थे, जिसमें किसी को भी उनके विरुद्ध चूँ करने की हिम्मत नहीं थी, उसमें इतनी शक्ति आएगी कि ख़ास उन्हीं का बॉयकॉट सङ्गठित रूप से किया जाय, यह अवश्य ही महात्मा गाँधी के राष्ट्रीय आन्दोलन का परिणाम है। यह स्मरण रखने योग्य बात है कि यद्यपि १९२१ के असहयोग आन्दोलन में प्राचीनता के अनन्य उपासक श्रोत्रियों को कौन पूछे, मैथिल ब्राह्मणों के किसी फ़िरक़े ने भी प्रायः कोई भाग नहीं लिया था, तथापि इस बार के सत्याग्रह युद्ध में इन्होंने यथोचित भाग लिया और उनमें ख़ासी जागृति भी उत्पन्न हुई है, किन्तु श्रोत्रियों का वर्तमान सङ्गठन किसी सदुद्देश्य से नहीं हुआ है। हो सकता है, उनमें ऐसी शक्ति सत्याग्रह आन्दोलन से ही प्राप्त हुई हो, किन्तु यह किसी सत्याग्रह के लिए नहीं है, वरन् नितान्त दुराग्रह पूर्ण है और इसका परिणाम बहुत ही बुरा है। इससे किसी धर्म की रक्षा नहीं होगी, वरन् एक जर्जर ढकोसले की पुष्टि होगी।

समुद्र-यात्रा-निषेध का आधार केवल एक पौराणिक वचन है, जिसके अनुसार इसे कलिवर्ज्य धर्म माना गया है। उसी श्लोक में असवर्ण-विवाह, विधवा-विवाह, कमण्डल-धारण, महाप्रस्थान, गोमेध यज्ञ आदि को भी कलिवर्ज्य माना गया है। इससे स्पष्ट है कि अन्यान्य युगों में ये धर्माचरण प्रचलित थे, किन्तु कलियुग के लिए अधर्म हो गए। इस अधर्म का प्रायश्चित्त-विधान भी शास्त्रों में मौजूद है, जिसके अनुसार पण्डित लोग प्रायश्चित्त की व्यवस्था भी देते हैं। किन्तु कोई वचन इस सम्बन्ध में यह है कि "शोधितस्याप्यसंग्रहः," जिसका अर्थ मैथिल निबन्धकारों ने यह लगाया है कि प्रायश्चित्त करने पर भी उस व्यक्ति की शुद्धि नहीं होती। अर्थात् इसका कोई प्रायश्चित्त है ही नहीं। किन्तु दरभङ्गा-राज के द्वार-पण्डित श्रीयुत बलदेव मिश्र जी इस अर्थ का अनर्थ समझाते हुए उस दिन कह रहे थे कि निबन्धकारों ने इसके वास्तविक अर्थ का मनन नहीं किया। "शोधितस्य—अपि—असंग्रहः," ऐसा पद-विच्छेद ही ग़लत है; क्योंकि यदि ऐसा हुआ तो फिर प्रायश्चित्त का अर्थ ही क्या रहा? इसका यथार्थ पदच्छेद है, "शोधितस्य आप्य संग्रहः।" अर्थात् प्रायश्चित्त करने वाले का जल ग्रहण होना चाहिए; यानी उसका जाति में लिया जाना उचित है। जाति-भ्रष्ट होने वाले का जब प्रायश्चित्त हो जाता है, तब उसके विषय में यही कहा जाता है कि अमुक व्यक्ति का पानी फिर चल गया—भात चलता है या नहीं, ऐसा कोई नहीं पूछता। 'आप्य संग्रह' का अर्थ है, अप् सम्बन्धी सम्पर्क यानी जल-ग्रहण, जो इस वचन में बहुत सङ्गत रीति से कथित हुआ है। जो कुछ भी हो, एक क्षण के लिए यह भी मान लिया जाय कि समुद्र-यात्रा शास्त्र से सर्वथा निषिद्ध है, तो भी क्या यह प्रश्न नहीं उठता है कि शास्त्रों का आदेश देश-काल-पात्र के विचार से परिवर्तित होता है और हुआ भी है? यही धर्म अन्य युगों के लिए धर्म था, किन्तु कारण-विशेष से कलियुग के लिए अधर्म ठहरा दिया गया और राजनीतिक स्वतन्त्रता नष्ट होने से आज मनु, याज्ञवल्क्य और गौतम आदि की स्मृतियाँ क्या ताक़ पर नहीं रख दी गई हैं तथा उनके स्थान में क्या अङ्गरेज़ी क़ानून प्रचलित नहीं है? इनको मानना हमारी मजबूरी है, और हम अपने धर्मशास्त्र के विरुद्ध अङ्गरेज़ी क़ानूनों का पालन करते हुए भी प्रायश्चित्त के भागी नहीं होते। तब कोई कारण नहीं है कि समुद्र-यात्रा आदि कलिवर्ज्य धर्म के लिए भी हम अपनी वर्तमान अवस्था के अनुकूल व्यवस्था न करें? हम देश के अन्दर लाखों कुकर्म करते हुए भी जातिच्युत नहीं होते और न सकुचाते हैं, किन्तु राजकीय आवश्यकता के लिए, ज्ञान की वृद्धि के लिए, अथवा योंही नए अनुभव-प्राप्ति के लिए यदि हम धर्म की रक्षा करते हुए विदेश जायँ तो जातिच्युत हो जायँ, यह कोई बात नहीं है। मैथिल-समाज में इसकी ख़ास आवश्यकता थी और नए महाराजाधिराज ने उसकी पूर्ति करके युवकोचित साहस का परिचय दिया है। आज से २०-२५ वर्ष पहले मैथिल कुलावतंस, जयपुर के प्रसिद्ध राजपण्डित श्रीयुत मधुसूदन झा

जी, जिनके वेदज्ञान की बराबरी संसार के कोई पण्डित नहीं कर सकते, जयपुर महाराजा के साथ विलायत गए थे। यद्यपि महाराज ने ख़ास अपने जहाज़ का प्रबन्ध किया था और हाथ मलने के लिए मिट्टी पर्यन्त भारत से ले गए थे, तथापि आज तक उक्त पण्डित जी मैथिल-समाज से बहिष्कृत हैं! कितने युवकों को विलायत जाकर पढ़ने का शौक़ था, किन्तु वे जातिच्युत होने के भय से ऐसा नहीं कर सके। हाल में श्रीनगर (पूर्निया) के श्रीयुत कुमार अभयानन्दसिंह जी और भागलपुर के श्रीयुत कृपानाथ मिश्र जी विलायत गए हैं, जिनमें से श्रीयुत मिश्र सिविलियन होकर लौट भी आए हैं—यद्यपि कुमार अभयानन्द जी अब तक नहीं लौटे हैं—किन्तु श्रीयुत कृपानाथ जी के साथ कोई वैसा व्यवहार नहीं किया गया, जो पं० मधुसूदन झा जी के साथ किया गया था। इसका एक मात्र कारण महाराजाधिराज की विलायत यात्रा ही है, अन्यथा ये लोग भी जातिच्युत हो गए होते। हम यह नहीं कहते कि जो यात्री अपनी आत्मा बेच कर लौटे—अपने आचार-विचार को समुद्र में डुबो कर हिन्दुस्तान आवे—अपने भेष, भाव और भाषा की तिलाञ्जलि दे दे—उसका भी हम स्वागत करें। वह कृतघ्न है, मृतक है—वह देश के लिए और देश उसके लिए मर गया। किन्तु जिस व्यक्ति में इस प्रकार की कोई आपत्ति नहीं पाई जावे, वरन् पाश्चात्य देशों की ख़ूबियाँ लेकर अपनापन रखता हुआ लौटे, यदि उसका उचित स्वागत और सम्मान नहीं किया जावे तो देश के लिए इससे अधिक हानि की और कोई बात नहीं हो सकती। जिस दिन महाराजाधिराज साहब विलायत से लौटे थे, उस दिन उनके भेष-भाव को देख कर किसका मन प्रसन्न नहीं हुआ था? उन्होंने अपनी यात्रा में अपने धर्म की पूरी रक्षा की और लौटने पर साधारण व्यक्ति की भाँति केवल सवा रुपया देकर म० म० पं० रञ्जे मिश्र जी से प्रायश्चित्त की व्यवस्था ली। पीछे उन्होंने जो कुछ दिया हो, किन्तु सर्वसाधारण के हितार्थ उन्होंने केवल सवा रुपया ही व्यवस्था-शुल्क दिया। ऐसी स्थिति में उनका यह कहना कि जितने भी व्यक्ति मेरे साथ गए हैं, सबकी गति एक होनी चाहिए, कोई असङ्गत या अन्याय नहीं है। हमें आशा ही नहीं, पूर्ण विश्वास भी है कि उनके विरोधियों की आँखें शीघ्र खुलेंगी और भेदभाव जाता रहेगा। अब वह समय नहीं है, जब कि इन छोटी-छोटी बातों को लेकर समाज का सत्यानाश किया जाय।

कहना नहीं होगा कि इन सङ्कीर्णताओं ने हिन्दू-समाज को ख़ूब ही सताया है। हमें यहाँ काला पहाड़ के मुसलमान होने की कथा याद आती है। वह पहले ब्राह्मण था, किन्तु किसी कारण से उसने मुसलमान का पानी पी लिया। उसने हिन्दू पण्डितों से अपने किए की प्रायश्चित्त-व्यवस्था माँगी, किन्तु सबने एक स्वर से यही उत्तर दिया कि इसका कोई प्रायश्चित्त हो ही नहीं सकता। उसने दण्ड-स्वरूप एक बड़ी रक़म भी देनी चाही तथा अपने ऊपर कितनी यातनापूर्ण शर्तों को भी क़बूल किया, किन्तु किसी प्रकार पण्डितों के विचार में परिवर्त्तन नहीं हुआ—शास्त्रों में कहीं भी उसके पाप का प्रायश्चित्त नहीं पाया गया। निराश होकर उसने पण्डितों की सभा को बर्ख़ास्त किया और मौलवी-मुल्लाओं को बुलाया। उन्होंने एक स्वर से कहा कि हमारे धर्म का मार्ग तो हर ख़ास और आम के लिए खुला है। यदि आप मुसलमान हो जावें तो हम लोगों का बर्ताव आपके साथ वैसा ही होगा, जैसा कि हम बादशाह से लेकर ग़रीब मुसलमानों के साथ रखते हैं। बस क्या था, मौलवियों ने उसे कलमा पढ़ा दिया और वह मुसलमान बन गया! उसने पहली आज्ञा मुसलमान होकर यही निकाली कि इस जगन्नाथ के मन्दिर को इस प्रकार तोड़ो कि इसकी बुनियाद भी रहने न पावे। फिर तो केवल जगन्नाथ के मन्दिर ही नहीं, उड़ीसा प्रान्त के सारे मन्दिरों को तोड़ने की आम आज्ञा निकल गई और उसका नतीजा जो कुछ हुआ वह केवल इतिहास में ही आबद्ध नहीं है, वरन् पुरी और भुवनेश्वर आदि के हज़ारों भग्नावशेष मन्दिर तथा मूर्त्तियाँ उसकी साक्षी दे रहे हैं। इसी प्रकार की और भी कितनी करुण कथाएँ हैं, जिनसे हमारी जातीय सङ्कीर्णता और धार्मिक ढकोसलों का पूर्ण परिचय मिलता है। यदि अब भी हम अचेत रहें तो कहना होगा कि हमें इस धराधाम पर स्थिर रहना क़बूल नहीं है। क्या आजकल भी हमारी अकर्मण्यता से हिन्दुओं की बहुत बड़ी संख्या अन्य धर्मों में दीक्षित नहीं हो रही है? यदि आर्य-समाज इस विषय में स्तुत्य प्रयास नहीं करता, तो हिन्दू जनता अपने सनातनधर्म के साथ न जाने

कब रसातल चली गई होती। मुसलमान और ईसाइयों के कार्यों की यदि चर्चा छोड़ भी दी जावे, तो भी हमारे सर्वनाश के बहुत से मार्ग इन दिनों खुले हुए हैं। देशी रजवाड़ों में जहाँ कहीं किसी नाबालिग़ को गद्दी मिलती है, उसकी शिक्षा के लिए अङ्गरेज़ नर्स ज़रूर रक्खी जाती है और बिल्कुल यूरोपियन ढङ्ग से उसकी शिक्षा आरम्भ होती है। यही हाल अङ्गरेज़ी भारत के कोर्ट-ऑफ़-वार्ड्स की है। अनेक राजे-महाराजे केवल शौक़ से विलायत जाते हैं और गोरी महिलाओं की कामाग्नि में अपने सर्वस्व का हवन कर देते हैं। इन सबका परिणाम आज हमारे समाज पर बहुत ही बुरा हो रहा है, फिर भी हमारी बेढङ्गी रफ़्तार नहीं बदलती है। हमें साधारण बातों के प्रायश्चित्त के लिए दो-दो सौ गाएँ और हज़ार-हज़ार रुपए चाहिए! वह भी उससे, जो अपने पापों पर पश्चात्ताप और प्रायश्चित्त दोनों करने के लिए तैयार है!!

इसका एकमात्र कारण यह है कि यद्यपि मैथिलों में भी कुछ परिवर्तन अवश्य हुआ है, तथापि वह अन्यान्य प्रान्तों की अपेक्षा बहुत कम है। मिथिला पर सिक्ख, आर्य-समाज, ब्रह्म-समाज आदि उदार धर्मों का बहुत ही कम प्रभाव पड़ा है। अब तक यहाँ बूढ़े बाबा की धाक ख़ूब जमी हुई है। पञ्जाब आदि प्रान्तों में जहाँ वृद्ध-समुदाय भी जात-पाँत के ढकोसलों को दूर भगाना चाहता है, वहाँ मिथिला की युवक-मण्डली में भी इसका अभाव है। अधिक क्या, विलायत से लौटने वाले ख़ास महाराजाधिराज साहब को भी महासभा के मञ्च से खुलेआम यह कहने का साहस नहीं हुआ कि समुद्र-यात्रा की उचित व्यवस्था हमारे शास्त्रों में है। उन्होंने महासभा के सभापति की हैसियत से कहा थाः—

"महोदयगण! सदाचार क (का) विषय परम जटिल अछि (है)। महर्षि लोकनि (लोग) एहि (इस) विषय पर तथा समय-समय पर निबन्धकार लोकनि (लोग) अपन-अपन (अपने-अपने) व्याख्यान द्वारा जनता क (का) परम उपकार कय (कर) गेल (गए) छथि (हैं)। जाहिसँ (जिससे) समाज-मर्यादा ओ धर्म-रक्षा सुचारु रूप सँ (से) हमरा (हम) लोकनिक (लोगों के) पूर्वज करैते (करते) छलाह (थे)। जकर (जिसका) सम्प्रति कलामात्रो (मात्र भी) अनुशीलन करब (करना) कठिनै (कठिन ही) नहिं (नहीं), प्रत्युत असम्भव बोध होइछ (होता है) ओ सर्वथा नकर (उसके) अनुयायी केयो (कोई) नहिं (नहीं) भै (हो) सकैत (सकते) छथि (हैं)। हुनका (उन) लोकनिक (लोगों का) निबन्ध वा व्याख्या देश-काल-पात्रानुसारे भेल छल (के अनुसार ही हुआ था)। जँ (यदि) तादृश निबन्ध वा व्याख्या ओहि (उस) समय में नहिं (नहीं) भेल (हुआ) रहेते (रहता) तँ (तो) आइ (आज) हमरा (हम) लोकनिक (लोगों का) परम पुनीत वर्णा-श्रम धर्म एहू (इस) रूप में (भी) सजीव दृष्टिगोचर होइत (होता) वा (या) नहिं (नहीं), ताहू (इसमें) में (भी) पूर्ण सन्देह (था)। यदि हमर (हमारा) मैथिल-समाज अपन (ने) देश धर्म क (की) रक्षा (के) निमित्त कलिकाल क (के) वातावरण क (के) ऊपर पूर्ण ध्यान दैत (देता) तँ (तो) सदाचार क (की) यथेष्ट रक्षा भै (हो) सकैत (सकती)। सदाचार क (का) स्वरूप सम्प्रति अनुदारता सँ (से) भरल (भरा हुआ) दृष्टिगोचर होइछ (होता है)। पुराण (पुरानी) प्रथा क (का) स्रोत सम्प्रति एहू (इस) समय क (के भी) प्रतिकूले (कूल ही) रहि (रह कर) अगम भै (हो) गेल (गया) अछि (है)। ई (यह) प्रथा जँ (यदि) आबहुँ (अब भी) आधुनिक वायु-मण्डल क (के) अनुकूल नहिं (नहीं) बना देल (दी) जाएत (जाय) तँ (तो) ने (न तो) ओ (वह) प्रथा सुरक्षित रहि (रह) सकत (सकेगी) ने (न) कोनो (किसी) प्रकार क (की) सामाजिक तथा धार्मिक उन्नति भै (हो) सकत (सकेगी), ने (न) ई (यह) समाज सङ्ग-ठित भै (होकर) संसार क (के) समक्ष उपयोगी सिद्ध भै (हो) सकत (सकेगी)। एवं ने (न) हमर (हमारा) समाज अन्यान्य समाज सँ (से) उन्नति मार्ग में स्पर्धा कय (कर) सकत (सकेगा)। तैं (इसलिए) ई (यह) कहब (कहना) अत्युक्ति नहिं (नहीं) होएत (होगा) जे (कि) विद्वत्समाज धर्म-प्रचार क (के) हेतु सर्वथा उदासीन देखना (देख) जाइछ (पड़ता है)। अतः समस्त विद्वन्मण्डल सँ (से) हमर (हमारा) पूर्ण अनुरोध अछि (है) जे

(कि) आपत्कालीन परिस्थिति कैं (को) लक्ष्य राखि (करके) जगत्कल्याण क (के) हेतु सदाचार रूप धर्म क (का) पूर्ण प्रचार करथि (करें)।

"व्यापक धर्म क (के) प्रसङ्ग कखनहुँ (कभी) सङ्कोच वा विकाश क (की) आवश्यकता ककरहु (किसी की) कदापि नहिं (नहीं) उपस्थित भेल (हुई) छैन्हि (है) वा ने (न) होयतैन्हि (होगी) कियैक (क्योंकि) तँ हमरा (हम) लोकनिक (लोगों का) परम श्रद्धेय सनातन-धर्म अत्यन्त व्यापक अछि (है) किन्तु तदन्तर्गत व्याप्य-धर्म-रक्षार्थ पूज्यपाद महर्षिगण आपत्काल में संसार क (के) कल्याण निमित्त धार्मिक नियम पालन क (के) हेतु पूर्ण उदारता क (का) परिचय देनहि (दिया) छथि (है)। संसार क (के) विचार-प्रवाह ने जाहि (जिस) रूपें (रूप में) तीव्र गति क (का) अनुसरण कै (कर) लेलक (लिया) अछि (है), ताहि सँ (उससे) प्रायः केयो (कोई) अपरिचित नहिं (नहीं) होएब (होंगे)। एहि (इस) रूप क (के) विचार-प्रवाह सँ (से) परिचित भेनहुँ (होने पर भी) जँ (यदि) हमर (हमारा) समाज एही (इसी) रूपें (प्रकार) आलस्य सँ (से) बान्हले (बँधा हुआ) रहत (रहेगा) ओ (तथा) समयानुसार उदारता क (का) परिचय नहिं (नहीं) देत (देगा) तँ (तो) एहि (इस) समाज क (के) पूर्वजक (पूर्वजों की) कठिन तपस्या सँ (से) उपार्जित समाजगत विशिष्ट स्थान स्वतः नष्ट भै (हो) जयतैक (जायगा)। एहि (इस) भावी आशङ्का कै (को) गगन-मण्डल में मड़राइत (मड़राती हुई) देखि (देख कर) अपने (आप) लोकनि (लोगों) काँ (को) सतर्क कय (कर) देब (देना) हम अपन (अपना) प्रधान कर्तव्य बुझै़त (समझते) छी (हैं) और आशा अछि (है) जे (कि) अपने (आप) लोकनि (लोग) आनन्दकन्द श्रीकृष्णचन्द्र क (के) सिद्धान्त वाक्य कैं (को) कदापि नहिं (नहीं) बिसरब (भूलेंगे) "कर्त्तुन्नेच्छसि यन्मोहात् अवश्यं तत्करिष्यसि।" एहि (इस) ठाम (जगह) इहो (यह भी) कहि (कह) देब (देना) आवश्यक बुझना (समझ) जाइछ (पड़ता है) जे (कि जो) लोकनि (लोग) सत्ययुग, त्रेता, द्वापर क (के) नियम (नियमों को) अनिवार्य रूप सँ (से) राखक (रखने का) हठ करैत (करते) छथि (हैं) तथा सांसारिक प्रवाह क (की) किञ्चितो (किञ्चित भी) गवेषणा नहिं (नहीं) करैत (करते) छथि (हैं), ओ (वे) लोकनि (लोग) अपन (अपने) समाज तथा भावी सन्तान क (का) भविष्य कण्टकाकीर्ण बना रहल (रहे) छथि (हैं)। तें (इसलिए) समस्त मैथिल-मण्डल क (का) परम कर्तव्य थिकैन्ह (है) जे (कि) देश-धर्म क (का) सुचारु रूप सँ (से) रक्षा क (का) उपाय शोचथि (सोचें)।"

उपर्युक्त अवतरण से पाठकों को विदित होगा कि यद्यपि महाराजाधिराज ने अपने भाषण के इस अंश में प्रायः सब कुछ कहा है, और अपने कार्य को सनातन-धर्म के अनुकूल बतलाते हुए व्याप्य धर्म के देश-काल-पात्रानुसार होने का समर्थन किया है, तथापि 'समुद्र-यात्रा' का कहीं भी शब्दतः उल्लेख नहीं है। यही नहीं, महासभा के अधिवेशन में भी आदि से अन्त पर्यन्त इसके पक्ष या विपक्ष में किसी को स्पष्ट रूप से कुछ कहने का अवसर नहीं दिया गया। हाँ, जैसा उन्होंने स्वयं कहा है, उसी प्रकार कितने वक्ताओं ने साधारण रीति से धर्म और सदाचार को आधुनिक वातावरण के अनुकूल बनाने का अनुरोध किया; किन्तु इससे उपस्थित जनता को यह नहीं विदित हुआ कि आख़िर ये बातें किस लिए कही जाती हैं, समुद्र-यात्रा के लिए अथवा विधवा-विवाह के लिए! जो कुछ भी हो, इससे मैथिल-मनोवृत्ति का ख़ूब पता चलता है कि उसे सनातनधर्म के प्रति कैसी श्रद्धा है। सुतरां हम श्रोत्रिय समाज को उतना दोषी नहीं समझते हैं। यह दोष सारे समाज और देश में विद्यमान है कि अभी ढकोसलों की रक्षा की जावे। सनातनधर्म वस्तुतः बहुत व्यापक है और मेरे समझ में इतना व्यापक है कि चार्वाक भी सनातनी माने जा सकते हैं, आर्य-समाज, सिक्ख आदि को कौन पूछे। इसलिए किसी भी आन्दोलन या परिवर्तन से इसकी असलियत नहीं मिटेगी, क्योंकि मनुष्यता और सनातनत्व एक-दूसरे का पर्याय है, किन्तु इसके अन्तर्गत व्याप्य धर्म तो वस्तुतः आजकल के लिए अनुपयुक्त हो गए हैं, उनका अस्तित्व अब रहना सम्भव भी नहीं है। ऐसी स्थिति में उसके प्रति हमारी श्रद्धा नहीं हो सकती। तथापि हम इतने से सन्तुष्ट हैं कि

महाराजाधिराज की विलायत-यात्रा ने बहुत सा काम किया है। पहले के किसी भाषण में अनुदार दल की ऐसी समालोचना नहीं हुई थी और लोगों के दिमाग़ में भी इतना धार्मिक उथल-पुथल उपस्थित नहीं हुआ था। अभी वस्तुतः समस्त मिथिला का मस्तिष्क आन्दोलित हो रहा है और अगले वर्ष तक ज़रूर जातीय विचारों में महान परिवर्तन उपस्थित होगा।

युवक-समुदाय ने इसका सूत्रपात कर भी दिया है। महासभा के साथ ही साथ एक युवक-सम्मेलन की भी बैठक हुई थी। इसके प्रवर्तक हैं श्रीयुत कुमार गङ्गानन्द-सिंह जी, एम० ए०। इसका प्रथम अधिवेशन १९२९ में मालदह ज़िला में उन्हीं के सभापतित्व में हुआ था। यद्यपि इस संस्था ने कोई विशेष कार्य नहीं किया है और न इसने कोई उल्लेख योग्य स्थान ही अब तक प्राप्त किया है, तथापि इस अधिवेशन में इसने इन बातों का परिचय दिया है। इस अधिवेशन के सभापति थे मिथिलेश के ही एक सम्बन्धी श्रीयुत भुवनेश्वरसिंह साहब "भुवन"। उन्होंने अपने भाषण में निर्भीकतापूर्वक कितने ही ज्वलन्त प्रश्नों पर अपना विचार प्रकट किया है। आपने समुद्र-यात्रा के विषय में स्पष्ट शब्दों में यह कहा—"एक समय छलैक (था), जखन (जब) हिन्दू-जाति एहि (इस) छोर सँ (से) ओहि (उस) छोर धरिक (तक) शासक छल (थी)। आधुनिक विजातीय बूझल (समझा) जाय (जाने) वाला देश-प्रदेश ओही (उसी) देश क (के) अधिकार में छल (था)। समुद्र पर हमरा (हम) सभक (सभों का) प्रभुत्व छल (था)। एकर (इसका) प्रमाण पाश्चात्य देश में भेट (पाए) निहार (जाने वाले) अनेक प्राचीन चिह्न (हैं)। अनेक शास्त्रीय ग्रन्थ सँ ई विषय प्रतिपादित कयल (किया) जा सकैत (सकता) अछि (है)। 'मैथिल कोकिल विद्यापति' अपन (अपने) 'लिखनावली' नामक अद्भुत ग्रन्थ में 'समुद्र-यात्रा' प्रथा क (के) उल्लेख कयने (किया) छथि (है)। हिन्दू साम्राज्य क अन्त तथा देश क (के) पराधीनतापाश में आबद्ध भेला (होने) क (के) अनन्तर असमर्थ, निस्तेज हिन्दू-जाति क्रमशः रूढ़िगत बन्धन में पड़ैत (पड़ती) गेल (गई) ओकर (उसका) आत्मविश्वास नष्ट भय (हो) गेलैक (गया)। 'समुद्र-यात्रा' क (की) प्रथा भयावह भय (हो) उठल (उठी)। ओ (वह) निन्दनीय मानल मानी) गेल (गई)। किन्तु समय बदललैक (बदला)। जनता क (की) बुद्धि क (का) विकाश होमय (होने) लागल (लगा)। आइ (आज) कोनो (कोई) एहन (ऐसी) जाति नहिं (नहीं) जे 'विदेश-यात्रा' कय (करके) अपन (अपने) ज्ञानवर्द्धन में तत्पर हयवा (होने) सँ (से) कुण्ठित हो। आइ (आज) भारत क (की) भाग्यलक्ष्मी सरस्वती काँ (को) सङ्ग लेने (लिए हुई) पाश्चात्य देश कैं (को) अपन (अपनी) निवास-भूमि बनौने (बनाए) छथि (है)। आइ (आज) मान, मर्यादा, विभव, एवं सब प्रकार क (के) विकाश पाश्चात्य देश कैं (को) जगमगौने (जगमगाए हुए) अछि (हैं)। यदि हमरा (हमें) अपन (अपने) स्वत्व क (के) अभिमान करवा (ने) क (के) योग्य, बनवा (ने) क (की) इच्छा हो त (तो) ओहि (उस) ज्ञान-ज्योति सँ (से) लाभ उठवय (उठाना) पड़त (पड़ेगा)। तकर (उसका) अनुभव मृतप्राय मैथिल-समाजो (समाज भी) प्रायः करैत (करता) आएल (आया)। पं० मधुसूदन झा जी, कुमार विजयानन्द सिंह क (के) ज्येष्ठ सोदर, पं० कृपानाथ मिश्र प्रभृति (ने) रूढ़िगत दीवार कैं (को) नाँघि (लाँघ कर) पूर्वहि (पहले ही) एहि (इस) विषय में उदाहरणीय आदर्श उपस्थित कयलन्हि (किया है)। किन्तु परम श्रद्धेय श्रीमान मिथिलापति क (के) अपूर्व युवकोचित नैतिक साहस (ने) आइ (आज) उक्त नाशकारी बन्धन कैं (को) छिन्न-भिन्न कय (कर) देलक (दिया)। जाति बहुत आगाँ बढ़ि (बढ़) गेल (गई)। श्रीमान क (के) अहि (इस) साहस क (की) उपयुक्त प्रशंसा नहिं (नहीं) भय (हो) सकैछ (सकती है)। यदि समाज-सुधार सम्बन्धी अध्यात्म (?) विषय हु (में) में (भी) श्रीमान उक्त रीति क (की) क्रियाशीलता देखावथि (दिखावें) त (तो) मिथिला में 'नवयुग' आवि (आ) जाय। ई (यह) अवश्य जे (कि) एहि (इस) सँ (से) किछु (कुछ) पुरातन परिपाटी क (के) प्रचारक (प्रचारकों) कै (को) 'दर्द' भेल (हुआ) छैन्हि (है), ओ (उन्होंने) हुल्लड़ मचौने (मचाया) छथि (है), किन्तु शीघ्र हुनक (उनका)

हृदय-दौर्बल्य दवि (दब) जाएत (जायगा)। हुब्बड़ क्षणिक थीक (है)। एकर (इसका) कोनो (कोई) महत्व नहिं (नहीं)। हम (मैं) 'युवक-समाज' (के) दिसि (ओर) सँ (से) पूज्यपाद श्रीमान मिथिलेश अपन (अपने) प्रिय मित्र सङ्ग क (के) स्थायी समिति क (के) सभापति कुमार गङ्गानन्दसिंह कें (को), जे (जिन्होंने) श्रीमान क (के) सङ्ग विदेश-यात्रा कयने (किया) छलाह (था) सकुशल स्वदेश प्रत्यागमन क (के) उपलक्ष्य में हार्दिक अभिनन्दन करैत (करता) छी (हूँ)।...... 'युवक-समाज' हनका (उन) लोकनिक (लोगों के) सङ्ग अछि (है)।"

आपका विचार और-और विषयों में भी वैसा ही उदार और मिथिला के लिए क्रान्तिकारी है। आज तक किसी को किसी भी सामाजिक संस्था के सभापति के आसन से विधवा-विवाह के समर्थन करने का साहस मिथिला में नहीं हुआ था, किन्तु इन्होंने बहुत मार्मिक शब्दों में इसका भी अनुमोदन किया है। और इसके लिए पहले शारदा-ऐक्ट के अनुसार योग्य वयस में बालक-बालिकाओं के विवाह कराने का परामर्श देते हैं। हम उसके आवश्यक अंश का हिन्दी अनुवाद देते हैं। वे लिखते हैं :—"वैवाहिक अधिकार स्त्री-पुरुष को समान होना चाहिए। यदि पुरुष एक-पत्नी-व्रत पालन नहीं करें, तो स्त्रियाँ एक-पति-भक्ता बनने के लिए हिरासत में नहीं रक्खी जा सकतीं। पुरुष-समाज का पातित्व आज उस समादरणीया, जगन्मङ्गलकारिणी स्त्री-समूह के चरित्र पर धब्बा लगाता है। वे विश्वास की पात्र नहीं समझी जाती हैं, जिनकी पवित्रता आज भी हम सभों के गौरव को अक्षुण्ण रक्खे हुए है।......वह दिन स्मरण ही है, जब शारदा-बिल के कारण से समाज में कुहराम मच गया था। ९-९ वर्ष की अबोध बालिकाएँ उत्सर्ग कर डाली गई थीं।......आइए, सङ्कल्प कीजिए, हम सब अपने अत्याचार का विसर्जन करें। यदि देश के कल्याण की इच्छा है, तो चरित्र को बलवान बनाइए। शारदा-बिल के अनुसार आचरण कीजिए। विवेक सबके साथ है, हृदय पर हाथ रख, निष्कपट होकर कहिए कि बिना उक्त व्यवस्था के हम लोगों का सामाजिक जीवन कैसे पवित्र होगा? हम लोग शत-शत अनाथा की आँखों का किस प्रकार अश्रुमोचन कर सकेंगे? अप्रत्यक्ष पाप भ्रूण-हत्या का निराकरण कैसे होगा?........."

यद्यपि विस्तार-भय से अधिक अवतरण हम नहीं दे सकते, तथापि उस छोटे से अंश का अनुवाद दिए बिना हम नहीं रह सकते, जिसके द्वारा 'भुवन' जी ने श्रोत्रिय-योग सम्बन्धी अमानुष्यता का प्रतिवाद किया है। आप लिखते हैं :—

"विवाह-व्यवस्था के विषय में एक और अत्यन्त करुण प्रसङ्ग की चर्चा हम करेंगे। श्रोत्रियगण प्रायः योग की कन्याओं से पाणिग्रहण किया करते हैं, किन्तु व्यवस्था यह है कि विवाह के ही रोज़ कन्या को अपने यहाँ ले आते हैं। इतने तक तो कुछ कहना नहीं है। किन्तु पीछे कन्या को जीवन-पर्यन्त पित्रालय लौटने से वञ्चित करना, वा कन्या की माता आदि को भी अपने यहाँ आमन्त्रित करने में कुण्ठित होना, तथा उनके पुरुष-समाज के साथ अछूत का सा व्यवहार करना आदि मनुष्यता का उपहास करना है। इस हृदयहीनता का कोई उत्तर नहीं है। तिलक, दहेज, भार (सौगात आदि भेजना) इत्यादि का जो कुछ सुधार अपेक्षित हो, कीजिए। किन्तु उपरोक्त गम्भीर परिस्थिति का सुधार शीघ्र कीजिए। मैथिल-जननी मिथिला इस नारी-जाति के कष्ट से बड़ी खिन्न हैं, बड़ी व्याकुल हैं। ओंठ में तृण रख कर वे भिक्षा माँग रही हैं। उनकी दृष्टि युवक-समाज के ऊपर लगी हुई है।"

आपने उसी प्रकार मैथिल ब्राह्मणों के त्रिभेद को भी नष्ट करने का आदेश दिया है। सुतरां आपका भाषण समयानुसार बहुत ही उदार है, फिर भी हम उसके एक अंश से सर्वथा निराश हैं। मिथिला में मैथिलत्व का गौरव ब्राह्मणों को छोड़ कर वहाँ के कर्ण कायस्थों में भी है और ब्राह्मणों के साथ उनकी सामाजिकता बहुत दूर तक अभिन्न और अभेद्य है। इसी कारण यद्यपि मैथिल-महासभा में मिथिला की और कोई जाति सम्मिलित नहीं है, तथापि कायस्थ लोग सम्मिलित हैं। महासभा का नाम भी "मैथिल-ब्राह्मण महासभा" नहीं है, बल्कि "मैथिल-महासभा" है। मेरे विचार में यह नाम बहुत ही व्यापक है तथा इस महासभा में मिथिलावासी सभी जातियों को सम्मिलित होने का अधिकार मिलना उचित है। यदि इतने दिनों

महिला कॉङ्ग्रेस कमिटी (शिमला) की प्रधाना—कुमारी सत्यवती खोसला

एक आदर्श विवाह। वर—श्री० आसकरन राँका और वधू—सौ० श्रीमती राँका। यह आदर्श विवाह, सम्पूर्ण पुरानी रूढ़ियों को ठुकरा कर, अभी हाल में ही कलकत्ते में हुआ है। वर की आयु २३ वर्ष और वधू की १६ वर्ष है। श्रीमती देवी चार महीने तक कारागार में भी रह चुकी हैं।

ठाकुर जगमोहनसिंह नेगी, बी० ए०। आप गढ़वाल के प्रमुख कार्यकर्ता हैं और देश-भक्ति के फल-स्वरूप जेल और जुर्माने की सज़ा भी पा चुके हैं। जेल से छूटने पर आपने काशी के हिन्दू-विश्वविद्यालय से 'लॉ फ़ाइनल' की परीक्षा दी है।

मथुरा के गत महिला-राजनीतिक सम्मेलन के जुलूस का दृश्य। आगे-आगे सम्मेलन की सभानेत्री, दिल्ली-निवासिनी श्रीमती सत्यवती देवी और श्रीमती मेमोदेवी जा रही हैं।

महिला राजनीतिक सम्मेलन, मथुरा की कतिपय कार्यकर्त्रियाँ। (बाँईं ओर से) श्रीमती चन्द्रावती देवी, श्री० कृष्णा देवी, श्री० सौभाग्यवती देवी और श्रीमती प्रकाशवती देवी।
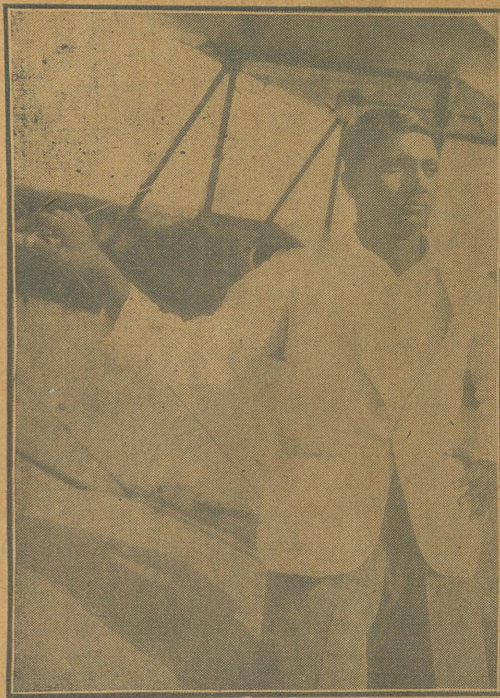
श्री० रामअनुग्रहप्रसाद मिश्र। आपकी आयु केवल १७ वर्ष की है। आप रीवाँ के रहने वाले हैं और दिल्ली के वायुयान-क्लब में हवाई जहाज़ चलाने की शिक्षा पा रहे हैं।

श्री० इन्द्रमणिलाल गुप्त। आप मुज़फ़्फ़रपुर के अत्यन्त साहसी कार्यकर्ता हैं और देश-प्रेम के पुरस्कार-स्वरूप दो बार जेल हो आए हैं।
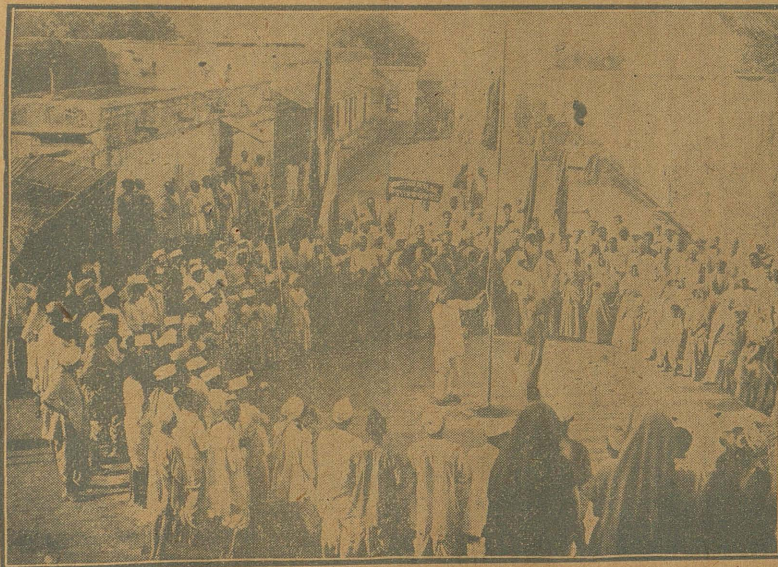
आगरे के हिन्दुस्तान सेवा-दल द्वारा राष्ट्रीय झण्डे के अभिवादन का दृश्य। दल के प्रधान श्री० मनोहरलाल जी राष्ट्रीय झण्डा फहरा रहे हैं।

'स्थायी शान्ति' का दम भरने वाले भारत के वर्तमान भाग्य-विधाता—लॉर्ड विलिङ्गडन

कुमार पशुपतिसिंह—आप बिहार प्रान्तीय युवक-कॉन्फ्रेन्स के सेक्रेटरी और मुँगेर के प्रधान कार्यकर्त्ता हैं।

२४ मार्च की रात को ११ बजे लाहौर सब-जेल में स्वर्गीय 'सरदार भगतसिंह' के वियोग में नारे लगाने के अपराध में कहा जाता है, आपको जूतों से पीटा गया और 'डण्डे-बेड़ी' की सज़ा दी गई थी।
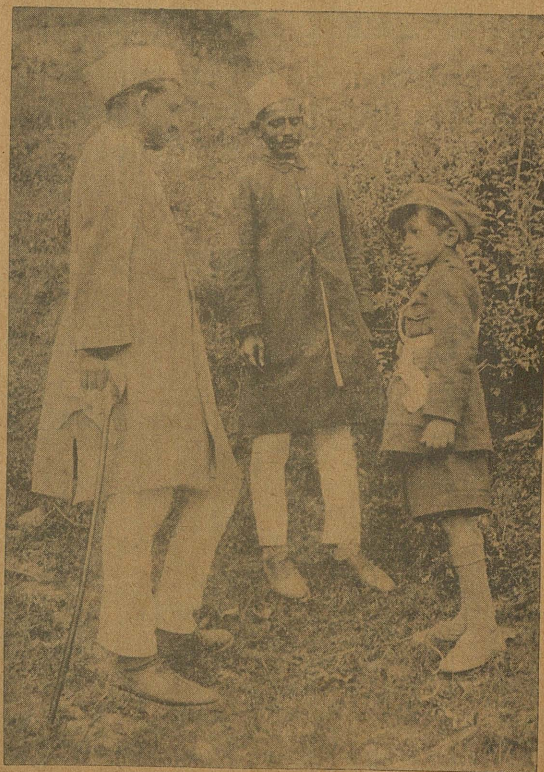
बाल-भारत-सभा के उत्साही सङ्गठन-कर्ता—१० वर्षीय बालक मास्टर रौशनलाल से बातें करते हुए शिमला-सिटी कॉङ्ग्रेस कमिटी के प्रधान डॉक्टर नन्दलाल वर्मा। बीच में दफ़ा १०८ के अनुसार १ वर्ष का दण्ड पाने वाले श्री० शिवदत्त।

कुमारी रामकँवर देवी गहलोत—आप मारवाड़ की १९ लाख स्त्रियों में पहली कन्या हैं, जिन्होंने मैट्रिक्युलेशन की परीक्षा सफलतापूर्वक पास की है।

श्री० इन्द्रमणिलाल गुप्त और कॉमरेड भगवानदास गुप्त—ये दोनों युवक मुज़फ़्फ़रपुर के उत्साही कार्यकर्ता हैं और दो-दो बार जेल भोग चुके हैं। यह चित्र दूसरी बार की गिरफ़्तारी के समय का है।

श्री० दयाशङ्कर वेनीमाधव त्रिवेदी—आप यवतमाल (मध्य-प्रदेश) ज़िले के निवासी हैं। आपकी उम्र अभी कुल २१ वर्ष की है। आपने अब तक ४१ शेर मारे हैं।

बेलजियम के प्रधान-सचिव (Minister-President)
मोशिए जेस्पर—अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में जिनका
अन्यतम स्थान है ।

पोलैण्ड के प्रधान-सचिव (Minister-President)
मोशिए ऑबर्स्ट प्रिस्टर (M. Oberst Prystor)
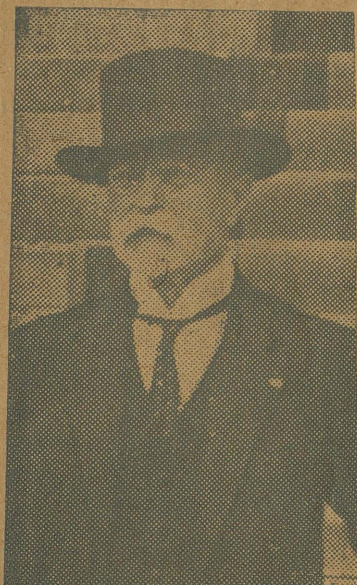
ज़ेकोस्लोवेकिया के सर्व-सर्वा—प्रेज़िडेण्ट मेसारिक
(President Masaryk)

स्वीट्ज़रलैण्ड के सर्व-सर्वा—प्रेज़िडेण्ट चार्ल्स बेनज़िगर
(President Benziger)
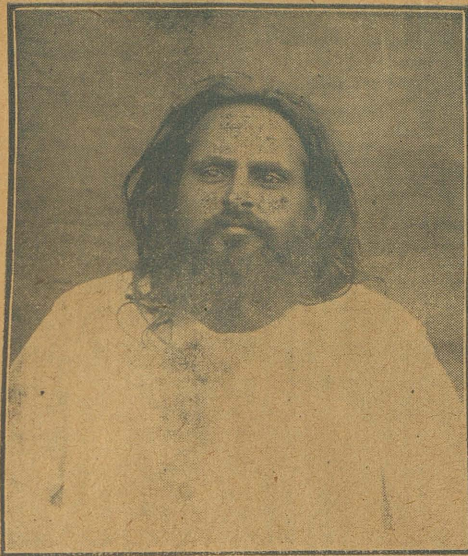
पं० राजाराम जी शुक्ल—आप छिन्दवाड़ा (मध्य-प्रदेश) के प्रमुख सत्याग्रही हैं। साल भर तक जेल में रह चुके हैं।

श्रीमती वी० सीतलवाद—आप सर चिमनलाल सीतलवाद की पुत्रवधू हैं और हाल में ही आपने बी० ए० की डिग्री प्राप्त की है।

तैमिल-नायडू के सर्व-प्रथम भारतीय पादड़ी—रेवरेण्ड आर० पीटर
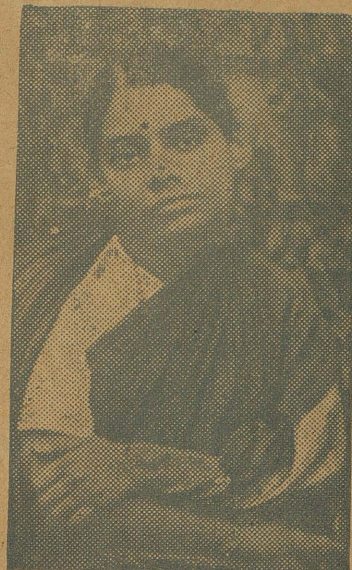
डॉक्टर (कुमारी) सुमतिबाई कुर्लेकर; एल० सी० पी० एस०—जो पूना के सैसून इस्पताल की हाउस-सर्जन तथा मैटर्निटी-रजिस्ट्रार नियुक्त हुई हैं।

भारत की देखा-देखी जापानियों ने भी सत्याग्रह रूपी अस्त्र का प्रयोग शुरू कर दिया है। इस चित्र में पाठक देखेंगे, आसाकुसा (टोकियो) के एक प्रसिद्ध फ़ैक्टरी के लगभग ३०० कार्यकर्ता फ़ैक्टरी के फाटक के समीप अनशन (Hunger Strike) किए बैठे हैं। कहा जाता है, यह भूख-हड़ताल इसलिए की गई है, कि उनके वे साथी कार्यकर्ता अपनी नौकरियों पर

पुनः बहाल कर दिए जायँ, जिन्हें फ़ैक्टरी के ख़र्च में कमी करने के उद्देश्य से निकाल दिया गया है। इन वीर सत्याग्रहियों का कहना है कि जब तक उनके साथी बहाल न किए जायँगे, तब तक वे अन्न कदापि न ग्रहण करेंगे। पाठक देखेंगे, इन कार्यकर्ताओं के एक नेता महोदय अपनी प्रतिज्ञा में अन्त तक अविचल रहने की सलाह दे रहे हैं।

तक इस सङ्कीर्णता का नाश नहीं हुआ तो अब समय आ गया है, जब कि इसका कार्यगत होना आवश्यक है। दुर्भाग्यवश मैथिल ब्राह्मण-युवकों से हम इस उदारता की आशा नहीं कर सकते। उनमें मैथिल शब्द को और अधिक व्यापक बनाने की तो कोई प्रवृत्ति ही नहीं, उल्टे उसे सङ्कुचित करने की हरेक चेष्टा मौजूद है। इस युवक-सङ्घ का नामकरण मैथिल ब्राह्मण युवक-सङ्घ न होकर केवल मैथिल युवक-सङ्घ है, तथापि सङ्घ की नियमावली में मैथिल का अर्थ केवल ब्राह्मण माना गया है, जिसका अर्थ यह हुआ कि आज से २५ वर्ष पहले जहाँ महासभा ने अपनी नियमावली में मैथिल का अर्थ कम से कम मैथिल ब्राह्मण और कर्ण कायस्थ माना था, वहाँ आज इस उदारता के ज़माने में सङ्घ ने उसको और भी सङ्कुचित कर दिया। इस सङ्कीर्णता पर इस लेखक ने सङ्घ के स्थायी समिति के सभापति श्रीमान कुमार गङ्गानन्दसिंह जी का ध्यान आकृष्ट किया था, किन्तु उन्होंने यही उत्तर दिया कि सङ्घ इस विषय पर विचार कर रहा है और वह आज तक भी विचाराधीन ही है। ऐसी स्थिति में इस उदार सभापति के भाषण में जो कुछ भी उदारता दीख पड़ती है, उस पर मानो सङ्कीर्णता की छाप लगी हुई है; क्योंकि समस्त भाषण में एक भी शब्द ऐसा नहीं है, जिससे इस सङ्कीर्णता का विरोध किया गया हो। हम तो ब्राह्मण युवकों को स्पष्ट शब्दों में चेता देना चाहते हैं कि वे इस सङ्कीर्णता से एक पग भी आगे बढ़ने में असमर्थ होंगे और जब तक वे मैथिलत्व की सीमा इस प्रकार सङ्कुचित करते जायँगे तब तक उनकी अन्यान्य उदारता केवल ढकोसला मात्र रहेगी। इस विषय में हम महासभा के विचारशील सभ्यों की प्रशंसा किए बिना नहीं रह सकते कि उन्होंने सङ्घ में कायस्थों को सम्मिलित कर लेने की भरपूर चेष्टा की, किन्तु बहुत से ब्राह्मण-युवकों ने स्वयं इसका विरोध किया। हम कायस्थों की ओर से इतना कहने को बाध्य हैं कि हमें उसमें सम्मिलित होने की कोई चिन्ता नहीं है, चिन्ता है केवल मैथिल नाम के सङ्कोच की। अतः यदि सङ्घ के कार्यकर्तागण इसमें "ब्राह्मण" नाम जोड़ दें तो हमें कोई भी आपत्ति नहीं रहेगी और अन्य लोगों की भी शङ्का मिट जायगी। महासभा के सभापति की हैसियत से श्रीमान मिथिलेश ने यह स्पष्ट शब्दों में स्वीकार किया है कि मिथिलाक्षर को अब तक जीवित रखने का गौरव कर्ण कायस्थों को ही प्राप्त है। क्या साहित्य, क्या समाज, क्या धर्म, किसी भी विषय में यहाँ के कायस्थ ब्राह्मणों से पीछे नहीं हैं, किन्तु उदारता के इस युग में उन्हें किसी समुदाय का मैथिलत्व से बहिष्कृत समझना दुर्भाग्य की बात है। क्यों अन्यान्य जातियाँ अपने को मैथिल नहीं समझतीं? क्यों प्रत्येक मिथिलावासी के दिल में मैथिली के लिए आदर नहीं है? इसीलिए कि वे महासभा में सम्मिलित नहीं हैं। किन्तु सङ्घ ने तो और भी कमाल कर दिया। क्या इसी दिल और दिमाग़ के भरोसे इसने अपनी जाति और देश के उत्थान का बीड़ा उठाया है? यदि हाँ, तो विषय बहुत ही विचारणीय है।

अस्तु, अभी हमें मिथिला की दलबन्दी की ओर ही पाठकों का ध्यान आकृष्ट करना है। उसीसे मैथिल मनोवृत्ति का ख़ासा परिचय मिल रहा है। आज श्रोत्रिय समाज में समुद्र-यात्रा के सम्बन्ध में जो गहरा मतभेद उदय हुआ है, वह मानो श्रीरामचन्द्र जी के अभिशाप को चरितार्थ कर रहा है। कहते हैं कि मैथिल जाति आदि-काल से ही कलहप्रिय और अत्यधिक आत्माभिमानी है और जब श्रीराम मिथिला में आए तो ब्राह्मणों ने उनको भी अपनी उद्दण्डता का परिचय दिया, जिस पर उन्होंने इस प्रकार इस जाति को अभिशप्त किया :—

गृहे शूरा रणे भीता परस्पर विरोधिनः,
कुलाभिमानिनो यूयं मिथिलायां भविष्यथ।

विचार कर देखने से ये दुर्गुण आज भी उसी मात्रा में विद्यमान हैं। भेद यही है कि प्राचीन काल में जहाँ उनके अनेकानेक गुणों में इनका कोई अस्तित्व नहीं था, वहाँ आज और भी बहुत से दुर्गुण घुस गए हैं। एक छोटी बात के लिए मैथिलों के समान महान जाति में इस प्रकार की दलबन्दी शोभा नहीं देती। आज छूत का भूत दिन-दूना रात चौगुना हो रहा है। एक दल वालों ने दूसरे दल वालों के यहाँ आना-जाना, खाना-पीना तो छोड़ ही दिया है, उसकी सूरत से भी उन्हें नफ़रत हो रही है। एक महाशय किसी कार्यवश अपने वकील के यहाँ गए थे। वकील साहब ने पार्टी में खाया था, इसलिए जब उन्हें प्यास लगी तो उन्होंने प्राइवेट में नौकर को समझा कर कहा कि जिस कुएँ का जल वकील

साहब पीते हैं, उसका जल मत लाना, अमुक कुएँ से लाना। फिर वहाँ से हट कर एक पेड़ के नीचे उन्होंने जल ग्रहण किया। एक महाशय को ऐसे सम्बन्धी से ऋण लेने की ज़रूरत हुई, जो महाराजा के सम्पर्की हैं। आवश्यकता तो उनको अपने अछूत सम्बन्धी के पास खींच ले गई, किन्तु उन्हें बराबर यह भय बना रहा कि यदि वे पान-सुपाड़ी देंगे, तो क्या कह कर उसे अस्वीकार करना होगा। एक बात और भी बड़े मज़े की चली है। वह यह है कि यद्यपि समुद्र-यात्रा का कोई प्रायश्चित्त नहीं है, तथापि उसके सम्पर्कियों का प्रायश्चित्त केवल पाँच पैसे में ही हो जाता है! दोनों दलों का मिश्रण इतना अधिक होता है कि इससे महँगा यह प्रायश्चित्त सम्भव भी नहीं है। भला इन ढकोसलों का भी कोई ठिकाना है? तथापि प्रतिदिन श्रोत्रियों में इस बात के लिए सभा होती है कि जिस-तिस प्रकार से जाति-धर्म की रक्षा अवश्य करनी चाहिए। विदित नहीं, आजकल जाति-धर्म किस चीज़ में है? आज यदि यह सङ्गठन किसी जातीय कार्य के लिए होता, साहित्य और शिक्षा-वृद्धि के लिए होता तो मैथिल जाति अवश्य तर गई होती, किन्तु घर के अन्दर शूरता और बाहर कायरता का परिचय कैसे मिलता? परस्पर-विरोध कैसे चरितार्थ होता? यही तो ठहरी इस जाति की शोभा!

जो कुछ भी हो, यह जातीय मनोवृत्ति है, वैयक्तिक दोष नहीं है कि उसका शीघ्र और सहज ही सुधार किया जाय। जिस प्रकार विरोधियों का सङ्गठन दृढ़ हो रहा है, शोक है कि मैथिल महासभा की ओर से इस धारणा को हटाने का कुछ भी प्रयास नहीं होता है। यदि अनेकानेक प्लेटफ़ॉर्मों से महासभा के उपदेशक तथा कार्यकर्तागण इस विषय की शास्त्रीयता और सामयिकता के ऊपर जनता का ध्यान आकृष्ट करें, तो शीघ्र ही इस विरोध का शमन होगा। विरोधियों का बल केवल दुराग्रह है, क्योंकि वे शास्त्रार्थ भी नहीं करते। उन्हें जहाँ-कहीं चैलेञ्ज दिया जाता है, वे नहीं आते और न अपनी सभा में इस ओर के किसी व्यक्ति को बोलने देते हैं। इस प्रकार की कच्ची दीवार अधिक दिन तक नहीं टिक सकती। समय स्वयं उनके विचारों को धक्का देगा और वे हेमन्त के सूखे पत्तों की भाँति काल पाकर गिर पड़ेंगे। तब तक देश में उथल-पुथल मच रही है। मुर्दा देश के लिए आख़िर यह हलचल भी अच्छी ही है। परमात्मा इसका सुन्दर परिणाम शीघ्र दिखलावे।

जीवन-नौका

[श्री० देवीप्रसाद जी गुप्त, "कुसुमाकर" बी० ए०, एल्-एल्० बी०]

लोक-लाज कहती है मन में, मन की बात छिपाऊँ।
प्रणय-भावनाएँ कहती हैं, उसको प्रेम जताऊँ॥
मूक वेदनाएँ कहती हैं, घुल-घुल कर मर जाऊँ।
कहता है अनुराग अङ्ग में, अपने भस्म रमाऊँ॥

बुद्धि मुझे यह समझाती है, मैं मन को समझाऊँ।
किसी दूसरी ओर खींच कर, उसको मैं ले जाऊँ॥
आशा देकर मुझे सान्त्वना, कहती है न भुलाऊँ।
सबको तज अपने को उसका, सच्चा भक्त बनाऊँ॥

ज्ञान सिखावन देता है यह, व्यर्थ न कष्ट उठाऊँ।
समझूँ मैं संसार शून्यवत्, सुख से जन्म बिताऊँ॥
किन्तु मोह मुझसे कहता है, और न समय गमाऊँ।
अपनेपन को छोड़ एक हो, मैं उसका हो जाऊँ॥
किस चक्कर में पड़ा हुआ हूँ, प्रभु! किस ओर चलाऊँ,
जीवन की नौका बतला दो, कैसे बाहर लाऊँ?
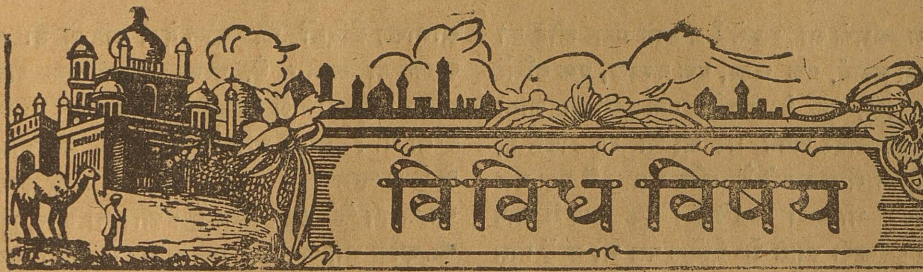
महिलाओं का जेल-जीवन

[इस लेख की लेखिका श्रीमती हंसा मेहता ने इस लेख में बम्बई के ऑर्थर रोड जेल के अपने कुछ अनुभव बतलाए हैं। इसमें आपने ए, बी तथा सी, तीनों श्रेणियों की महिला-क़ैदियों की दशा का वर्णन किया है। आपने बतलाया है कि किस अमानुषिक रीति से केवल ९ महिलाओं के लिए नियत स्थान में छत्तीस-छत्तीस महिलाएँ ठूँस दी गई थीं। 'स्त्री-जेल जाँच-कमिटी' की एक ब्रिटिश महिला सदस्या से श्रीमती हंसा मेहता की जो बातचीत हुई थी, उससे नौकरशाही की हृदयहीनता और अविवेक का स्पष्ट पता चलता है।

—स० 'चाँद']

संसार के इतिहास में हमारे गत वर्ष के स्वाधीनता-संग्राम का एक विशिष्ट स्थान रहेगा। उसकी अहिंसात्मक युद्ध-प्रणाली संसार की एक अभूतपूर्व घटना कही जाएगी। हमारा स्वाधीनता-संग्राम जीव के बदले जीव लेने का संग्राम न था। हमारे सैनिकों को आदेश मिला था कि वे आत्म-रक्षा के लिए बिना उँगली तक उठाए अपनी जानें दे दें। इस प्रकार मरने वाले देश के महान योद्धा हैं। इस शस्त्रास्त्र-विहीन युद्ध की एक विशेषता यह भी थी कि वह भारतीय नारियाँ, जोकि इससे पूर्व अत्यन्त भीरु, अज्ञ और पददलित थीं, सहसा उठ खड़ी हुईं और आगे बढ़ कर पुरुषों के साथ कन्धे से कन्धा भिड़ा कर संग्राम में मोर्चा लिया।

राष्ट्र की पुकार पर दौड़ पड़ने वाली इन भारतीय महिलाओं पर मुग्ध होकर एक यूरोपियन महिला ने कहा था कि 'भारत की महिलाएँ तो एक छलाँग में ही कई शताब्दियाँ पार कर गई हैं।' इस यूरोपियन महिला की प्रशंसा के साथ मैं भी अपनी उन सैकड़ों बहिनों का अभिनन्दन करती हूँ, जिन्होंने शताब्दियों के पुराने परदे को अलग फेंक कर जातीय संग्राम में भाग लिया, जिन्होंने अपने कार्यों में ग्रीष्म की प्रचण्ड तपन और वर्षा का विचार नहीं किया और जिन्होंने देश की स्वाधीनता के लिए बन्दी-जीवन स्वीकार किया था।

सारे भारत से लगभग एक हज़ार स्त्रियाँ इस आन्दोलन में जेल भेजी गईं। भारत के विभिन्न जेलों में रह कर प्राप्त हुए इनके अनुभवों का वर्णन अत्यन्त रोचक हो सकता है। प्रत्येक जेल की अपनी निराली ही कहानी है। परन्तु इस लेख में मैंने बम्बई के ऑर्थर रोड जेल में रह कर जो अनुभव प्राप्त किए हैं, उन्हीं का वर्णन किया है।

जेलों में श्रेणी-भेद

जेलों की श्रेणी-भेद प्रथा पर बहुत-कुछ कहा जा चुका है। इसलिए इस विषय पर कुछ विस्तारपूर्वक कहने की आवश्यकता नहीं है। मेरे विचार से सम्पूर्ण राजनीतिक बन्दी स्वयं ही एक विशिष्ट श्रेणी के हैं। उनमें ए, बी और सी के भेद की आवश्यकता नहीं है। उनके साथ साधारण क़ैदियों से भिन्न बर्ताव होना चाहिए। साधारण क़ैदी बी और सी श्रेणी में विभाजित किए जाते हैं। यूरोपियन तथा एङ्गलो-इण्डियन साधारण क़ैदियों को सदैव बी श्रेणी और हिन्दुस्तानी साधारण क़ैदियों को सदैव सी श्रेणी दी जाती है। इस प्रकार बी तथा सी श्रेणी में रक्खे जाने वाले राजनीतिक क़ैदियों की स्थिति साधारण क़ैदियों के बराबर ही है। केवल ए क्लास के क़ैदी साधारण क़ैदियों

से कुछ भिन्न समझे जा सकते हैं। उन्हें एक लोहे की चारपाई, एक चटाई, एक चद्दर, एक कम्बल, एक बाँसों से बँधी मसहरी, एक टेबुल और एक कुर्सी दी जाती है। वे चाहें तो चादर अपने घर की भी रख सकते हैं, बाहर से भोजन मँगा सकते हैं और सप्ताह में एक बार धोबी से कपड़े भी धुला सकते हैं। एक बार में आठ पुस्तकें और सरकारी नीति के दैनिक पत्र भी उन्हें प्राप्त हो सकते हैं। ऐसे दैनिक पत्रों के अतिरिक्त मुझे 'पञ्च' 'सचित्र लण्डन न्यूज़' और 'इण्डियन सोशल-रिफ़ॉर्मर' मिला करते थे। लेकिन मुझे अब तक नहीं मालूम हो सका कि लन्दन का साप्ताहिक 'टाइम्स' किस कारण से रोक दिया गया था। ए क्लास के क़ैदी महीने में दो बार अपने सम्बन्धियों से मिल सकते हैं और दो बार पत्र भेज और पा सकते हैं।

'बी' क्लास

बी क्लास के क़ैदियों को एक चटाई, एक चद्दर और एक कम्बल मिलता है। उन्हें एक बार में आठ किताबें और एक साप्ताहिक पत्र मिल सकता है। वे अपने सम्बन्धियों से महीने में एक बार मिल सकते और उसी प्रकार महीने में एक बार पत्र लिख और पा सकते हैं। उनका भोजन ए क्लास से भिन्न रहता है, और उन्हें बाहर से भोजन मँगाने का अधिकार भी नहीं रहता। आॅर्थर रोड जेल में स्त्री-क़ैदियों को खाने की चीज़ें सुबह ही पहुँचा दी जाती थीं। दो डबल रोटियाँ, थोड़ा सा मक्खन, शक्कर, दूध और चाय प्रातः ८ बजे, तथा आटा, दाल और तरकारी ग्यारह बजे, तथा चार बजे दोपहर बाद फिर चाय और दूध मिलता था। बी क्लास के क़ैदियों का भी यही दैनिक भोजन था। कभी-कभी एक ही तरह की तरकारी कई-कई दिन तक बराबर चलती रहती थी। शिकायत करने पर कहीं बदली जाती थी। सवेरे जो चीज़ें आ जाती थीं, वे वास्तव में उसी समय खाने के लायक़ न होती थीं, इसलिए उन्हें रक्खे रहना पड़ता था, जिसके लिए कोई विशेष प्रबन्ध या स्थान न था, इससे खाने के समय वे बिल्कुल ठण्ढी हो जाया करती थीं। रोटी काटने के लिए चाक़ू नहीं मिलता था। अगर भोजन-शाला से वह कटवा भी ली जाती थीं, तो उन पर मक्खन लगाने के लिए कोई चाक़ू न था। साधारण क़ैदियों को चाक़ू देना अवश्य ही आशङ्का-जनक हो सकता है, परन्तु अहिंसात्मक राजनीतिक बन्दियों के हाथ में चाक़ू देने में सरकार न जानें क्यों डरती थी? परन्तु बात तो यह है कि जब चाय चलाने के लिए चम्मच भी न मिलता था तो कोई चाक़ू मिलने की आशा कैसे कर सकता है। और तो और, मुँह देखने का दर्पण भी, भयानक वस्तु समझ कर नहीं दिया जाता था। कठिन कारावास वाली स्त्री-क़ैदी को जेल के ही वस्त्र पहनने पड़ते थे। इन वस्त्रों में एक साड़ी और एक 'बोडिस्' थी। काम उन्हें रस्सी बटने का मिलता था।

सब से कठिन स्थिति

सी क्लास की स्त्री क़ैदियों की हालत सब से बुरी थी। उन्हें एक छोटी सी चटाई और एक कम्बल मिलता था। उन्हें पढ़ने को न कोई किताब मिलती थी, न कोई समाचार-पत्र। वे अपने सम्बन्धियों से तीन मास में एक बार मिल सकती थीं और वह भी केवल दस मिनिट के लिए। दूसरी श्रेणी वालियों को बीस मिनिट का समय दिया जाता था। वे स्वयं पत्र नहीं लिख सकती थीं। जो कुछ वे अपने सम्बन्धियों को लिखाना चाहतीं, उसे वे बोल देतीं, जिसे एक क्लर्क नोट कर लेता था। प्रतिदिन सुबह साढ़े छः बजे खाने को उन्हें नमकीन लपसी मिलती थी, फिर साढ़े दस बजे बाजरे और ज्वार की रोटियाँ तथा दाल मिलती थी। दोपहर के बाद चार बजे फिर रोटी और थोड़ी सी गरम तरकारी मिलती थी। उनकी मुख्य मुसीबत यह थी कि उन्हें साधारण क़ैदियों के साथ ही रहना पड़ता था। साधारण क़ैदी बहुत ही निम्न श्रेणी के लोग हुआ करते थे। इनमें प्रायः वेश्याएँ और सड़कों पर भीख माँगने वाली हुआ करती थीं। ये सप्ताह में केवल एक बार रविवार को स्नान करती थीं। उसका भी यदि नियम न हो तो चाहे वे कभी भी स्नान न करें। अनुमान किया जा सकता है कि वे कितनी गन्दी होंगी। इन्हीं औरतों के साथ हमारी भले घर की राजनीतिक महिलाओं को उठना-बैठना पड़ता था। जेल-सुपरिण्टेण्डेण्ट ने एक दिन मेरे सामने चिल्ला कर अपने अधीन कर्मचारी को आज्ञा दी थी कि साधारण तथा राजनीतिक क़ैदियों के साथ किञ्चित भी भेद न रक्खा जाय। अस्तु, हमारे

ख़्याल में अगर औरतों में देश के लिए किसी ने कष्ट सहन किया है, तो वह इन सी क्लास की औरतों ने। इन वीर-महिलाओं का त्याग प्रशंसनीय है।

जेल के अन्दर जेल

ऑर्थर रोड जेल के अन्दर स्त्रियों का जेल, जेल के अन्दर जेल है। उनका वार्ड चारों ओर ऊँची-ऊँची दीवारों से घिरा हुआ है। इस वार्ड की चौहद्दी छोटी है। इसमें दो बैरकें बनी हुई हैं। एक बैरक में तीन कोठरियाँ हैं और हर एक कोठरी के साथ एक पाख़ाना तथा स्नानागार है। सी क्लास की स्त्री क़ैदियों के नहाने-धोने के लिए केवल एक सायबान है। दूसरी बैरक में दो कोठरियाँ हैं, जो दोनों कालकोठरियाँ हैं। आँगन में इतनी जगह न थी कि सब क़ैदी स्वच्छन्दता-पूर्वक घूम-फिर सकें। बी और सी क्लास के क़ैदियों के लिए और भी अधिक प्रतिबन्ध थे। कारण यह था कि पुरुषों वाले बी क्लास वार्ड का आँगन हमारे वार्ड से लगा हुआ था। और उनके बैरक दोमञ्ज़िले थे, इनमें ऊपर के मञ्ज़िल में यूरोपियन क़ैदी थे, जिनमें अधिकांश निम्न श्रेणी के अपराधी थे। वे ऊपर से हमारे वार्ड के आँगन को अच्छी तरह देख सकते थे। हम लोगों की ओर आँगन में टहलते समय, इन भयानक आदमियों का बराबर घूरते रहना बहुत ही भद्दा मालूम होता था। इसलिए बी तथा सी क्लास के क़ैदियों का उस ओर घूमना-फिरना बिल्कुल मना था। जेल में थोड़ा सा टहल लेने के अतिरिक्त और दूसरा मन-बहलाव का उपाय ही क्या हो सकता है? हम लोगों की संख्या अधिक बढ़ जाने पर तो इस छोटी सी जगह में, घूमने-फिरने की कौन कहे, आराम से फैल कर उठना-बैठना भी मुश्किल हो गया। तीन मास तक यही स्थान मेरा निवास-स्थान रहा। अठारह फ़ीट लम्बी और अठारह फ़ीट चौड़ी कोठरी में मैं, श्रीमती पेरिन कैप्टेन और श्रीमती लीलावती मुन्शी, तीन औरतें रहती थीं। पहले हम लोग सात बजे सन्ध्या समय अपनी कोठरी में बन्द कर दी जाती थीं, परन्तु रविवार और छुट्टियों के दिन हम लोग तीन-चार बजे दोपहर बाद बन्द कर दी जाती थीं। हम लोगों की कोठरी प्रातः ६ बजे खुलती थी। जैसे-जैसे दिन छोटे और रात बड़ी होती गई, तैसे-तैसे हम लोगों के बन्द करने और खोले जाने के समयों में अन्तर होता गया।

विविध प्रकार के अनुभव

अपने जेल-जीवन में मुझे विविध प्रकार के अनुभव हुए हैं। मैं इस छोटे से लेख में उन सबका वर्णन नहीं करना चाहती। यहाँ पर मैं एक या दो घटनाओं का ही उल्लेख करूँगी। उतने से ही पाठक समझ सकेंगे कि मेरा जेल-जीवन कैसा था।

पहली घटना १ सितम्बर की है। यह वही तारीख़ है, जो प्रान्तीय व्यवस्थापक सभा के चुनाव के लिए नियत की गई थी। कॉङ्ग्रेस ने इस चुनाव के विरुद्ध बहिष्कार की घोषणा निकाल कर एक ज़बर्दस्त पिकेटिङ्ग करने का निश्चय किया था। इस बहिष्कार में आकाश के देवता तक कॉङ्ग्रेस का साथ दे रहे थे। वर्षा इतनी भीषण हुई कि सरकार को अपनी नियत तिथि बदलनी पड़ी। ऐसी वर्षा कभी न हुई थी। ऐसा प्रतीत होता था, मानो आकाश ही फट पड़ा है। हमारी कोठरी हवा के थपेड़ों और हवा के झकोरों का खुले रूप से आवाहन कर रही थी। दरवाज़ों से रहित लोहे की सलाख़दार खिड़कियों से पानी बराबर अन्दर बहा आ रहा था। यहाँ तक कि छत भी टपकने लगी थी, जिससे कोठरी में जगह-जगह गड्ढे भर गए थे। सन्ध्या आई, परन्तु तूफ़ान उसी प्रचण्ड रूप से चलता रहा। आँगन में जल अलग एकत्र हो रहा था। यह एक भयानक रात थी। हम लोगों ने इस सम्बन्ध में अनेक भयानक घटनाओं की बातें कीं। हम लोगों को सन् १९२३ के जापानी भूकम्प की याद आई। मैंने कुछ अपनी बीती जीवन-घटनाओं का भी वर्णन किया। उस समय मैंने यह नहीं विचारा कि ऑर्थर रोड जेल में भी एक घटना तैयार हो रही है। किसी प्रकार इस तूफ़ान और जल के लगातार टप-टप में भी हम लोगों ने अपने सोने का प्रबन्ध किया। आधी रात के समय एक पपैया वृक्ष के भयानक ध्वनि के साथ भरे जल में गिरने का शब्द हुआ। सुबह हुई, परन्तु आकाश अभी भी मेघाच्छन्न था और वर्षा लगातार जारी थी। हमारी बैरक प्रलय-जल के बीच एक टापू की तरह खड़ी थी। जल बढ़ता ही चला जा रहा था। अगर यह जल एक इञ्च भी और अधिक बढ़ जाता, तो हमारी कोठरी बह

जाती। पाख़ाने में अलग पानी भरा हुआ था और नालियाँ बेकार सिद्ध हो रही थीं। वरन् वे पानी को बाहर बहा ले जाने के बजाय अन्दर ही लौटा रही थीं। इस प्रकार पानी हम लोगों को दोनों ओर से घेरता हुआ बराबर बढ़ा चला आ रहा था। साधारणतया कोठरी के दरवाज़ा खुलने का समय प्रातः ६ बजे हुआ करता था, परन्तु १० सितम्बर को सवेरे ६ बजे के बाद घण्टे पर घण्टे भी बीतते चले गए, परन्तु किसी खोलने वाले के दर्शन नहीं हुए। हम लोगों ने सी क्लास के क़ैदियों से चिल्ला कर उनकी हालत पूछी। सौभाग्य से उनकी कोठरी भीगने से बच गई थी। अगर कहीं उनकी छत भी टपकती होती और खिड़कियों से अन्दर पानी आता होता तो उन बेचारों को बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ता। क्योंकि उनके पास तो बैठने को चारपाई या कुर्सी भी न थी। फिर भी वे बड़ी ही विपत्ति में थीं। अन्त में कोठरी खुलने की राह देखते-देखते थक कर हम लोगों ने कुछ चाय बनाई और बिना दूध ही के पी ली।

मैं चाय पीकर फिर से सोने का इरादा कर ही रही थी, इसी बीच पानी में कुछ छपछपाहट का शब्द सुन पड़ा। मैंने देखा, दो आदमी ताला खोलने के लिए आए हैं। इस वक़्त ठीक १० बजे थे। वे अपने साथ हम लोगों के लिए दूध, चाय, चीनी, रोटी और मक्खन भी लाए थे। कुछ स्त्रियों ने आकर अन्दर का भरा हुआ पानी बाहर किया और फिर हमारी कोठरी को सुखाने का प्रयत्न करने लगीं। हम लोगों का भोजन जो साधारणतया ११ बजे आ जाया करता था, १ बज जाने पर भी नहीं पहुँचा। हम लोगों को भूख भी नहीं थी। मैंने और कैप्टेन पेरिन ने उपवास करने का निश्चय कर लिया था, क्योंकि बिना स्नान किए, उस हालत में भोजन करने का विचार तक न उत्पन्न होता था। पाँच बजे शाम को जाकर कहीं जेलर साहब के दर्शन हुए। अधिकारियों को इस बात की क्या परवाह कि हम लोग बिल में बन्द चूहों की तरह डूब रही हैं।

क़ैदियों की भीड़

दूसरी घटना जो घटी, वह दीपावली के बाद की थी, जबकि सरकार ने तमाम कॉङ्ग्रेस तथा देशसेविका-सङ्घ आदि संस्थाओं को ग़ैर-क़ानूनी घोषित कर दिया था। एक दिन प्रातःकाल सुपरिण्टेण्डेण्ट महाशय आए और अपने अधीनस्थ मैट्रन से कोठरियों में अधिक से अधिक क़ैदियों के रह सकने का प्रबन्ध करने के लिए कह गए। हम लोग अत्यन्त उत्सुकतापूर्वक युद्ध की अपनी सहयोगिनियों की प्रतीक्षा करने लगीं। तरह-तरह के अनुमान लगाए जाने लगे। सम्भव है, सरकार ने सब देश-सेविकाओं को पकड़ कर जेल में बन्द कर देने का निश्चय कर लिया हो। परन्तु फिर विचार हुआ कि क्या इतने कम स्थान में वे सब बन्द की जा सकती हैं? सब देश-सेविकाओं की बात दूर रही, अगर सरकार केवल सेविका-सङ्घ के नेताओं को भी पकड़ कर इतनी जगह में रखना चाहे तो न रख सकेगी। उस समय हम लोगों के वार्ड में दो ए क्लास, पाँच बी क्लास और सात अराजनैतिक सी क्लास की क़ैदी स्त्रियाँ मौजूद थीं। नियम के अनुसार एक बैरक में २६ सी क्लास के क़ैदी रक्खे जा सकते हैं। दो काल-कोठरियों में रक्खे जा सकते हैं।

ए क्लास के तीन और बी क्लास के ६ क़ैदी एक कोठरी में ठहराए जा सकते हैं। ए, बी और सी, तीनों श्रेणियों को मिला कर कुल १६ क़ैदी रक्खे जा सकते हैं। उस दिन शाम को पन्द्रह स्त्री-क़ैदियों का जत्था आया। उनमें से १० को ए तथा ५ को सी क्लास दिया गया। दो दिन में कुछ और आईं। परिणाम यह हुआ कि हमारी कोठरी में तीन ए क्लास तथा पाँच बी क्लास के क़ैदी मिला कर आठ क़ैदी स्त्रियाँ हो गईं। बीच की कोठरी में १० बी क्लास के क़ैदी और सी क्लास की कोठरी में १२ क़ैदी स्त्रियाँ हो गईं।

इस पर भी प्रत्येक काल-कोठरी में तीन-तीन औरतें और ठूँस दी गईं। इस हिसाब से जहाँ नियम से उन्नीस क़ैदी स्त्रियाँ रह सकती थीं, वहाँ अब छत्तीस भर दी गई थीं। यह दशा दस दिनों तक रही और ईश्वर जाने कब तक बनी ही रहती, अगर हम लोगों ने उसका विरोध न किया होता। अधिकारीगण अगर हम लोगों की दशा पर कुछ विचार करते तो कम से कम कोठरियों के अन्दर सोने के बजाय दालानों में सोने का प्रबन्ध अवश्य करवा सकते थे। रविवार के दिन अन्य दिनों की अपेक्षा शीघ्र ही कोठरियों में बन्द कर देने की जो प्रथा

थी, उसे हटवा सकते थे। स्त्रियों की जेल का निरीक्षण करने के लिए आई हुई जाँच-कमिटी की एक स्त्री-सदस्या से मैंने जेल-अधिकारियों की इस पाशविक व्यवहार की शिकायत की थी। वह स्त्री-सदस्या ब्रिटिश जाति की तथा एक सरकारी अफ़सर की स्त्री थी। स्वभावतः उसने सरकार को सम्पूर्ण दोषों से रहित प्रमाणित करने का प्रयत्न किया। और उसके साथ ही हम लोगों को जेल आने की बुद्धि पर एक उपदेश भी दे डाला। मेरे विचार से सरकारी अफ़सरों की स्त्रियों का ऐसी कमिटियों में रक्खा जाना उचित नहीं है। कम से कम ऐसी कमिटियों में रहते हुए इन्हें क़ैदियों के साथ ऐसी बातों के करने का कोई अधिकार न होना चाहिए। उन्हें सरकारी कार्यों में कोई दोष कैसे दीख सकता है? मैंने इस स्त्री का ध्यान कोठरियों में नियम-विरुद्ध संख्या में क़ैदियों के भरे जाने की ओर आकर्षित किया। उसने कहा, सरकार क्या करे, अगर इतनी अधिक संख्या में स्त्रियाँ जेल जाना पसन्द करें। मैंने कहा, अगर सरकार उन्हें गिरफ़्तार कर जेलों में भेजना पसन्द करती है, तो उसका कर्तव्य है कि वह जेलों में उनके रहने की जगह के लिए भी प्रबन्ध करे। मैंने कहा, अगर जेलों में क़ैदियों को एक साथ ठूँस देने की नीति को सरकार संख्या की अधिकता के कारण उचित ठहरा सकती है, तो 'कलकत्ते की कालकोठरी' वाली घटना, अगर ऐसी घटना वास्तव में हुई हो तो, उचित ही ठहराई जा सकती है। उसने उत्तर में कहा, अगर जेलों का व्यवहार इतना नापसन्द है, तो भले घर की महिलाएँ यहाँ आती ही क्यों हैं? मैंने उत्तर दिया, यह बतलाने की किसी को आवश्यकता नहीं है। इस पर विचार करना न करना हमारा काम है। अपने देश के लिए हम लोग तो हर तरह की कठिनाई झेलने को तैयार हैं, परन्तु उस सरकार के लिए, जो अपने को सभ्य सरकार कहती है, हमारे साथ पशुओं से गया-बीता व्यवहार करना लज्जा की बात है। भले घर की स्त्रियों का जेल जाना कोई नई बात नहीं है। अनेक भले घर की ब्रिटिश महिलाएँ अपने वोटाधिकार के युद्ध में जेल जा चुकी हैं। उसने उत्तर में कहा, हाँ जा चुकी हैं, परन्तु क्या आपको मालूम है कि कितना बुरा व्यवहार उनके साथ किया गया था? मैंने कहा, परन्तु महिलाओं के साथ किया गया वह बुरा व्यवहार इङ्गलैण्ड के लिए कोई गौरव की बात नहीं है। उसने कहा, ऐसे व्यवहारों के परिणाम-स्वरूप अधिक स्त्रियाँ जेल जाना पसन्द न करेंगी। वास्तव में ब्रिटिश जाति कितनी हृदयहीन है, जो समझती है कि जेल-यातनाओं से डर कर क्रान्ति की जाग्रत भावना दब जायगी।

—हंसा मेहता

* * *

क्या शिखा-सूत्र वैदिक है?

"प्राचीन परम्पराओं तथा कुत्सित रूढ़ियों में फँसे हुए समाज निरन्तर पतन तथा अवनति की ही ओर जाते हैं। ऐसे समाज के धनी-मानी जन उन रूढ़ियों के पालन में बड़ी कट्टरता, तत्परता तथा श्रद्धा दिखाते हैं; उन्हें नवीन उन्नतिशील विचारों से बड़ी घृणा होती है। चाहे जो कुछ हो, वे नए विचारों का विरोध तथा उनके मानने वालों का निर्दयतापूर्ण दमन करते हैं। ऐसे अन्ध परम्परानुगामी लोगों का मूर्ख-समाज, अपने महान पुरुष तथा आदर्शों को नहीं पहिचानता, क्योंकि उनकी आँखों पर धर्मान्धता की पट्टी बँधी रहती है।" —सुक़रात

"धर्म" शब्द की आड़ में उच्च स्वर से दुहाई दी जाकर अनेक कुरीतियों तथा अनाचारयुक्त अन्धविश्वासों का चारों ओर घोर प्रचार हो रहा है। ऐसी कोरी धर्मान्धता की धौंस को न सहने वाले तार्किक जन जिन कुरीतियों के विरुद्ध आवाज़ उठाते हैं, ये मनगढ़न्त धर्मावलम्बी, बिना परिस्थिति और समय की प्रगति को विचारे ही हठात् उन्हें नास्तिक, धर्मध्वंसक और वर्णसङ्कर आदि उपाधियाँ देते हुए अपनी असीम विद्वत्ता का परिचय देने लग जाते तथा ज़ोर से चीख़ उठते हैं कि—'धर्म की नैया डूब चली। नौजवानो, धर्म-रक्षा के लिए कट मरो।'

परन्तु अब समय आ गया है, "यस्तर्केणानुसन्धत्ते स धर्मः" के चरितार्थ होने का। हमारी बुद्धियाँ अब केवल पुराने शास्त्रों के अधीन नहीं रक्खी जा सकतीं। क्योंकि बुद्धि का स्वामी तर्क है। प्रत्येक जन को धर्म जैसे विषय में 'ननु-नच' करने का अधिकार है; क्योंकि

"यथेमां वाचं कल्याणीमावदानी जनेभ्यः......चारणाय" अर्थात् प्रत्येक बात निष्पक्ष भाव की विवेचनायुक्त बुद्धि से प्रमाणित हो सकती है। अब विचारणीय विषय यह है कि हम लोग शिखा-सूत्र क्यों धारण करते हैं? इससे क्या हानि तथा लाभ है? जन-समूह पर ये क्या उचित तथा अनुचित प्रभाव डालते हैं? हम इनको ग्रन्थों की तरह आजीवन धारण करते जायँ या ये त्याज्य भी हैं? ऐसे अनेक प्रश्न आजकल के नौजवानों के दिलों में उठते और विलीन होते हैं। परन्तु उनको उत्तर यही मिलता है कि हमारे पूर्वज बड़े बुद्धिमान् थे, उन्होंने कुछ सोच-समझ कर ही इसे रक्खा होगा। भला हम उनकी बातों में क्यों दख़ल दें? वे हमसे अधिक ज्ञान रखते थे। उन्होंने अनेक शास्त्र बनाए। जब उन्होंने स्वयं इन्हें धारण किया और हमको भी धारण करने का आदेश कर गए हैं, तो चाहे जो कुछ भी हो, हमारे लिए इनका धारण करना अनिवार्य है। क्योंकि हम उनसे अधिक बुद्धिमान नहीं हैं। इसलिए उनके आदेशों के विरुद्ध कोई बात मुख से निकालना पापी बनाता है। ऐसी बातों से धर्म की मर्यादा बिगड़ती है।

कुछ लोग शास्त्रों, स्मृतियों तथा वेदों में आए हुए "ग्रन्थी और सूत्र" शब्दों से यह सिद्ध करने की व्यर्थ चेष्टा करते हैं कि शिखा और सूत्र वैदिक हैं। परन्तु वे अन्ध-विश्वासी यह भूल जाते हैं कि वेद अनन्त हैं। उनमें प्राकृतिक तथा अप्राकृतिक जगत की तमाम बातों की जानकारी बीज-रूपेण वर्णित है। विद्वान लोग उसमें से समयोपयोगी और लाभकारी वस्तुएँ निकाल कर बुद्धिमत्ता से अगर वर्त्तते हैं तो लाभ होता है, अन्यथा वेदोक्त होने पर भी उस वस्तु को मूर्खतापूर्ण वर्त्तने से वह दुखदायिनी हो जाती है। जब स्वार्थवश लोग अर्थ का अनर्थ करने लगते हैं, तभी धर्म की टाँग टूटती है। वेद के एक मन्त्र में लिखा है—"द्वा 'सुपर्णा' स युजाः सखाया समानं 'वृक्ष' परिशस्व जाते।" इसमें सुपर्ण (पक्षी) तथा वृक्ष (पेड़) शब्द आए हैं, तो क्या कोई कह सकता है कि वेदों में पक्षी और पेड़ का ज़िक्र आया है, इसीलिए उनकी पूजा करनी चाहिए? क्या इसीलिए मोर पक्षी और पीपल के पेड़ के लिए नित्य नए-नए बखेड़े उठा करते हैं और धर्म की दुहाई देकर व्यर्थ की जानें गँवाई जाती हैं? परन्तु वास्तव में यह तो अर्थ का अनर्थ करना है, और इस तरह अर्थ का अनर्थ करके स्वार्थवश धर्म की दुहाई देने से अब ऐसी बातें नहीं मानी जा सकतीं।

केवल "यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं" कह देने से यह कैसे सिद्ध हो गया कि तीन डोरे वाली ९६ मुट्ठी की लम्बी डोरी कोई बल-तेज-दायिनी होती है और परमं पवित्रं कह देने से ये 'त्रिसूत्र' कोई देवता जी हैं? न जाने किस अर्थ का अनर्थ होने से ये देवता तथा शिखादेवी हिन्दू के शरीर पर आ बैठी हैं? 'ग्रन्थी' से चोटी और उस गाँठ का कैसे ज्ञान हुआ?

वास्तव में शिखा और सूत्र की कोई वैज्ञानिक आवश्यकता भी नहीं प्रतीत होती। इसको योग्यता-सूचक अथवा समूह-सूचक चिन्ह भी मानें तो कैसे? यदि यह चिन्ह-मात्र है तो भीतर न पहिन कर ऊपर क्यों नहीं पहना जाता, जिससे सर्व-साधारण को दीखता रहे? वेदों में समूह-सूचक चिन्ह-विशेष का प्रतिपादन नहीं है। वेद तो अनेक उक्तियों से सुस्पष्ट करते हैं कि उन्होंने अपनी ओर से अप्राकृतिक चिन्हों द्वारा मनुष्य-समाज में कोई विभाजन नहीं किया, प्रत्युत सार्वभौम एकता दर्शाई है! वेद कूपमण्डूकता के छोटे-छोटे दायरे नहीं हैं। वे नहीं चाहते कि ब्राह्मण इतनी गाँठें लगावें, क्षत्रिय इतनी और वैश्य-शूद्र इतनी-इतनी गाँठें लगावें। वास्तव में ये अनर्थकारी भेद-भाव स्मृतियों की कृपा के फल हैं। शिखा-सूत्र का जन्म-काल गोमिलीय सूत्रों से प्राचीन नहीं है। सूत्र-ग्रन्थ तथा स्मृतियाँ ही इसका प्रतिपादन करती हैं। वेद त्रिकाल में एकरस सत्य हैं। अतः यह वेद-विरुद्ध मनुष्य-कृत परिपाटी सर्वथा अवैदिक है।

रिवाज (परिपाटी) हो जाने से यह मानना पड़ेगा कि यदि कोई रिवाज दूषित हो चुका हो, तो उसे सुधारना चाहिए अथवा एकदम उठा देना चाहिए। रिवाजों में समयानुसार सुधार होना भी अनिवार्य है। क्योंकि एक रिवाज लाखों साल तक एकरस बना नहीं रह सकता। उसमें रद्दोबदल करना ही होता है और इसका करना तत्कालीन विशेषज्ञों के हाथ में रहता है।

किसी न किसी दिन यह प्रथा चली होगी, फलतः जब इसका कोई प्रथम दिन था तो अन्तिम दिन आना भी अनिवार्य है। इसलिए वेदों के आधार पर इसका प्रतिपादन करना भ्रम फैलाना है। यह माना कि इसका

प्रचार उस समय किसी लाभ के विचार में हुआ होगा। परन्तु अब तो यह डोरी हिन्दुओं को बुरी तरह कसे डाल रही है। यही "त्रिसूत्र" ऊँच-नीच और अधिकारी-अनधिकारी आदि व्यर्थ के भेद-भावों की सृष्टि कर पारस्परिक प्रेम के स्थान में द्वेष बढ़ाने वाला है। दक्षिण भारत में ब्राह्मण-अब्राह्मण का आए-दिन फ़साद रहता है, छूत-अछूत का भूत सारे भारत पर चढ़ बैठा है, जिससे भारत की राजनीतिक प्रगति में भारी ठेस लग रही है!

पाठक स्वयं सोचें कि सिवाय भारत के एक समुदाय के संसार के करोड़ों मनुष्य इन्हें धारण नहीं करते। परन्तु उन पर इसके होने अथवा न होने का बुरा-भला किसी तरह का प्रभाव पड़ता नज़र नहीं आता। न धारण करने वाले विदेशी, धर्म के पालन में भारतीयों से कहीं आगे हैं। वे धर्म के धर्मान्धदास नहीं हैं, प्रत्युत धर्म को अपने हाथ की वस्तु समझते हैं। उनके विपरीत भारतीयों ने धर्म नाम की अनेक कट्टर रूढ़ियों में फँस कर अपना नाश कर डाला है, जिसमें से उनका उद्धार होना कठिन है।

"यतोऽभ्युदयः निश्रेयस्सिद्धि स धर्मः" शुभ धारणा, जो अधिक समुदाय को यथार्थ लाभ देवे, बस वही धर्म हो सकती है। इसके विपरीत धर्म की आड़ में अशुभ धारणाएँ हैं, वे सार्वभौम बनने का दावा नहीं कर सकतीं, इससे वे त्याज्य हैं। कोई भी धर्म, चाहे वह अपने को ईश्वरीय प्रेरणा से अवतरित भले ही बतलाता हो, जो कोरे ढोंग और दक़ियानूसी रूढ़ियों से भरा हो, यथार्थ तत्व से कोसों परे हो, रिवाजों को ही अन्ध-धर्म मान कर, हानिकारक होते हुए भी उन्हें सर्वथा अपरिवर्तनीय माने, उस धर्म को तो सागर के अन्तस्तल में डुबो देना अनुचित न होगा।

यह मनुष्य-कृत प्रथा जब हमारे व्यक्तित्व और समुदाय पर कोई प्रामाणिक लाभ नहीं दिखाती, प्रत्युत सङ्गठन में बाधक-रूप है, तब इसे 'ओल्ड एज' पेन्शन दे देना अनुचित नहीं होगा।*

—बी० भास्कर

* * *

* यह लेख हमने विचार-विनिमय के विचार से छाप दिया है। आशा है, अन्यान्य विद्वान इस पर प्रकाश डालेंगे।

—स० 'चाँद'

मृतक-भोज और मेवाड़

आज समस्त देश का ध्यान राजनीतिक ग्रन्थियों के सुलझाने में लगा हुआ है और सामाजिक सुधार की ओर बहुत कम है; यद्यपि राष्ट्र-निर्माण के लिए इसकी भी उतनी ही आवश्यकता है, जितनी कि अन्य बातों की।

भारत में कई रीति-रिवाज ऐसे हैं, जो बहुत ही विकृत और हीन हो गए हैं। इन्हीं सारहीन प्रथाओं में से एक प्रथा मृतक-भोज अथवा 'ओसर' भी है। यह प्रथा राजपूताने में विशेष प्रकार से प्रचलित है। यह रिवाज बहुत ही बुरा, करुणाजनक और कष्टदायक है। इस प्रथा का प्राबल्य तो कहीं-कहीं इतना देखने में आता है कि मूर्ख ग्रामीण और पठित सभ्य मनुष्य एक ही प्रकार से विवेक-रहित होकर द्रव्य का अपव्यय करते हैं। जाति के पञ्चों का दबाव और धनिकों का अन्धानुकरण इतना ज़बरदस्त होता है कि कितने ही अच्छे-अच्छे घराने बरबाद हो जाते हैं। मूर्ख, अपठित और ग्रामीण कृषकों में तो इतना रुपया इस हेतु व्यय किया जाता है कि उनके घर-बार, खेत और कुएँ इत्यादि—सब रेहन रख दिए जाते हैं और तब 'ओसर' (श्राद्ध-भोज) किया जाता है। अनेक समृद्धिशाली कृषक इसी दावानल के पञ्जे में फँस कर अपना अस्तित्व ही खो बैठते हैं। नगरों और क़स्बों में भी इस प्रथा का प्राबल्य और बाहुल्य है। एक अनाथ, धनहीन, कुलीन सद्यः विधवा इसके लिए बाध्य की जाती है और जाति के पञ्च तथा प्रतिष्ठित लोग अनुचित दबाव डाल कर या धमकी देकर 'ओसर' करवा लेते हैं और फिर उसका घर इत्यादि रेहन रखवा कर उसको तथा उसकी सन्तान को द्वार-द्वार का भिखारी बना देते हैं। इन्हीं कष्टों को स्मरण करके और इसको निरर्थक ख़र्च (अपव्यय) समझ कर कतिपय देशी रियासतों ने राज्य की ओर से विज्ञप्ति निकलवा कर इसका निषेध कर दिया है।

देश के वातावरण का अध्ययन करके तथा उसकी प्रगति को जान कर और मृतक-भोज के रोमाञ्चकारी इतिहास को अधिगम्य करके मेवाड़ के उत्साही नवयुवकों ने इसकी सारहीनता सब लोगों पर प्रकट की। अनेक

वृद्धों और नवयुवकों ने इसमें सुधार करने का आयोजन किया, और अनेक प्रार्थना-पत्र, ज़िला-हाकिमों, पण्डित साहब शुकदेवप्रसाद जी और महाराणा साहब की सेवा में मृतक-भोज-निषेधार्थ भेजे। किन्तु यह सब आयोजन व्यर्थ हुआ, नवयुवकों के उत्साह और वृद्ध पुरुषों के नम्र-निवेदन का कोई भी प्रभाव उनके उदार मन पर न पड़ा। मेवाड़ राज्य अनेक बातों में पिछड़ा है और शायद अभी वैसा ही रहना भी चाहता है।

यह वही मेवाड़ है, जिसने एक दिन अपनी विजय-वैजन्ती समस्त भारत में फहराई थी और जिसकी कीर्ति-कौमुदी उत्तुङ्ग हिमालय से कन्या-कुमारी अन्तरीप तक सुविकीर्ण थी। यह सब कार्यों में अग्रसर था और यहाँ के महाराणा संग्रामसिंह ने सामाजिक उच्च अधिकार (Social Ascendency) का आश्रय लेकर, राजनैतिक क्षेत्र में अग्रसर होकर पदार्पण किया था। समस्त देश और सम्राट के विरुद्ध होकर वीर-केसरी प्रताप ने निर्भयता से उससे लोहा लिया था। किन्तु आज वही मेवाड़ तथा उसके शासकगण कतिपय रूढ़ियों के ग़ुलाम, अन्धपरम्परागत धर्म के ठेकेदारों से भयभीत होकर 'मृतक-भोज' निषेध नहीं करना चाहते। दरिद्र मनुष्यों और दीन कृषकों की करुणापूर्ण दशा पर ध्यान देने का इनको अवकाश नहीं है। कृषकों की दशा में सुधार और प्रजा में उन्नति तथा आर्थिक स्थिति में वृद्धि नहीं चाहते, केवल उनसे द्रव्य खींचना और उसको निरर्थक कार्यों में व्यय करना जानते हैं।

—एक मेवाड़ी

❃ ❃ ❃

कशमकश

टेलीफ़ोन-नम्बर—२०५

तार का पता—'भविष्य'

इस अङ्क का मूल्य केवल ।॥) आना

इस अङ्क का मूल्य केवल ।॥) आना

'भविष्य' का चन्दा

वार्षिक चन्दा	१२)
छःमाही चन्दा	६॥)
तिमाही चन्दा	३॥)
एक प्रति का मूल्य	।)

साप्ताहिक संस्करण का जुबली-नम्बर

वार्षिक चन्दे अथवा फ्री कॉपी के मूल्य में कुछ भी नुक़्ताचीनी करने में पहिले मित्रों को 'भविष्य' में प्रकाशित अलभ्य सामग्री और उसके प्राप्त करने के असाधारण व्यय पर भी दृष्टिपात करना चाहिए।

पाठकों को "जुबली-नम्बर" पढ़ कर आश्चर्य अवश्य होगा, क्योंकि 'भविष्य' को प्रकाशित हुए ५० वर्ष नहीं; बल्कि अभी केवल ५० सप्ताह ही हुए हैं। किन्तु 'भविष्य' के मित्रों, शुभचिन्तकों एवं बुज़ुर्गों ने दूसरे वर्ष का पहिला अङ्क "जुबली-अङ्क" के नाम से एक बृहत् विशेषाङ्क प्रकाशित करने का अनुरोध किया है, जो बाध्य होकर संस्था के प्रवर्तकों को स्वीकार करना पड़ा ; अतएव निश्चय यह किया गया है, कि 'भविष्य' का ५१वाँ अङ्क विशेषाङ्क के रूप में प्रकाशित किया जाय, शायद पाठकों को बतलाना न होगा कि 'भविष्य' का प्रत्येक सप्ताह उसके लिए एक वर्ष का सुदीर्घ काल सिद्ध हुआ है और इसलिए यदि हम ५० सप्ताहों को ५० वर्ष के समान मान कर अपने हृदय की साध पूरी कर लें तो इसमें हानि ही क्या है? किन्तु यह विशेषाङ्क हम इतना सुन्दर प्रकाशित करना चाहते हैं, जितना सुन्दर एवं महत्वपूर्ण अङ्क आज तक भारत में कभी भी प्रकाशित नहीं हुआ ; किन्तु सारे साधनों को एकत्र करने में थोड़े समय की भी ज़रूरत है और चूँकि पूरे एक वर्ष में 'भविष्य' ने एक सप्ताह तक की छुट्टी नहीं ली है (जबकि होली पर अन्य

पत्र पूरे एक सप्ताह की छुट्टी ग्रहण करते हैं, ठीक उसी समय हमने 'भविष्य' का कॉङ्ग्रेस-अङ्क पाठकों को भेंट किया था) इसलिए हम दो सप्ताह की छुट्टी भी लेना चाहते हैं ; अतएव ५० अङ्क पूरे करके साप्ताहिक 'भविष्य' नाम-मात्र के लिए दो सप्ताह की छुट्टी ग्रहण करेगा और इसका ५१वाँ अङ्क

जुबली-अङ्क के नाम से एक बृहत् विशेषाङ्क

के रूप में प्रकाशित होगा। इस विशेषाङ्क में लगभग १०० पृष्ठ, सैकड़ों चित्र तथा कार्टून (कुछ चित्र आर्ट पेपर पर) भी रहेंगे। कवर तिरङ्गा होगा। नया कवर, नया टाइप, ठोस पाठ्य सामग्री तथा अनेक महत्वपूर्ण बातें इस विशेषाङ्क में पाठकों को मिलेंगी। छपाई-सफ़ाई दर्शनीय होगी। मूल्य लागत मात्र

केवल बारह आना होगा

किन्तु जो लोग 'भविष्य' (साप्ताहिक संस्करण) के ग्राहक हैं, उन्हें तथा जो विशेषाङ्क प्रकाशित होने के पूर्व ही स्थायी ग्राहकों की श्रेणी में चन्दा पेशगी भेज कर नाम लिखा लेंगे, उन्हें यह विशेषाङ्क उनके चन्दे में ही दिया जायगा।

यदि आप स्थायी ग्राहक नहीं हैं तो शीघ्र ही अपना नाम लिखा लीजिए।

एजण्टों तथा विज्ञापनदाताओं को तुरन्त अपना ऑर्डर रजिस्टर करा लेना चाहिए।

'चाँद' के विशेषाङ्क के लिए, जो आगामी नवम्बर (दीपावली) के अवसर पर "राजपूताना-अङ्क" के नाम से एक बृहत् विशेषाङ्क प्रकाशित होगा, तथा 'भविष्य' के "जुबली-अङ्क" के लिए, ग्राहकों की सुविधा को दृष्टि में रख कर अभी से कूपन छपा दिए गए हैं। ये कूपन 'भविष्य' की समस्त एजन्सियों द्वारा अथवा इस संस्था की शाखों द्वारा अभी से ख़रीद कर अपनी कॉपी रिज़र्व करा लीजिए, नहीं तो मिलना कठिन हो जायगा।

"तुरन्त अथवा कभी नहीं" का प्रश्न है !!

व्यवस्थापक 'भविष्य' चन्द्रलोक, इलाहाबाद

दिल की आग उर्फ़ दिल-जले की आह !

["पागल"]

छठा खण्ड

८
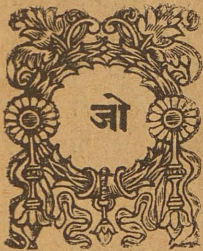
जो काम मैं किसी प्रकार भी नहीं कर सकता था, वह परिस्थिति की विवशता में पड़ कर करना पड़ा। क्योंकि धर्मावतार के भयङ्कर स्वभाव और क्रूर प्रकृति का हाल भली भाँति जानते हुए मुझे उनकी आज्ञा उल्लङ्घन करने का साहस न था। तथापि औरत की पोशाक देख कर उसको पहनने से मैं कुछ न कुछ हिचकिचाया ज़रूर, मगर उनकी त्योरी का रङ्ग बिगड़ते ही मेरा दम सूख गया और मैंने अपने को बिलकुल उनकी मर्ज़ी पर छोड़ दिया। उन्होंने स्वयं ही अपने हाथ से मेरा भेष बदलना आरम्भ किया। इस काम में मुझे वह इतने कुशल प्रतीत हुए कि उनके आगे एक सिद्धहस्त बहुरूपिया भी नौसिखिया था। रूप-परिवर्तन के सभी सामान ऐसे थे, मानो मेरे रङ्ग-रूप और डील-डौल के अनुकूल ख़ास तौर से बनवाए गए हैं। अब समझ में आया कि इसीलिए मुझे अपनी दाढ़ी-मूँछ नित्य साफ़ रखने की ताकीद की गई थी, एक न एक दिन मुझे औरत भी बनना पड़ेगा।

धर्मावतार जब मेरी हुलिया बदल चुके, तो एक दफ़े मुझे सर से पैर तक अच्छी तरह देख कर आप ही आप बड़बड़ा उठे—Grand success ! He looks like a real woman indeed. अर्थात्, 'ओहो ! ग़ज़ब की सफलता ! यह तो सचमुच ही औरत मालूम होता है।'

मैं पत्र लेकर घाट के मन्दिर की ओर रवाना हुआ। रात की अँधियाली ख़ूब गहरी हो चुकी थी। उस पर पत्र लिफ़ाफ़े में बन्द था। उसे बिना खोले और बिना रोशनी के पढ़ लेना असम्भव था। खोल कर उसे फिर उसी तरह चिपका देना भी रास्ता चलते मुमकिन नहीं था। इसलिए मैंने पत्र को चुपके से पढ़ने की कोशिश करना बेकार समझा, और जल्दी-जल्दी क़दम बढ़ाता हुआ दर्शन करने वाली औरतों के झुण्ड में जा मिला। उस दिन शायद कोई स्थानीय त्योहार था। क्योंकि इतनी ही देर में वहाँ आदमियों की भीड़ काफ़ी जम गई थी और बराबर बढ़ती ही जाती थी। ऐसा जान पड़ता था कि शहर भर की औरतें आज यहीं फट पड़ेंगी। ऐसे जमघटे में उस स्त्री को ढूँढ़ निकालना, जिसको धर्मावतार ने मुझे पत्र देने के लिए बताया था, बहुत मुश्किल जान पड़ा। मैं बड़ी देर तक बौखलाया हुआ इधर-उधर ताक कर रह जाता था। इतने में पास ही एक दूकान के सामने अपनी गरोह से अलग होकर एक स्त्री रोशनी में आई। मुझे कुछ शक हुआ और मैं उसके पीछे पड़ गया। वह कई बार इसी तरह कुछ न कुछ बहाने के साथ रोशनी में देर तक अटकने की कोशिश करती थी, और इधर-उधर प्रतीक्षापूर्ण नेत्रों से देखती थी। ऐसा करने में एक दफ़ा उसका पूरा चेहरा मुझे आँख भर देखने को मिला। अब मुझे विश्वास हुआ कि यह वही है। मैं उसकी बग़ल से मिलता हुआ निकला और अपने नाख़ून से उसकी बाँह इस तरह खुरेच कर मैं आगे बढ़ गया कि मानो अनजाने मेरा हाथ उसे लग गया है। अब वह मेरा पीछा करने लगी, और तेज़ी से मेरे पास पहुँच कर उसने मेरी उँगली दबाई। वैसे ही मैंने उसके हाथ में चुपके से धर्मावतार का पत्र रख दिया।

भीड़ में एक दफ़े फिर उसने मेरी उँगली दबाई और उसे अपनी तरफ़ खींच कर छोड़ दिया। जिससे मालूम हुआ कि वह मुझे अपने पीछे चलने को कहती है। अपने साथ की औरतों के साथ मेले में इधर-उधर घूमती हुई वह एक जगह किटसन लाइट की जगमगाती हुई रोशनी में रुक कर एकाएक वहाँ की बोली में चिल्ला पड़ी—'अरे ! ठहरो-ठहरो, मेरा हार टूट गया।' उसके खड़े होते ही सचमुच वहाँ दस-बीस मोतियों के दाने

गिर पड़े। वह झट बैठ गई और उन दानों को चुनती हुई बोली—'भई, किसी के पास ज़रा काग़ज़ हो तो देना। रहने दो, यह क्या पड़ा है।' इतना कह कर उसने अपने पैर के पास से एक मोड़ा-माड़ा काग़ज़ का टुकड़ा उठाया और उसे झाड़-पोंछ कर सीधा किया। उसे अपने बाएँ हाथ की हथेली पर रख कर उसमें मोतियों के दाने एक-एक करके रखने लगी। इतनी देर में मैं भी बिल्कुल उसके पास पहुँच गया। मेरी नज़र जो उस काग़ज़ पर पड़ी और उस पर धर्मावतार की लिखावट पहचानी, तो उसके त्रिया-चरित्र पर बस चकित होकर रह गया। बेशक उसने सबकी आँखों में धूल झोंक कर ख़त पढ़ लेने की अच्छी तरकीब निकाली।

मैं अब तक उसके इर्द-गिर्द ही चक्कर लगा रहा था। इतने में वह उठ कर मेरे सामने आई और सुखदा-सुखदा कह कर एकाएक वह मुझसे लिपट गई। उसके साथ की औरतें चकरा उठीं और मैं भी बौखला गया। मगर उसने मेरे गले में हाथ डाल कर बातों का ऐसा ताँता बाँधा कि किसी को बोलने का मौक़ा ही नहीं दिया। कहने लगी—'ओहो! बहुत दिनों के बाद भेंट हुई। तुम तो मुझे ऐसी भूली कि मैं समझती थी कि अब ज़िन्दगी में कभी भेंट ही न होगी। कई बार तुम्हें बुलवा भेजा, मगर तुमने आने का नाम तक नहीं लिया। ऐसी बेमुरौवती? क्यों, क्या तुम सोचती थी कि यह तहसीलदारिन साहबा हैं? अब मुझसे सीधे मुँह बात न करेगी। अरे! राम! कहाँ ख़्याल है तुम्हारा? मैं भला अपने बचपन की सखियों को भूलने वाली हूँ? ख़ूब मिली। अब मैं तुम्हें अपने यहाँ बिना ले गए थोड़े ही मानने की। मुद्दतों का दुख-सुख रोना है। चलो, घर पास ही तो है, ज़रा इतमीनान से बातें हों। नहीं अपने वहाँ चलो। मेला-तमाशा तो हमेशा ही हुआ करता है। मगर बचपन की गुइयाँ तो हमेशा एक जगह नहीं हो सकतीं। इत्यादि।' इसी तरह उसने बातों में ऐसा रङ्ग जमाया कि वह अपनी साथ वालियों को मेले ही में छोड़ कर मुझे लिए हुए वहाँ से चल खड़ी हुई और किसी को कुछ भी शक न हुआ।

वह देखने में बहुत सुन्दरी तो न थी, फिर भी उसकी चञ्चल प्रकृति, आड़ी-तिर्छी चितवन, चुहल-भरी हँसी पुरुष-हृदय में गुदगुदी और लालसा उत्पन्न करने में बला का असर रखती थीं। छरहरा बदन, पक्का रङ्ग, उस पर उसकी काठी इतनी अच्छी थी कि सरसरी तौर पर उसकी उम्र का ठीक अनुमान नहीं किया जा सकता था। उसकी उम्र ज़्यादा ज़रूर थी। जिसको हर कोई नहीं भाँप सकता था, फिर भी देखने में वह नवयुवती ही जान पड़ती थी। अङ्ग-अङ्ग में नख़रे कूट-कूट कर भरे थे, तो नज़रों में चालाकी, दग़ाबाज़ी, मतलब और अहङ्कार का कारबार था। नम्रता, मधुरता, सच्चाई और भोलापन का नाम-निशान तक नहीं था। धर्मावतार जो रानी-महारानियों को कठपुतली की तरह नचा रहे थे, उन्हें ऐसी स्त्री से प्रेम, जो सिवाय वासना की पात्री के स्वप्न में भी प्रेम की पात्री नहीं हो सकती, बेशक एक ताज्जुब की बात थी। और वासना के लिए भी उन्होंने इसे क्यों चुना, जिसमें इतने झगड़े-बखेड़े थे, जब उनके अधीन एक से एक रूपवती वेश्याएँ थीं और चुटकियों में मिल सकती थीं, जैसा उस दिन रङ्ग-महल में देख चुका था! मगर वहाँ तो यह शराब और सुन्दरियों के बीच में भी अपने को तनिक नहीं भूले। शराब पीते थे, मगर होश पूरे तौर से क़ाबू में था। छेड़-छाड़ में शरीक थे, मगर अपने रोब और दबदबा को हाथ में लिए हुए मैनेजर की तरह कभी यह आपे से बाहर नहीं हुए। इसी से मैं समझता था कि ऐसे मनुष्य का पतन होना कठिन है। सम्भव है, इस स्त्री में उनके लिए कोई विशेष आकर्षण हो, फिर भी क्या ऐसे भयङ्कर और कुटिल प्रकृति वाले के हृदय में भी प्रेम का सञ्चार हो सकता है, यह अलबत्ता मेरे लिए एक अजीब समस्या थी।

मगर जिस समय इन दोनों की जमुनिया बाग़ में मुलाक़ात हुई, इन लोगों का रङ्ग-ढङ्ग देख कर मैं तो अवाक् हो गया। तहसीलदारिन साहबा धर्मावतार को देखते ही इस तरह झपट कर उनसे लिपट गईं, मानो उनके लिए यह सचमुच मर रही थीं और धर्मावतार के आलिङ्गन में भी काफ़ी जोश था। दोनों ही एक दूसरे पर बुरी तरह मुग्ध जान पड़े। पहिले शिकायतों की भरमार हुई। उसके बाद रूठना, मचलना, रोना, मुस्कुराना, हँसना वग़ैरह नख़रे की सभी लीलाएँ आरम्भ हुईं। बातें ऐसी लच्छेदार हो रही थीं कि यह दोनों बस एक दूसरे को छोड़ कर दुनिया में और किसी को

चाहते ही नहीं। मैं दूसरे कमरे में कर दिया गया था, वहाँ से सूरत-शकल तो नहीं दिखलाई पड़ती थी, मगर बातचीत रात के सन्नाटे में साफ़ सुनाई देती थी, और मैं भी ऐसे अनोखे जोड़े के प्रेम-रहस्य की थाह लेने के लिए अपने कान खड़े किए हुए था।

एकाएक इन लोगों की बातों में छोटी बहूरानी का ज़िक्र सुन कर मैं चौंक पड़ा और दम रोक कर इन लोगों की बातें सुनने लगा। इस प्रसङ्ग का प्रारम्भ इस प्रकार हुआ :—

"बस रहने दीजिए ; दो दो बरस तक इतनी भी ख़बर नहीं ली गई कि कोई मरती है या जीती।"

"तुम यहाँ थीं कहाँ ?"

"कहीं थी ! पता तो आप जानते थे। दो अक्षर तक लिखना भी आपको भारू था ? और उस पर मुझे भी आपने ख़त लिखने से मना कर रक्खा था। नहीं तो मैं ही कभी-कभी लिख कर अपने दिल का भड़ास निकाल लेती।"

"तुम तो जानती हो कि मैं सिवाय गूँगे और बहरों के दुनिया में किसी पर भी विश्वास नहीं करता और डाक के मामलों में तो हमेशा ही सशङ्कित रहता हूँ। न जाने धोखे में कोई पत्र कहीं का कहीं चला जाए।"

"दुनिया में आप सचमुच किसी पर भी विश्वास नहीं करते ? मुझ पर भी नहीं ?"

"आह ! तुम तो मेरे दिल की रानी हो। तुम पर न विश्वास करूँगा तो करूँगा किस पर ? क्या बताऊँ, जब से वह गूँगा भाग गया, जिसे तुम पहाड़ी कहती थीं, तब से तुमसे मिलना-जुलना कौन कहे, ख़त-किताबत तक का सिलसिला बन्द होगया, मगर अब ईश्वर की कृपा से वह गूँगी मिल गई है। अब बहुत जल्दी-जल्दी मुलाक़ात हुआ करेगी। और इधर तहसीलदार साहब की भी कल से शिकार के इन्तज़ाम पर तैनाती हो जाएगी। कम से कम पन्द्रह या बीस रोज़ तक तो उन्हें बाहर ही रहना पड़ेगा। फिर तो मिलने में कोई खटका भी न रहेगा।"

क्या धर्मावतार ने अपने प्रेम-मिलन के सुभीते ही के लिए मुझे गूँगा और बहरा समझ कर रक्खा था ? अगर मामला यहीं तक था, तो मैनेजर को मेरे बारे में क्यों इतनी फ़िक्र थी ? इस ख़्याल ने मुझे अपने बारे में अब भी निश्चिन्त होने नहीं दिया।

"शिकार का इन्तज़ाम कैसा ?"

"संयोग से कल कलकत्ते से बड़े मेहमान आए हैं। उन्हीं के सत्कार में मैंने उनके लिए शिकार का प्रोग्राम बना दिया। सच पूछो तो तहसीलदार साहब को कुछ दिनों बाहर भेजने के लिए यह सरञ्जाम किया गया है।"

"बड़े मेहमान कौन, महाराज के साले ?"

"हाँ ! वही छोटी बहूरानी के भाई, जो जब आते थे, तुम्हारी कोठी में ठहराए जाते थे, जिसमें तुम पहले रहती थीं।"

मैं अब तक छोटी बहूरानी से सरोज का अनुमान करता था। मगर उसके तो कोई भाई नहीं था। इस-लिए मैं अजीब चक्कर में पड़ गया और मेरी विचार-तन्त्री भी गड़बड़ा उठी।

"तो इस दफ़े वह क्यों नहीं मेरे यहाँ ठहरे ? यह भी मकान काफ़ी बड़ा है। बल्कि इसको तो मैंने ख़रीद भी लिया है।"

"ख़ैर ! उनके रहने का इन्तज़ाम राजमहल ही में होगया। वह वहीं ठहरना भी चाहते थे।"

"हूँ !"

"क्यों, चुप क्यों होगईं ?

"........"

"क्या हुआ क्या ?"

"कुछ नहीं।"

"आख़िर कुछ कहो तो ?"

"क्या कहूँ ? जब आपको मेरी फ़िक्र हो, तो कहते भी अच्छा मालूम हो। नहीं तो बेकार अपना मुँह पीटना है।"

"कैसे नहीं फ़िक्र है ? तुम्हारी ही वजह से तो उनका भी इतना ख़्याल रखता हूँ कि आज के दिन वह तहसीलदार हैं, नहीं तो ज़िलेदारी पर जन्म भर सड़ा करते।"

"तो तहसीलदारी पाकर कौन सा बड़ा जग जीत लिया ?"

"घबड़ाओ नहीं, सब बातें धीरे-धीरे और मौक़े से हुआ करती हैं। तरक़्क़ी का सिलसिला यदि जारी रहा,

तो तुम देख लोगी कि एक न एक दिन वह मैनेजर भी हो जायँगे।"

"हाँ ? सच कहो मेरे प्राण, तुम्हें मेरी क़सम।"

"कुछ दिनों में देख लेना। हाथ-कङ्गन को आरसी क्या !"

"हाय ! हाय ! ऐसा जो कहीं हो जाए तो आपके तलवे धो-धोकर पिऊँ, और पीती ही हूँ। आप तो जानते हैं कि दिन-रात बस आप ही का नाम जपा करती हूँ, मेरे राजा ! ज़रा इधर तो देखो। (चुम्बन की आवाज़) ......मगर..."

"मगर क्या ?"

"महाराज भला सरकार साहब को मैनेजरी से कैसे अलग कर सकते हैं, वह तो उनके बड़े भाई ठहरे।"

"हुआ करें ? इससे क्या ? मैं तो इसके लिए उन्हें तैयार कर दूँगा।"

"फिर भी छोटी बहूरानी ऐसा होना कब गवारा कर सकती हैं ? इनके बिना उन्हें कैसे चैन पड़ेगा ? एक साइत तो बिना देखे..."

"छोटी बहूरानी को सरकार साहब से मतलब ?"

"बस रहने दीजिए, मुँह न खुलवाइए। घर-घर तो ढिंढोरा पिटा हुआ है और आप कहते हैं कि इनसे उनसे मतलब।"

"क्या बकती हो ? छोटे भाई की स्त्री लड़की के बराबर होती है।"

"और रानी माँ भी तो उनकी माँ के बराबर थीं, जो पेट गिरा कर धर्मात्मा बनी अब तीर्थ कर रही हैं ? वह तो जैसी थीं, थीं ही; मगर इन्होंने तो उनके भी कान कतर लिए। इसको कौन नहीं जानता ? किस घर में इसका चर्चा नहीं है ? दुनिया ऐसी बेवक़ूफ़ नहीं, जो बिना बात के बात उड़ा दे। बिना आग के धुँआ नहीं उठता। मेरी तरह किस-किस के मुँह बन्द कीजिएगा........."

मेरे मुँह से चीख़ निकलते-निकलते रह गई। सारे बदन का ख़ून ख़ौल उठा। यद्यपि छोटी रानी के भाई भी है, यह जान कर मुझे शक हो चला था कि वह सरोज नहीं हो सकती और इसलिए उनकी बदनामी से मुझे कुछ सरोकार न था, फिर भी न जाने क्यों यह बातें जलते हुए अङ्गारे की तरह मेरे कलेजे पर लोटने लगीं। मेरा दिल जल-भुन कर ख़ाक हो गया। मुझसे अब आगे सुना न गया। मैंने उँगलियों से कस कर अपने कान बन्द कर लिए। फिर भी यह ज़हरीली आवाज़ बन्द न हुई। मेरे दिमाग़ में गूँज कर मेरे हृदय को मसलने लगी। दिल को कितना ही समझाता था कि इससे सरोज से क्या मतलब, मगर वह कम्बख़्त बार-बार यही चिल्ला रहा था कि हो न हो, यह उसी के सम्बन्ध में है। मेरी अटल भक्ति की उपेक्षा तकिए वाले पत्र और उसका कान्तिहीन मुखड़ा, सभी उस वक्त इसका समर्थन करने के लिए तैयार होगए। यद्यपि यह बदनामी उसके कानों तक न पहुँची होगी, फिर भी इसकी आँच उसकी आत्मा को भस्म किए दे रही है। यही उसके सूखे हुए मुखड़े का रहस्य जान पड़ा। और मैं जलन और सहानुभूति के बीच में पड़ कर कभी तड़पता और सर धुनता था, तो कभी छाती पीटता और रोता था। एक आँख से ख़ून बरस रहा था, तो दूसरी आँख से आँसुओं की धारा जारी थी।

मेरा दिल धुँआधूँह जल रहा था। फिर भी हाय ! यह अग्नि मेरे प्रेम को जला कर ख़ाक नहीं कर पाती थी। ठेस पर ठेस लगती जाती थी और मैं कुढ़-कुढ़ कर मरता था, तो भी यह कम्बख़्त दिल उसे प्यार करने से बाज़ नहीं आता था। मेरी घृणा अपने पूर्ण वेग से मेरे प्रेम पर छापा मारने के लिए उठती थी, मगर मेरी सहानुभूति फ़ौरन ही उसे उसी जगह दबा देती थी। अच्छी थी या बुरी, फिर भी वह मेरी ही थी। उसे सर्वस्व मान चुका था, उसे पूज चुका था। उससे घृणा करने के लिए कहाँ से हृदय लाता ? आज दुनिया उसका दुश्मन होकर उँगलियाँ उठाने लगी, क्यों ? इसलिए कि वह दुनिया के साथ चालबाज़ी करना नहीं जानती, उसकी आँखों में धूल झोंकना नहीं जानती। उसके भोलेपन ने उसे यह चालाकियाँ सिखाया ही नहीं। दुनिया भी उसी की परवाह करती है, जो उसकी परवाह करता है। और सरोज ने अपने निष्कपट मिलनसारी की आदत के आगे इसकी कुछ भी परवाह न की होगी, इसी से इस दुनिया ने जल कर उसे अपनी नज़रों से गिरा दिया। यही सोच कर यद्यपि मैं इस बदनामी पर किसी प्रकार भी विश्वास न कर सका, तथापि इसका ज़हर मेरे सारे बदन में फैल कर मेरे दम को घूँट रहा था।

दूसरे दिन आठ बजे रात को फिर मुझे ज़नानी पोशाक में तहसीलदारिन के पास जाना पड़ा। उस दिन वह धर्मावतार के पत्र के अनुसार, जिसे मैंने पढ़ लिया था, मर्दों की तरह पाजामा, ओवर-कोट और साफ़ा पहिन कर जमुनिया बाग़ में आई, और धर्मावतार उसे अपने साथ मोटर पर बिठाल कर कहीं चल दिए। तीसरे दिन रात को पत्र लेकर जब मैं तहसीलदारिन के घर गया, तो वह नीचे के हिस्से में न थी। मैं कोठे पर चढ़ गया। उसने अपने घर में मेरी बाबत सब पर ऐसा रङ्ग जमा दिया था कि मेरे आने-जाने पर ज़रा भी रोक-टोक न थी और न मुझसे कोई कुछ बोलता ही था। मुझे देख कर जो कोई सामने होता था, वह जिस जगह तहसीलदारिन होती थीं, उधर चुपके से इशारा कर देता था। इसीलिए रसोइयादारिन से इशारा पाकर मैं कोठे पर चला गया।

ऊपर का कमरा बन्द था। मैंने दरवाज़े पर थपकी लगाई। वह कुछ खुल गया। तहसीलदारिन फ़र्श पर गाव-तकिया के सहारे बैठी हुई थीं। पास ही एक सूट-बूटधारी केहुनी के बल लेटा हुआ था, जिसे मैंने समझा कि शायद यही तहसीलदार हैं; क्योंकि तहसीलदारिन की आँखों में उस वक्त एक अजीब मस्ती भरी हुई थी। मगर जैसे ही उस पुरुष ने द्वार की ओर सर घुमाया वैसे मेरी आँखों के सामने अँधेरा छा गया; क्योंकि वह महापुरुष मेरे सर पर आफ़त ढाने वाले वही, मेरे पुराने दोस्त, काशी के डिप्टी थे।

(क्रमशः)

❃ ❃ ❃

उद्वेलित-गीत

[श्री० ब्रजकिशोर जी वर्मा 'श्याम']

मचलते तारात्रों के सङ्ग
छलकते जीवन के अरमान—
प्रलय से पागल वे अरमान—
किसी दुखिया के उफ़! वरदान!!
    निराशा के पथ पर हे देव!
    बिखरते हैं ज़हरीले गान!!

थिरकती किरणों पर साकार—
साधना के मीठे उन्माद!
मधुर यौवन की निधियाँ खोल—
लुटाते थे जो करुण विषाद!!
    वही उफ़ अन्तस्तल में देव!
    उठाते सौ-सौ निर्मम ज्वार!!

भरे नस-नस में विह्वल भाव
मदिर आँखों के महगे प्यार!
—प्यार जिसमें हँसते थे आह!
प्रणय के वे उलझन साकार!!
    मसलते आह वही नादान!
    वेदना के महगे उपहार!!

कहाँ सुरभित चञ्चल मधु मास?
कहाँ मीठे सपनों के राग?
—राग—वैभव के अमिट सुहाग।
खेलते जिसमें करुण विहाग?
    व्यथा का दर्द भरा संसार
    लोटता है बन कर अभिशाप!!

मोह-ममता के आकुल प्राण—
प्राण—उफ़ पापों के परिधान!
वासना के उलझन में देव!
छेड़ते हैं उद्वेलित गान!!
    अधूरे जीवन के आख्यान!
    जगाते हैं व्यापक तूफ़ान!!

शराब-बन्दी का आन्दोलन

भारत में एक ऐसा स्वार्थपरायण दल भी है, जो मद्य-निषेध आन्दोलन के विरुद्ध उचित-अनुचित, सत्य-असत्य, सभी उपायों के द्वारा प्रचार करता रहता है। वह दल अपने इस प्रचार में यह दलील भी देता है कि जिस भाँति अमेरिका में शराब-बन्दी आन्दोलन अव्यावहारिक एवं असफल रहा, उसी भाँति भारत में भी इसे सफलता नहीं मिल सकती। इस दल के इस कथन का दूषित प्रभाव कुछ भारतवासियों पर भी पड़ा है और शराब-बन्दी आन्दोलन के विरोधी प्रान्तीय सरकार के मन्त्रियों तथा सहकारी सदस्यों को शराब-प्रचार-कार्य के निमित्त अमेरिका के इस कथित-दृष्टान्त का एक बहाना मिल जाता है। परन्तु इस अभागे देश में शराब-प्रचार के निमित्त किस प्रकार अन्य देशों का असत्य दृष्टान्त तथा अन्य कमीनी हरकतों को कार्यरूप में लाया जाता है, इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण यह अमेरिका वाला दृष्टान्त ही है। जहाँ इस देश में अमेरिका की दुहाई देकर शराब-प्रचार का आन्दोलन तथा शराब-बन्दी का विरोध किया जाता है, वहाँ अमेरिका की वास्तविक दशा यह है कि वहाँ शराब-बन्दी आन्दोलन में आवश्यकता से अधिक सफलता मिली है। हाल में ही अमेरिका की मुक्ति फ़ौज (Salvation Army) की प्रधाना मिस इवैन्जेलिन बूथ का अमेरिका में शराब-बन्दी आन्दोलन की सफलता के सम्बन्ध में "मैनचेस्टर गार्जियन" में एक लेख प्रकाशित हुआ है। उस लेख में मिस बूथ यह बात स्वीकार नहीं करतीं कि अमेरिका में शराब-बन्दी क़ानून पूर्णतः निर्विवाद रूप से प्रत्येक नागरिक के द्वारा पालन किया जाता है। मिस बूथ का कथन केवल इतना ही है कि अमेरिका की १२ करोड़ जन-संख्या में १० करोड़ से अधिक मनुष्य इस क़ानून का पालन करते हैं। तात्पर्य यह कि यदि अमेरिका जैसे शीत-प्रधान देश में, जहाँ के सार्वजनिक जीवन में शराब खाद्य-पदार्थों का एक विशेष भाग एवं एक अनिवार्य आवश्यकता हो गई थी, शराब-बन्दी आन्दोलन सफल हो सकता है अथवा अधिकांश जनता सरकार के शराब-क़ानून का सच्चे हृदय से पालन कर सकती है; तो भारत जैसे उष्ण-प्रधान देश में—जहाँ अल्प-संख्यक लोग ही शराब का व्यवहार करते हैं, और जहाँ शराब न तो भोज्य पदार्थों का ही कोई महत्वपूर्ण अङ्ग है और न कोई अनिवार्य आवश्यकता ही—शराब-बन्दी आन्दोलन का असफल होना एक ऐसी बात है, जो कल्पना में नहीं आ सकती।

* * *

गूँगे और बहिरों की समस्या

हाल में ही प्रयाग में गूँगे और बहिरों के लिए एक संस्था खुली है। कहते हैं, पञ्जाब, संयुक्त-प्रान्त तथा बिहार और उड़ीसा प्रान्तों में गूँगों और बहिरों के लिए यह अपने ढङ्ग की एक ही संस्था है। उक्त संस्था का सञ्चालन एक कमिटी के द्वारा होता है, जिसके प्रधान आगरा-विश्वविद्यालय के वाइस-चैन्सलर तथा एडवोकेट मुन्शी नारायणप्रसाद जी अस्थाना हैं। कई स्थानीय प्रसिद्ध सज्जन कमिटी के सदस्य हैं। कमिटी की ओर से सङ्गठन-मन्त्री श्री० गौरीशङ्करसिंह श्रीवास्तव का कहना है कि कमिटी के सम्मुख उक्त संस्था की उन्नति के लिए बहुत से कार्यक्रम हैं, परन्तु आर्थिक कठिनाइयों

के कारण वे विचार कार्यरूप में परिणत नहीं किए जा सकते।

कहना नहीं होगा कि गूँगे, बहिरों, अन्धों, कोढ़ियों तथा अन्य प्रकार के अपाहिजों की समस्या देश की एक महत्वपूर्ण समस्या है। अन्य देशों में अपाहिजों को अधिक से अधिक सुविधाएँ दी जाने की चेष्टा की जाती है तथा उनके मानसिक एवं आध्यात्मिक विकास के लिए अधिक से अधिक उत्साह एवं प्रयत्न प्रदर्शित किया जाता है। इस महत्वपूर्ण बात पर भी प्रकाश डालने की आवश्यकता नहीं कि इन अपाहिजों की विकसित-बुद्धि एवं चैतन्य-शक्ति प्रायः साधारणतः स्वरूप एवं पूर्ण-अङ्ग वाले मनुष्यों से अधिक तीव्र तथा पुष्ट होती है। इस अवस्था में विशेष प्रयोगों के द्वारा इनकी शिक्षा आदि का प्रबन्ध करना केवल सामाजिक सेवा ही नहीं, वरन् राष्ट्रीय एवं मानवी दायित्व का पूरा करना है। देश के अन्धों, गूँगों, और बहिरों को पूर्ण-शिक्षित बना कर उन्हें राष्ट्र, समाज एवं मनुष्य जाति के लिए अधिक से अधिक उपयोगी बनाया जा सकता है। अन्य स्वतन्त्र यूरोपीय देशों तथा संयुक्त राष्ट्र में ऐसा ही किया जाता है। अस्तु—

जनता और सरकार, दोनों का ही यह पवित्र कर्तव्य है कि देश के अभागे गूँगे, बहिरों तथा अन्य अपाहिजों के लिए ऐसी उपयोगी संस्थाओं को स्थापित करे, जिनके द्वारा उनकी शिक्षा आदि का उचित एवं भरपूर प्रबन्ध हो सके। हमें प्रयाग के उक्त 'गूँगे और बहिरों वाली संस्था' के प्रबन्ध सम्बन्धी कार्यक्रम का पूरा ज्ञान नहीं है। फिर भी इस प्रकार की संस्थाएँ प्रायः सेवा एवं उच्च आदर्श की पवित्र भावना से ही स्थापित की जाती हैं। इस स्थिति में हम जनता से इस बात की अपील करते हैं कि वह उक्त संस्था के प्रबन्ध तथा उपयोगिता का पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर उसकी आर्थिक कठिनाइयों को दूर करे और उसकी उन्नति में हाथ बटाए। इस स्थान पर हम उक्त संस्था के प्रबन्ध और उपयोगिता सम्बन्धी पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने के विषय में विशेष रूप से ज़ोर डालना अपना कर्तव्य समझते हैं। कारण, पिछले अनुभवों ने हमें बतलाया है कि कभी-कभी सार्वजनिक संस्थाओं के नाम पर व्यक्तिगत स्वार्थ-साधन भी किया जाता है। कभी-कभी तो जनता को ठगने के लिए इस प्रकार की संस्थाओं में बड़े-बड़े लोगों के नाम का भी अनुचित लाभ उठाया जाता है। इस प्रकार की संस्थाओं के सञ्चालक प्रायः सब काम स्वयं सँभालते हुए संस्था को चालू करने तथा अपना स्वार्थ निकालने के लिए संस्था के उच्च-पदाधिकारियों की सूची में बड़े-बड़े तथा प्रतिष्ठित लोगों का नाम जोड़ देते हैं। ये सज्जन भी यद्यपि समयाभाव से उन संस्थाओं का सञ्चालन नहीं कर सकते, तथापि अनुनय-विनय के द्वारा अथवा प्रसिद्धि के निमित्त अपना नाम दे देते हैं। उदाहरण-स्वरूप इस अभागे देश में आज ऐसे विधवा-आश्रमों तथा विधवा-विवाह-समितियों की कमी नहीं है, जो स्वार्थी, लम्पट एवं समाज-द्रोही नराधम के द्वारा स्थापित हुई हैं। इन समितियों के द्वारा उनके अध्यक्ष सार्वजनिक धन से अपनी स्वार्थ-सिद्धि करते हैं। इस दशा में एक ओर हम जनता से अपील करते हैं कि उक्त गूँगे-बहिरों की संस्था में वह यथाशक्ति सहायता कर, ऐसी उपयोगी संस्था की आर्थिक कठिनाई दूर कर दे; वहाँ साथ ही साथ हम जनता से इस बात की भी अपील करना चाहते हैं कि वह उक्त संस्था के प्रबन्ध तथा उपयोगिता सम्बन्धी बातों की भी पूरी जानकारी प्राप्त कर ले और यदि उसमें किसी प्रकार के प्रबन्ध का अभाव हो, तो वह संस्था के अधिकारियों से उसे दूर करने का वचन लेकर ही उसकी सहायता करे। उक्त संस्था की कमिटी के सदस्यों से भी हम इस बात की अपील करना चाहते हैं कि वे इस प्रकार की उपयोगी संस्था के आजीवन एवं साधारण सदस्य बनावें तथा संस्था के प्रबन्ध में भी ऐसे सदस्यों को पूर्ण अधिकार दें।

* * *

बज़ाज जी की सामाजिक सेवा

महात्मा जी के अनुयायियों में समाज-सेवा सम्बन्धी कार्यों में कदाचित् सेठ जमनालाल जी बज़ाज का स्थान अद्वितीय है। अछूतों के सम्बन्ध में बज़ाज जी ने जो कुछ सेवाएँ की हैं, वे सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक रूप से अनुकरणीय हैं। अभी कुछ ही दिन हुए, बज़ाज जी ने एक मन्दिर बनवाया था, जिसमें उन्होंने अछूतों के लिए प्रवेश तथा उपासना का अधिकार किसी

भी उच्चवर्णीय हिन्दू के समान ही रक्खा है। कहना नहीं होगा कि बज़ाज जी के इस व्यावहारिक कार्य से देश एवं समाज का किस भाँति अपूर्व मङ्गल और कल्याण सधा है। सब से प्रसन्नता की बात तो यह है कि बज़ाज जी ने अपने आदर्श की उपासना इस सचाई और निस्पृह भाव से की है कि इनके परिवार वाले भी इनके प्रत्येक सामाजिक एवं राजनीतिक कार्य में इनके अनुयायी हो गए हैं। सत्याग्रह आन्दोलन के समय,जब कि बज़ाज जी जेल में थे,राजनीतिक कार्य में उनकी धर्मपत्नी एवं पुत्रियों की लगन देख कर जनता हैरान रहती थी तथा उनकी सेवा का दृष्टान्त जनता के हृदय में उत्साह एवं जीवन प्रदान करता था। अस्तु—

बज़ाज जी ने हाल में भी सामाजिक सेवा का एक नया आदर्श उपस्थित किया है। बम्बई के समीप विलेपार्ले नामक स्थान में आपने एक हिन्दू-महिला-आश्रम खोला है। इस आश्रम का उद्देश्य हिन्दू-विधवाओं को शिक्षित कर, उन्हें सामाजिक एवं राष्ट्रीय सेवाओं की शिक्षा देना है। समाज-सेवा के पवित्र यज्ञ में बज़ाज जी का यह नया आदर्श एवं पुरानी सेवाएँ आदर की वस्तु हैं और हम किसी भाँति भी उन सेवाओं को विस्मरण नहीं कर सकते। देश की अभागिनी विधवाओं की जो भीषण परिस्थिति है, उस पर विचार करते हुए कोई भी विचार-शील व्यक्ति बज़ाज जी की इस अमूल्य सेवा की स्तुति किए बिना नहीं रह सकता।

उस दिन उक्त हिन्दू-महिला-आश्रम का स्थापन-संस्कार करते हुए बज़ाज जी ने देश की अभागिनी विधवाओं के सम्बन्ध में एक मर्मस्पर्शी भाषण दिया। कहते हैं, उस भाषण में आपने यह भी कहा कि—"महात्मा गाँधी के पूर्व किसी ने भी विधवाओं की भीषण दुरवस्था पर विचार नहीं किया था। यदि बज़ाज जी की ये बातें सत्य हों, तो हम महात्मा जी के प्रति उनकी श्रद्धा एवं भक्ति की प्रशंसा करते हुए भी, उनके इस कथन से सहमत नहीं हैं। हमारा तात्पर्य यह नहीं कि हम महात्मा जी को एक आदर्श समाज-सुधारक तथा विधवाओं के सच्चे शुभेच्छु नहीं मानते ; हमारा आशय केवल इतना ही है कि आधुनिक समय और अङ्गरेज़ी शासन-काल में ही इस अभागे देश में ऐसे कुछ आदरणीय समाज-सुधारक और विधवाओं के शुभेच्छु हो चुके हैं,जिनका नाम प्रातः-स्मरणीय है और जिनकी प्रतिष्ठा समाज-सेवा एवं समाज-सुधार के रूप में महात्मा गाँधी से अधिक नहीं, तो कम भी नहीं है।

जिस दिन आधुनिक युग के समाज-सुधार एवं समाज-सेवा का इतिहास लिखा जायगा, उस दिन राजा राममोहन राय और पण्डित ईश्वरचन्द्र विद्यासागर का नाम सर्वश्रेष्ठ रहेगा। ये प्रातःस्मरणीय सज्जन विधवाओं के बड़े से बड़े शुभेच्छु तथा विधवा-विवाह के बड़े से बड़े प्रचारक थे। इन सज्जनों के जीवन-काल में समाज-सेवा एवं समाज-सुधार का काम तलवार की धार पर चलने से भी अधिक कठिन एवं दुष्कर था। गुजरात, बम्बई और महाराष्ट्र में भी ऐसे आदरणीय समाज-सेवी पुरुष हो चुके हैं, जिन्हें इस पवित्र महायज्ञ में जेल की दारुण कठिनाइयाँ एवं समाज की भयानक यातनाएँ सहनी पड़ी थीं। उन कठिनाइयों तथा उन भयानक यातनाओं की हम आज कल्पना भी नहीं कर सकते। इस स्थिति में उन महापुरुषों को भूलना राष्ट्रीय कृतघ्नता का द्योतक है। हमारा आशय यह नहीं कि हम गाँधी जी की सामाजिक सेवाओं की अवहेलना करें; हमारा तात्पर्य तो केवल इतना ही है कि किसी प्रकार भी उन महापुरुषों को, जिन्होंने समाज-सेवा एवं समाज-सुधार के पवित्र-पथ में अपने जीवन का अधिक से अधिक उत्सर्ग किया है, भूलना, घोर सामाजिक एवं राष्ट्रीय कृतघ्नता करना तथा मनुष्यता और मानव-हृदय के भगवान सम्बन्धी भावों के विरुद्ध विद्रोह करना है।

* * *

बिहार राष्ट्रीय महिला-सम्मेलन

गत २८ वीं और २९ वीं जुलाई को बिहार राष्ट्रीय महिला-सम्मेलन का प्रथम अधिवेशन पटने के 'राधिकासिंह इन्स्टिच्यूट हॉल' में बड़े समारोह के साथ सम्पन्न हुआ। अध्यक्षा का पद श्रीमती कमला नेहरू सुशोभित करने वाली थीं, परन्तु अनिवार्य कारणों से वे पटने न जा सकीं। इस कारण उनकी अनुपस्थिति में श्रीमती रामस्वरूप देवी ने सभापति का आसन ग्रहण किया। श्रीमती रामस्वरूप देवी छपरे के एक सुप्रसिद्ध

ज़मींदार बाबू हरमाधवसिंह की धर्मपत्नी हैं। आपने सत्याग्रह आन्दोलन में भाग लिया था और देश-सेवा के पुरस्कार में आप जेल गई थीं।

सम्मेलन में कुल ९ प्रस्ताव पास हुए, जिनका सारांश इस प्रकार है :—

(१) सम्मेलन स्त्रियों को उनके उस पवित्र अधिकार और कर्त्तव्य का स्मरण दिलाता है, जिससे उन्हें अपने पतियों की जीवन-सङ्गिनी होने का सौभाग्य है तथा पुरुषों को आदेश देता है कि वे अपनी स्त्रियों के कर्त्तव्य-पालन एवं अधिकार प्राप्त करने में यथासम्भव सहायक हों। सम्मेलन स्त्रियों से अपील करता है कि वे इस उद्देश्य की पूर्त्ति के लिए कार्यक्षेत्र में उतरें।

(२) सम्मेलन उन साहसी बहिनों को बधाई देता है, जिन्होंने प्रान्त की स्त्रियों की इतनी दयनीय दशा पर भी, पर्दे के बाहर आकर देश-सेवा में भाग लिया और इस कारण निर्भीकता से जेल गईं।

(३) सम्मेलन प्रान्त की महिलाओं को आदेश देता है कि देश की उन्नति, विकास और स्वतन्त्रता के लिए कार्यक्षेत्र में और भी अधिक उत्साह से सम्मिलित हों।

(४) सम्मेलन प्रान्त की महिलाओं से प्रार्थना करता है कि राष्ट्रीय संस्कृति और सभ्यता को पूर्णतः मालूम करते हुए, वे यथाशीघ्र पर्दे की हानिकर प्रथा को दूर कर दें।

(५) सम्मेलन प्रान्त की महिलाओं से प्रार्थना करता है कि जहाँ तक सम्भव हो, वे स्वदेशी वस्तुओं का प्रयोग करें और जन साधारण में स्वदेशी भावों का प्रचार करें।

(६) सम्मेलन सभी भाइयों और बहिनों का विशेष ध्यान प्रान्त की महिलाओं की निरक्षरता की दयनीय स्थिति की ओर आकर्षित करता है और उनसे प्रार्थना करता है कि वे अपनी शक्ति भर इस निरक्षरता को दूर करने का प्रयत्न करें।

क—सम्मेलन प्रान्त की म्युनिसिपेल्टियों और डिस्ट्रिक्ट बोर्डों से प्रार्थना करता है कि ये संस्थाएँ महिलाओं की शिक्षा का प्रबन्ध करें तथा महिलाओं में शिक्षा-प्रचार करने के निमित्त अधिक संख्या में कन्या-पाठशालाएँ स्थापित करें।

(७) सम्मेलन प्रान्त की महिलाओं से प्रार्थना करता है कि वे बाल-विवाह की दूषित प्रथा रोकने में अपनी पूरी शक्ति लगाएँ तथा शारदा-एक्ट से उचित लाभ उठाएँ।

(८) सम्मेलन प्रान्त की सभी महिलाओं से प्रार्थना करता है कि वे चर्ख़ा चलावें और खद्दर का प्रयोग तथा प्रचार करें।

(९) सम्मेलन निश्चय करता है कि इसका उद्देश्य पूरा करने के लिए सम्मेलन का केन्द्रीय सङ्गठन स्थापित किया जाय, जिसका नाम बिहार प्रान्तीय महिला-समिति हो। यह समिति इस वर्ष के भीतर ही स्थापित हो जाय और इस वर्ष सम्मेलन का कार्य करने के लिए महिला-समिति की एक कार्यकारिणी समिति हो।

हम उक्त बिहार राष्ट्रीय महिला-सम्मेलन के संयोजकों को उनकी इस अद्भुत सफलता पर बधाई दिए बिना नहीं रह सकते, विशेषकर उस अवसर में जब कि पिछड़े हुए बिहार और बिहार प्रान्त की पिछड़ी हुई बहिनों का यह प्रथम, परन्तु पूर्ण सफल सार्वजनिक प्रयत्न है। जो बिहार प्रान्त को जानते हैं, जिन्हें बिहार प्रान्त की सादगी, उसकी लगन, उसकी तन्मयता, उसके त्याग और उसके 'गाँधीवाद' का ज्ञान है; जो १९२०-२१ ई० के असहयोग आन्दोलन एवं गत सत्याग्रह आन्दोलन के अवसरों पर बिहार प्रान्त के अनुपम उत्सर्ग से परिचित हैं, जिन्होंने बिहार प्रान्त की सरल भूमि में एक ओर 'गाँधीवाद' और दूसरी ओर विशुद्ध 'कवित्ववाद' का रहस्यमय मिश्रण देखा है और इन सब बातों को देखते और जानते हुए, जिन्हें बिहारी बहिनों की निरक्षरता एवं अशिक्षा की अत्यन्त दारुण तथा दयनीय परिस्थिति का ज्ञान है, वे भी बिहारी बहिनों को उनके इस अभूतपूर्व एवं पूर्ण सफल सम्मेलन पर बधाई दिए बिना नहीं रह सकते। बिहारी प्रकृति में एक विशेष गुण अथवा त्रुटि है। वह यह कि वे सारी लगन, तपस्या, उत्साह एवं त्याग से अपने उद्देश्य में मौन रूप से निरत रहते हैं और वाह्य संसार को अपने कार्य की सूचना देने की भी चिन्ता नहीं करते। तात्पर्य यह है कि उनमें यश-लिप्सा का अभाव होने से वे चुपचाप काम करना जानते हैं; परन्तु उस काम का प्रचार नहीं करते। नैतिक दृष्टि से यह एक विशेष गुण होते हुए भी व्यावहारिक दृष्टि से इसे हम बिहारी प्रकृति

की एक त्रुटि समझते हैं। उक्त राष्ट्रीय महिला-सम्मेलन की सारी सफलता में इस गुण और त्रुटि की छाया हमें दीख पड़ती है!

सम्मेलन में पास किए गए प्रस्ताव देश, काल और परिस्थिति के अनुसार सर्वथा सङ्गत, उपयोगी, आवश्यक एवं महत्वपूर्ण हैं। विशेषकर हम सम्मेलन के पर्दा सम्बन्धी प्रस्ताव का सादर स्वागत करते हैं। कहना नहीं होगा कि परदे की दूषित प्रथा ने देश की महिलाओं के अज्ञान-वृक्ष को विशेष रूप से सींचा है। इससे केवल मानसिक हानि हो, सो बात नहीं, इस दूषित प्रथा ने देश की महिलाओं का स्वास्थ्य भी नष्ट कर दिया है। बिहार प्रान्त की सब से बड़ी त्रुटि यह है कि इस प्रान्त में पर्दे का प्रचार अन्य प्रान्तों से अधिक है। फिर भी सौभाग्य की बात है कि कुछ समाज-सुधारक बिहारी पुरुषों और महिलाओं के उद्योग से इस घृणित प्रथा के विरुद्ध आन्दोलन होने लगा है। आज से तीन वर्ष और लगभग डेढ़ महीना पहले बिहार प्रान्त ने इस प्रथा के विरुद्ध एक बहुत बड़ा आन्दोलन किया था। पर्दा-प्रथा के विरुद्ध बिहारियों का वह आन्दोलन एक ऐतिहासिक बात है। सन् १६२८ ई० की ८ वीं जुलाई का दिन बिहार के सामाजिक इतिहास में चिर-स्मरणीय रहेगा। कारण, उसी दिन बिहारियों ने एक बृहद आन्दोलन के द्वारा पर्दे के बहिष्कार का प्रयत्न किया था। यद्यपि हमें इस बात का दुख है कि उस आन्दोलन को उचित सफलता न मिल सकी, परन्तु इसका दोष प्रान्त के अज्ञान-वातावरण और पिछड़ी हुई दशा पर ही है, फिर भी उस आन्दोलन का परिणाम यह हुआ कि पिछले सत्याग्रह के दिनों में बहुत सी सम्भ्रान्त एवं प्रतिष्ठित बिहारी बहिनों ने पर्दा छोड़, राष्ट्रीय यज्ञ में पूर्ण भाग लिया था और देश-सेवा के पुरस्कार-स्वरूप जेल भी गई थीं। इस स्थिति में हमारी आन्तरिक इच्छा है कि बिहार प्रान्त से यथासम्भव शीघ्रातिशीघ्र इस घृणित प्रथा का नाश हो। साथ ही हम बिहारी बहिनों और बिहार के समाज-सुधारक भाइयों से इस बात की अपील करते हैं कि वे अपनी सारी शक्ति इस दूषित प्रथा को समूल नष्ट करने में लगा दें; कारण, इससे प्रान्त में केवल समाज-सुधार ही नहीं होगा, वरन् बिहार प्रान्त राष्ट्रीय आन्दोलन में अपनी महिलाओं की अमूल्य सहायता के कारण आज से बहुत अधिक उत्सर्ग कर सकेगा। साथ ही बिहारी बहिनों की शारीरिक, मानसिक विकास में इससे बहुत लाभ होगा।

दूसरी और सब से अधिक आवश्यक बात सम्मेलन के उस केन्द्रीय सङ्गठन के विषय में है, जिसका नाम बिहार प्रान्तीय महिला-समिति है। इस महिला-समिति का सब से अधिक आवश्यक एवं महत्वपूर्ण कार्य प्रान्त की निरक्षर और अशिक्षित बहिनों के भीतर स्थायी प्रचार करना है। हम चाहते हैं कि महिला-समिति की उत्साही बहिनें प्रान्त के प्रत्येक ज़िले में अपने केन्द्र स्थापित करें और उन केन्द्रों के द्वारा प्रान्त की अन्य अशिक्षित बहिनों में शिक्षा-प्रचार करने का काम स्वयं अपने हाथ में लें। इस शिक्षा-प्रचार के साथ ही राष्ट्रीय एवं सामाजिक बातों का भी प्रचार हो सकता है। हम बिहारी बहिनों के इस कार्यक्रम की कठिनाइयाँ समझते हैं। परन्तु कोई भी उपयोगी कार्य कठिनाइयों के बिना सम्भव नहीं है और सच बात तो यह है कि संसार के अमर और सब से बड़े कार्य कठिनाइयों के द्वारा ही पलते और विकसित होते हैं। यदि बिहार की शिक्षित बहिनें हमारे इस कार्यक्रम का पूरा-पूरा पालन कर सकीं, तो हमें इस बात पर पूर्ण विश्वास है कि आने वाले दस वर्षों में बिहार प्रान्त अपनी सामाजिक एवं राष्ट्रीय जागृति में देश के अन्य प्रान्तों को बहुत पीछे छोड़ जायगा। साथ ही हम बिहारी समाज-सुधारक पुरुषों का ध्यान भी बिहार प्रान्त की इस दयनीय आवश्यकता की ओर आकर्षित करते हैं। यदि बिहारी पुरुष बिहारी बहिनों के इस पवित्र कार्य में सहायक हुए, तो वह दिन दूर नहीं है जब कि बिहार प्रान्त का प्रत्येक सब-डिविज़न बारदोली और बोरसद से आगे रहेगा। हमारा पूर्ण विश्वास है कि बिहारी बहिनों ने जिस उद्देश्य को अपने सामने रक्खा है, उसे पूरा करने में भविष्य में दत्तचित्त रहेंगी। उन्हें इस बात को स्मरण रखना चाहिए कि बिहार की अशिक्षित और निरक्षर बहिनों की उन्नति और विकास में जितना हाथ उनका है उतना अन्य किसी का नहीं। इस विशेष परिस्थिति में उनका उत्तरदायित्व महान और उनके कार्य महत्वपूर्ण हैं—यह बात उन्हें कभी भी विस्मरण नहीं करनी चाहिए।

* * *

न्याय-प्रियता का आदर्श

कलकत्ता के चीफ़ प्रेसिडेन्सी मैजिस्ट्रेट ऑनरेबल श्री० सुशीलसिंह ने, जो बिहार और उड़ीसा प्रान्तों के भूतपूर्व गवर्नर, स्वर्गीय लॉर्ड सिंह (सिनहा) के सुपुत्र हैं, हाल में ही बाल-विवाह सम्बन्धी एक अभियोग का निर्णय किया है। अभियोग का संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है :—

गङ्गादास लोखानी और कन्हैयालाल मल ने क्रमशः अपने पुत्र और पुत्री का परस्पर विवाह कराया। वर की अवस्था पन्द्रह वर्ष की और बधू की ग्यारह वर्ष की थी। गङ्गादास लोखानी का कहना था कि मेरी माँ ने, अर्थात् वर की दादी ने, इस बात पर बहुत ज़ोर दिया था कि मेरे पुत्र का विवाह उसके जीवन-काल में ही हो जाय और विवाह के ठीक बारह दिन बाद ही उसका देहान्त हो गया।

इस अभियोग का निर्णय करते समय विद्वान मैजिस्ट्रेट ने अपना कटु-कर्त्तव्य बतलाते हुए गङ्गादास लोखानी और कन्हैयालाल मल को पाँच-पाँच दिन का सादा कारावास और दो-दो सौ रुपयों का जुर्माना किया और कहा, यदि अभियुक्त जुर्माना न अदा कर सकेंगे तो उन्हें इसके बदले एक-एक महीना का कारावास दण्ड भोगना पड़ेगा। कहना नहीं होगा कि कलकत्ता में बाल-विवाह सम्बन्धी यह पहला अभियोग है, जिसका निर्णय सम्राट के क़ानूनी अदालत में हुआ है।

विद्वान मैजिस्ट्रेट के सत्साहस और न्याय-प्रियता की प्रशंसा करते हुए, हम इस अभियोग में उनके निर्णय से सहमत नहीं हैं। हमें इस सम्बन्ध में मैजिस्ट्रेट महोदय अथवा सरकार का ध्यान इस महत्वपूर्ण बात की ओर आकर्षित करने की आवश्यकता नहीं दीख पड़ती कि जिस भाँति देश में "शारदा एक्ट" का विरोध किया जा रहा है, उस भाँति कदाचित ही किसी भी सरकारी क़ानून का विरोध किया गया हो। नमक-क़ानून का उचित विरोध करने पर पिछले वर्ष के सत्याग्रह आन्दोलन में भारत-सरकार के सङ्केत पर प्रान्तीय सरकारों ने केवल नमक-क़ानून दण्ड-विधान के अनुसार लगभग पचास हज़ार सत्याग्रहियों से देश की जेलें भर दी थीं। परन्तु उस नमक-क़ानून-विरोध के एक वर्ष पहले से ही सारे देश के पुराने विचार वाले 'कूप-मण्डूकों' ने बाल-विवाह-विरोधी उचित क़ानून की अवहेलना की थी। आश्चर्य तो इस बात पर है कि सत्याग्रह आन्दोलन से एक वर्ष पहले से ही इन 'घोंघा-बसन्तों' ने शारदा-एक्ट के विरुद्ध प्रदर्शन किए, जुलूस निकाले, सभाएँ कीं, और सरकार को हर प्रकार से खरी-खोटी बातें सुनाईं। परन्तु हमारी बहादुर (!) और न्यायी (?) सरकार इन सारी बातों को अन्धों की भाँति देखती और बहिरों की भाँति सुनती रही। उस समय, लॉर्ड इरविन की सरकार में इन ग़ैर-क़ानूनी प्रदर्शनों, सभाओं और जुलूसों को रोकने के लिए सत्याग्रह-आन्दोलन की भाँति न तो चेष्टा ही थी और न शक्ति तथा पराक्रम ही। उस समय मालूम होता था मानो भारत में ब्रिटिश सत्ता का अस्तित्व है ही नहीं।

कहना नहीं होगा कि कलकत्ता की क़ानूनी अदालत का उक्त निर्णय कदाचित देश के इस प्रकार के निर्णयों में प्रथम ही है। सम्भव है, कहीं इस प्रकार के एक-दो अभियोग और भी सम्राट की क़ानूनी अदालतों के सम्मुख उपस्थित किए गए हों। हम जहाँ कलकत्ता के चीफ़ प्रेसिडेन्सी मैजिस्ट्रेट को उनकी न्याय-प्रियता और कलकत्ता पुलीस को ऐसे अभियोगों पर मुक़द्दमा चलाने के शुभ-प्रयत्न पर बधाई देते हैं; वहाँ भारत-सरकार एवं प्रान्तीय सरकारों की, ऐसे अभियोगों के प्रति साधारणतः निश्चेष्ट रहने और विरक्ति ग्रहण करने के लिए, निन्दा करते हैं। दो वर्ष से अधिक समय होगया, जब कि व्यवस्थापक सभा ने लॉर्ड इरविन की स्वीकृति के साथ शारदा-एक्ट पास किया था; परन्तु उस अवधि से आज तक वैभव-शाली एवं शक्ति-सम्पन्न भारत-सरकार की नाक के नीचे इस अभागे देश में लाखों बाल-विवाह हुए और इन विवाहों में बहुत से तो सरकार को चैलेञ्ज देकर केवल क़ानून का विरोध करने के लिए ही सम्पन्न किए गए। फिर भी हमारी बहादुर (!) सरकार ने इस ओर न्याय का हाथ नहीं उठाया। सरकार को इस निश्चेष्टता का जो कुछ भी रहस्य हो, हमें इससे कोई मतलब नहीं। हम तो केवल इस निश्चेष्टता की आड़ में भारत-सरकार के हृदय में देश की शुभ-कामना का अभाव पाते

(शेष मैटर ६२६वें पृष्ठ में देखिए)

नारी-जीवन

[श्री० आनन्दीप्रसाद जी श्रीवास्तव]

पत्र-संख्या ३१

[वृद्ध पत्नी की ओर से बाल-विधवा को]

बहिन,

तुम्हारी आशङ्का है
व्यर्थ, नहीं होगा वैसा,
जहाँ हुआ सम-बल पक्षों में
वहाँ भला झगड़ा कैसा ?

अत्याचार तभी होता है
हो जब एक पक्ष निश्शक्ति,
जब दोनों सम हो जाते हैं
होती आपस में अनुरक्ति

अगर बराबर वाले लड़ते
ही रहते, तो जग में आज
सजा हुआ होता कितने ही
युद्धों का भयकारी साज,

हैं जितने सम राष्ट्र सभी
आपस में लड़ते ही रहते,
और ह्रास की धारा में वे
सभी समय परवश बहते।

जब नर जन की, नारी जन की
हो जावेगी शक्ति समान,
तब नर नहीं करेंगे नारी—
जन का पद-पद पर अपमान,

वे उनसे भयभीत रहेंगे,
भय से आती है वह प्रीति
जिसको सामाजिक कहते हैं,
व्यवहारिक है जिसकी नीति।

उस सामाजिक प्रीति-नींव पर
होगा आदर-गृह-निर्माण,
नहीं चलेंगे तब आपस में
व्यङ्ग भरे वचनों के बाण।

इस आदर से पैदा होगा
सत्य प्रणय या सच्चा प्रेम,
जो साधेगा सब समाज का
सन्तत उन्नतिकारी क्षेम।

बहिन, अगर अब भी कुछ शङ्का
हो, तो उसको लिख देना,
अथवा, यदि मैं भ्रम-वश होऊँ
तो तुम मुझको सिख देना।

बहिन, सुनाती हूँ मैं तुमको
फिर अपना आगे का हाल,
किस प्रकार बदला करती है
जग में घटनाओं की चाल।

गई उस युवक के घर में जब
तोष रहा मुझको कुछ काल,
सभी सुभीता वह करता था
पूछ-पूछ कर जी का हाल।

बहिन, युवक था अभी, काम की
ज्वाला से उसका परिचय
नहीं हुआ था, इसीलिए मैं
रहती थी सब काल सभय।

हम दोनों ही घर में थे, था
उसमें कोई और नहीं,
तरुणी और युवक का है
एकान्त-वास क्या उचित कहीं ?

जब चल देती नौकरनी तब
मैं तो डरती रहती थी,
युवक बड़ा सुन्दर था, जाने
किस धारा में बहती थी !

एक दिवस कर स्नान, स्नान-
गृह से मैं थी बाहर आई,
कुञ्चित लटें कपोलों पर थीं
मुख के ऊपर थीं छाई।

पहन रही थी मैं तन्मय हो
अधभीगी अपनी सारी
सम्मुख था दर्पण, दिखती थी
मुझे स्वीय शोभा भारी ।

वस्त्र पहन कर गई शीघ्र
अपने कमरे में मैं बैठी
उसी समय अपने भविष्य की
चिन्ता मम चित में पैठी ।

रही सोचती बड़ी देर तक,इसी
बीच में अति सुकुमार
दो हाथों ने आँख मूँद कर
शिर पर रक्खा सुख का भार ।

मैं पहिचान गई अभिभावक
मेरा, वही युवक था हाय !
जाने क्या है इसके मन में
लगी सोचने मैं निरुपाय ।

तन में था उस काल हो रहा
मेरे विद्युत का सञ्चार,
भाता भी था और नहीं भी
मुझको उसका यह व्यवहार ।

❀ ❀ ❀

पत्र-संख्या—३२

[बाल-विधवा की ओर से वृद्ध पत्नी को]

बहिन,

तुम्हारा पत्र प्राप्त कर
कम है अब शङ्का मेरी,
यही देखना है होने में
यह लगती कितनी देरी ।

पर क्या सम-बल के पक्षों में
युद्ध न होते बारम्बार ?
क्यों होता उनमें न प्रेम के
शुद्ध भाव का है सञ्चार ?

नर-नारी में क बार के
रण से ही अति क्षति होगी,
दोनों पक्षों को उसमें
क्या नहीं बड़ी दुर्गति होगी ?

यदि समबल से होता है
शुचि प्रेम, तो नहीं क्यों होता
राष्ट्रों में जगती के ? उनमें
युद्ध तब कहीं क्यों होता ?

मेरा तो विचार है, सम बल
के पक्षों में यही विचार
रहता है, दोनों में कैसे
होवे एक पक्ष निस्सार ।

साम-दाम का क्यों प्रयोग
सम बल के पक्षों में होता ?
सम बल होने के कारण
क्यों वैर नहीं उनका होता ?

नर-नारी-जन का हो जावेगा
आधा-आधा संसार,
युद्ध अगर उनमें होगा तो
होगा बहुदिन विविध प्रकार,

भस्म नहीं क्या भू-मण्डल को
कर देगी वह भीषण आग,
नहीं समझ में आता उनमें
होवेगा कैसे अनुराग ?

नर में है अधिकाराकांक्षा,
नहीं अभी नारी जन में,
वह उस काल प्रकट हो जावेगी
उनके भी मृदु मन में ।

तब होगा क्यों नहीं परस्पर
उन दोनों में गुरु संग्राम ?
कैसे होगा उन दोनों में
मृदुल प्रणय या प्रेम ललाम ?

बहिन सुनाती हूँ फिर तुमको
कुछ अपना आगे का हाल,
नौकर वह हो रहा बहुत ही
उत्तेजित सा था उस काल।

मैंने उसे बहुत समझाया
तब माना वह, दूर रहा,
क्रोध दबा भीतर ही भीतर
मैंने मन में क्लेश सहा !

एक नगर में तब हम उतरे
था वह मधुर उषा का काल,
मैंने सोचा, यह लावेगी
शिर पर जाने क्या जञ्जाल।

जब मानस में दुख होता तब
मधुर उषा भी अति दुखकर
होती है, चन्द्रिका तनिक भी
होती नहीं हमें सुखकर।

गए एक सरिता के तट पर
हम दोनों ने स्नान किया,
मैंने अपने मन में चण्डी
देवी का आह्वान किया।

बहुत दूर पर उस नगरी से
देख पड़ रहा था जङ्गल,
चले उसी की ओर उस समय
हम दोनों ले भोजन जल।

हम लोगों के पृष्ठ-भाग में
सरिता बहती जाती थी,
अति पवित्र थी, पवित्रता का
मार्ग मुझे दिखलाती थी।

'यह पवित्र करती लोगों को,
मैं क्या रह सकती न पवित्र'
यही सोच कर मन में मेरे
आने लगी सुशक्ति विचित्र।

असहायों का एक सहारा
बन आता जाता था पास,
थकी जा रही थी मैं, मुझको
था कम चलने का अभ्यास।

तब कुछ काल बैठ कर पथ में
ही हम दोनों सुस्ताए,
मैंने अपने मन के भीतर
बल के अमित भाव पाए।

लगी सोचने, प्राण जायँ पर सतत करूँगी सत-रक्षा,
होऊँगी बलिदान, तुम्हीं पर आज मरूँगी, सत-रक्षा।
टूट पड़े आकाश, धरा भी चाहे धसक जाय इस काल,
करने दूँगी निज सतीत्व का नहीं दुष्ट को बाँका बाल।

❀ ❀ ❀

(६२३वें पृष्ठ का शेषांश)

हैं—वह अभाव, जो विदेशी सरकारों का स्वाभाविक गुण अथवा अवगुण है।

अन्त में हम कलकत्ता के विद्वान प्रेसिडेन्सी मैजिस्ट्रेट ऑनरेबल श्री० सुशीलसिंह की न्याय-प्रियता की प्रशंसा करते हुए भी हम उनके निर्णय से मतभेद रखते हैं। देश की इस विषम सामाजिक परिस्थिति में, जब कि प्राचीन रूढ़ियों के कारण देश अपना सत्यानाश कर रहा है, बाल-विवाह सरीखे सामाजिक एवं नैतिक अपराध के लिए अधिक से अधिक क़ानूनी दण्ड दिया जाना चाहिए। विशेषकर उस अवस्था में, जब कि इस उचित क़ानून के विरोध की भावनाएँ भी इस प्रकार के अपराधों को प्रोत्साहित करती हैं। आशा है, भारत के अन्य मैजिस्ट्रेट भी इस प्रकार के सामाजिक, नैतिक, नागरिक एवं क़ानूनी अपराधों के लिए न्याय-प्रियता का आदर्श उपस्थित करेंगे और अधिक से अधिक क़ानूनी दण्ड देने का प्रयत्न करेंगे। भारत और प्रान्तीय सरकारों का भी ध्यान देश की इस भीषण सामाजिक ह्रास की ओर आकर्षित करना हम अपना पवित्र उत्तरदायित्व समझते हैं।

उपन्यास-कला और श्री० प्रेमचन्द के उपन्यास

[श्री० केशरीकिशोर शरण जी बी० ए० (ऑनर्स), साहित्य-भूषण, विशारद]

(गताङ्क से आगे)

भाषा मँजी हुई और प्रौढ़ होते हुए भी यत्र-तत्र कुछ भूलें रह ही गई हैं। 'उन' और 'उस' के प्रयोग में काफ़ी गड़बड़ी हो गई है। रानी जाह्नवी के मुख से विनय के लिए दोनों ही शब्द निकलते हैं। वह सोफ़ी से (२५३ पृ०) कहती हैं—"विनय को दिखा दो कि तुम उसे भूल गई, तुम्हें उसकी चिन्ता नहीं है।" और पुनः (२५८ पृ०) कहती हैं—"तुम्हारे पत्र से यह प्रकट होना चाहिए कि तुम उनके (विनय के) प्रेम की अपेक्षा उनके जातीय भावों की ज़्यादा क़द्र करती हो।"

फिर नायकराम के लिए भी आप 'उन' और 'उस' दोनों का प्रयोग करते हैं—"नायकराम अब तक कमज़ोर थे, उनके बचने की आशा ही न रही थी; पर ज़िन्दगी बाक़ी थी, बच गए।"

—रङ्गभूमि, पृ० ५२३

"नायकराम अभी तक चलने-फिरने में कमज़ोर था, पहाड़ों की चढ़ाई में थक कर बैठ जाता, भोजन की मात्रा भी बहुत कम हो गई थी।"

—रङ्गभूमि, पृ० ५२६

'रोआँ' शब्द के स्थान पर रङ्गभूमि में 'रोयाँ-रोयाँ' छपा हुआ है। प्रकाशक ने इसे प्रेस की भूल बतलाते हुए समालोचक श्री० रामदास जी गौड़ से उसके लिए क्षमा-याचना की थी। परन्तु वास्तव में यह बात मुझे ठीक नहीं प्रतीत होती। निर्मला में भी 'रोयाँ-रोयाँ' ही छपा है। दोनों विभिन्न प्रकाशकों से एक ही प्रकार की भूल होना युक्ति-सङ्गत नहीं प्रतीत होता। यही नहीं, कहीं-कहीं मुहाविरे का भी ठीक प्रयोग नहीं हुआ है। जैसे ये प्रायः लिखा करते हैं कि 'आशा पर तुषारपात हो गया।' परन्तु इसका शुद्ध रूप है 'आशा पर पानी फिर जाना' तुषारपात होना नहीं। पुनः निर्मला में इन्होंने 'कुएँ में झोंकना' लिखा है। परन्तु 'झोंकना' शब्द आग के लिए उपयुक्त होता है, कुएँ में 'ढकेलना' होता है, झोंकना नहीं। इसके अतिरिक्त प्रेमचन्द जी बराबर 'गयी' के स्थान पर 'गई' और 'आयी' के स्थान पर 'आई' लिखते हैं। वज़न में तो दोनों ठीक हैं, परन्तु व्याकरण के नियमानुसार ऐसा प्रयोग अशुद्ध है। कारण, जब पुल्लिङ्ग रूप 'गया' और 'आया' है, तो स्त्रीलिङ्ग में 'गयी' और 'आयी' अवश्य होना चाहिए। एक बात और है। वह यह है कि 'समीर' शब्द को इन्होंने बराबर स्त्रीलिङ्ग में व्यवहार किया है, जो पुल्लिङ्ग होता है। परन्तु ये सब भूलें केवल विचार-भेद के कारण हुई हैं, अतएव क्षन्तव्य हैं। इनकी शैली में हास्यरस का अत्यन्त अभाव है। यद्यपि मोटेराम शास्त्री का जहाँ प्रसङ्ग आता है—जिसके कारण प्रेमचन्द जी को बहुत कष्ट उठाना पड़ा था—तो कुछ मनोविनोद अवश्य होता है, परन्तु उसकी मात्रा अधिक नहीं है। इसका कारण कदाचित् यह है कि इनके उपन्यासों के विषय अत्यन्त गम्भीर होते हैं।

चरित्र-चित्रण और घटना-वैचित्र्य

अब उपन्यास के दूसरे मुख्य स्तम्भ चरित्र-चित्रण और घटना-वैचित्र्य की दृष्टि से विचार करना आवश्यक है। परन्तु इसके पूर्व कि हम उन पर कुछ अपना विचार प्रकट करें, यह बतलाना आवश्यक प्रतीत होता है कि चरित्र और घटना में क्या सम्बन्ध है। जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है, उपन्यासों में मनुष्य का चरित्र, उसके कार्य तथा उससे सम्बन्ध रखने वाली घटनाओं का वर्णन रहता है। परन्तु मनुष्य जो कुछ कार्य करता है, वह मन की प्रेरणा से ही करता है। ऐसी दशा में घटना-निवेष चरित्र-चित्रण के अधीन ही होना चाहिए, पृथक और स्वतन्त्र नहीं। घटनावली-निर्मित चरित्रों का विकास स्वाभाविक नहीं होता, अतएव वे पाठक का मनोरञ्जन तो अवश्य

कर सकते हैं, और करते भी हैं; परन्तु उनके हृदय को प्रभावित नहीं कर सकते। विशेष कर प्रेमचन्द जी के उपन्यास चरित्र-प्रधान (Novel in character) हैं। 'चरित्र-प्रधान' उपन्यास में चरित्र के विकास से ही घटनाओं की सृष्टि होती है। वे घटनाएँ साधारण, स्वाभाविक और प्रायः रहस्य-विहीन होती हैं। पाश्चात्य विद्वान एडविन मूर का विचार है :—

'The plot of a novel of character should be loose and easy. As in the novel of action the characters are designed to fit the plot, here the plot is improvised to elucidate the character.'

प्रेमचन्द जी ने भी इसी सिद्धान्त का सर्वत्र पालन किया है। प्रेमाश्रम में जब विलासी से ग़ौस ख़ाँ 'छेड़छाड़' प्रारम्भ करता है और वह क्रोधोन्मत्त हो अपने पति और पुत्र के पास जाती है, तो यह स्पष्ट हो जाता है कि मनहर (विलासी का पति), जो अपनी इज़्ज़त-आबरू के लिए जान की भी परवा नहीं करता, ग़ौस ख़ाँ का प्राण लिए बिना उसे न छोड़ेगा। इस अवश्यम्भावी घटना के आभास की परिपुष्टि पुनः इस बात से और भी हो जाती है, जब वह यह सब सुन कर खेत काटने में तल्लीन हो जाता है। मानो कुछ 'गुनावन' (विचार ?) कर रहा हो, भूख-प्यास की भी सुधि नहीं रहती। अपिच गाँव वालों का उस मुक़दमे में फँस जाना, या नहीं तो फँसाया जाना निश्चित ही था और उन पर अन्याय होते देख, प्रेमशङ्कर के ऐसा ग़रीबों का सहायक चुप नहीं बैठ सकता। अतएव प्रेमाश्रम की सभी घटनाओं का प्रतिफलन पात्रों के चरित्र के विकास से ही होता है। रङ्गभूमि में पुत्र के प्राण बचाने वाली सुन्दर सुशील बालिका पर कुँवर साहब और रानी जाह्नवी का अनुरक्त होना स्वाभाविक ही है। और विनय का आकृष्ट नहीं होना ही आश्चर्य की बात होती। पुनः, जब भैरो को सूरदास की शारीरिक शक्ति का पता लग गया और उसे यह मालूम होगया कि उससे पार पाना कठिन है, फिर भी इस बात पर वह तुला हुआ था कि किसी न किसी प्रकार सूरे को नीचा दिखाऊँ, तो वैसे अन्धे-अपाहिज को, जिसके यहाँ "अन्धेपन के सिवा और रक्खा ही क्या था", कष्ट देने के लिए उसकी झोपड़ी में आग लगाने के अतिरिक्त दूसरा उपाय न था। और भी, जब सूरदास भैरो को रुपया लौटाने गया, तब यह निश्चित था कि भैरो की प्रकृति का पुरुष सुभागी को अवश्य मार कर घर से निकाल देगा; वैसी दशा में सूरदास को उसे रखना हो पड़ेगा और प्रतिशोध का दूसरा उपाय न देख कर, भैरो राजा महेन्द्रकुमार से मिलने का अवश्य प्रयत्न करेगा, जिन्हें सूरे के कारण बहुत लाञ्छन और अपमान सहना पड़ा था। वे भी ऐसे सुअवसर को हाथ से न जाने देंगे। अतएव यह स्पष्ट है कि घटना-क्रम और कहानी का प्रस्तार अत्यन्त सङ्गत और स्वाभाविक रीति से हुआ है। इसी प्रकार अन्य उपन्यासों में भी है। हाँ, दो-एक स्थल पर कल्पित घटना का आधार इसलिए लेना ही पड़ा है, जिसमें कथा-वस्तु का प्रस्तार हो। जैसे, सेवा-समिति के अभिनय में विनय का आग से जल जाना और सोफ़िया द्वारा प्राण-रक्षा, इत्यादि। वास्तव में यह घटना आकस्मिक है, परन्तु किसी भी दशा में अप्रासङ्गिक नहीं। बल्कि यह कथावस्तु के प्रस्तार में पूरी सहायता देती है तथा इसी के कारण पात्रों का चरित्र भी पूर्ण प्रकाश में आता है। इसी घटना के कारण महेन्द्रकुमार, जानसेवक की प्रार्थना को अस्वीकार नहीं करते, जिसके कारण सत्याग्रह संग्राम प्रारम्भ होता है, जिसमें प्रमुख पात्रगण आहत होते हैं और यह उपन्यास समाप्त हो जाता है। इस प्रकार की कतिपय घटनाओं का उल्लेख आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य है।

चरित्र-चित्रण

अब हम एक अत्यन्त गूढ़ और गहन विषय में प्रवेश करते हैं—यह है चरित्र-चित्रण। यह कार्य बड़ा नाज़ुक है। ज़रा सी भी असावधानी हुई और सारे परिश्रम पर पानी फिरा। यही नहीं; यह 'आसान भी है, दुश्वार भी है।' आसान इसलिए कि कैसा ही चरित्र क्यों न हो, वह किसी न किसी मनुष्य के चरित्र से कुछ न कुछ मिल ही जायगा। और दुश्वार भी इसीलिए है कि कितना ही सुन्दर चरित्र क्यों न हो, अदोष और सम्पूर्ण नहीं हो सकता। इसका क्या कारण है ? बात वास्तव में यह है कि मनुष्य का मन विलक्षण होता है ! उस पर 'मनोविज्ञान के नियमों की अखण्ड सत्ता नहीं देखी जाती।'* मनःशास्त्र में जिस कारण से जैसे कार्य की उत्पत्ति का

* साहित्य-सन्दर्भ, पृष्ठ १६७-७०

होना वर्णित है, उस कारण से कभी-कभी क्या, प्रायः वैसा कार्य नहीं उत्पन्न होता। दूसरी बात यह है कि सब मनुष्यों की ज्ञानेन्द्रियों की ग्राहिका-शक्ति भी एक सी नहीं होती। किसी अवस्था-विशेष में पड़ने पर मुरली जिस प्रकार का व्यवहार करता है, मदन उस प्रकार का नहीं करता, यह बात हम प्रतिदिन प्रत्यक्ष देखते हैं। अतएव ऐसी दशा में मनोविज्ञान के नियमों को आधार-भूत मानते हुए भी उनसे विचार-परम्परा को जकड़ लेना ठीक नहीं। तब लेखक अपनी कल्पना-शक्ति से काम लेता है। परन्तु कल्पना-शक्ति निजत्व से सम्बन्ध रखती है और इस कारण लेखक विभिन्न पात्रों के मनोभावों और संस्कारों के अनेकत्व में उनका सम्पूर्ण और यथार्थ ज्ञान नहीं प्राप्त करता, अतएव अपने ही मन के माप से दूसरों के मन की 'माप-तोल' करता है। परन्तु प्रत्येक मनुष्य के संस्कार भिन्न-भिन्न होते हैं और उनके अनुसार कार्य-कारण भी। वे किसी नियमावली के पाबन्द नहीं होते, अतएव लेखक के मनोभावों से चरित्र के मनोभावों में विभिन्नता अवश्य होगी। सारी दुनिया उसी में अन्तर्भुक्त तो नहीं है। इन्हीं कारणों से चरित्र-चित्रण में लेखक को अत्यन्त अजेय कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। यदि मनोविज्ञान के शुष्क नियमों का ही पूर्ण पालन करे तोभी चरित्र-चित्रण सुन्दर और सम्पूर्ण नहीं होता और यदि कल्पना का ही प्रयोग करे तोभी नहीं। इस 'ट्रायल वाई कम्परगेशन' से जो लेखक बेदाग़ बच जाता है, वास्तव में वही प्रतिभा-सम्पन्न लेखक है।

प्रेमचन्द जी के जितने चरित्र हैं, सभी एक ही रङ्ग में रँगे हुए, परन्तु एक दूसरे से बढ़ कर हैं, सबका आदर्श और अभिप्राय प्रायः एक ही है—यदि विभिन्नता है तो उपायों और परिस्थितियों की। प्रायः सभी पात्रियाँ दया और प्रेम की मूर्त्तियाँ है, अस्मत की देवियाँ है। पति-सेवा ही उनके जीवन का एकमात्र उद्देश्य है। उससे वञ्चित हो, वह जीवन धारण करना नहीं चाहतीं। समयाभाव और विस्तारभय के कारण हम सभी चरित्रों के चित्रण पर विचार नहीं कर सकते। इस कारण दो-तीन प्रमुख और सुन्दर चरित्रों पर ही विचार करना श्रेयस्कर होगा।

प्रेमचन्द जी के पुरुष चरित्र दो प्रकार के हैं। एक सेवा-भाव लेकर अवतीर्ण होता है, दूसरा स्वार्थ-भाव लेकर। पहला दूसरों के लिए जीता है, दूसरा अपने लिए। पहली श्रेणी के चरित्रों में प्रेमशङ्कर, विनय और चक्रधर का नाम लिया जा सकता है, दूसरी में ज्ञान-शङ्कर, जानसेवक और वज्रधर का।

सूरदास

इनके अतिरिक्त एक नवीन चरित्र की सृष्टि हुई है, जिसकी श्रेणी सबसे अलग और निराली है। उसके जोड़ का दूसरा चरित्र भारतीय साहित्य में नहीं है—होगा या नहीं, यह नहीं कहा जा सकता। इस चरित्र के लिए—जैसा कि लोग कहते हैं; स्वयं श्री प्रेमचन्द जी को नाज़ है। वास्तव में सूरदास का चरित्र-चित्रण अत्यन्त सूक्ष्म तथा विशाल हुआ है। ऐसे चरित्र की सृष्टि कर प्रत्येक लेखक के हृदय में प्रसन्नता की लहरें अवश्य उठेंगी। सूरदास कल्पित होते हुए भी भारतवर्ष के अन्य अन्धों से किसी भी दृष्टि में बढ़ा हुआ नहीं प्रतीत होता। अन्धे सूक्ष्मदर्शी और ज्ञानी होते ही हैं। कारण ईश्वर जब मनुष्य की बहिर्दृष्टि को अपहृत कर लेता है तो अन्तर्दृष्टि को खोल देता है, वास्तव में यही अन्तर्दृष्टि सच्ची दृष्टि है। बाहरी आँखें तो धोखा देने वाली हैं। सूरदास के चरित्र को स्वयं लेखक ने निम्नलिखित शब्दों में चित्रित किया है—"वह यथार्थ में खिलाड़ी था—वह खिलाड़ी, जिसके माथे पर कभी मैल नहीं आया, जिसने कभी हिम्मत नहीं हारी, जिसने कभी क़दम पीछे नहीं हटाए; जीता तो प्रसन्नचित्त रहा, हारा तो प्रसन्नचित्त रहा; हारा तो जीतने वाले से कीना नहीं रक्खा, जीता तो हारने वाले पर तालियाँ नहीं बजाईं; जिसने खेल में सदैव नीति का पालन किया, कभी धाँधली नहीं की, कभी द्वन्द्वी पर छिप कर चोट नहीं की। भिखारी था, अपङ्ग था, अन्धा था, दीन था, कभी भरपेट दाना नहीं नसीब हुआ, कभी तन पर वस्त्र पहनने को नहीं मिला; पर हृदय, धैर्य और क्षमा, सत्य और साहस का अगाध भण्डार था।

देह पर मांस न था, पर हृदय में विनय, शील और सहानुभूति भरी हुई थी।

हाँ, वह साधु न था, महात्मा न था, देवता न था, फ़रिश्ता न था, एक क्षुद्र, शक्तिहीन प्राणी था, चिन्ताओं और बाधाओं से घिरा हुआ था, जिसमें अवगुण भी थे

और गुण भी। गुण कम थे, अवगुण बहुत। क्रोध, लोभ, मोह, अहङ्कार, ये सभी दुर्गुण उसके चरित्र में भरे हुए थे, गुण केवल एक था। किन्तु ये सभी दुर्गुण उस एक गुण के सम्पर्क से देव-गुणों का रूप धारण कर लेते थे। क्रोध सत्क्रोध हो जाता था, लोभ सदनुराग, मोह सदुत्साह के रूप में प्रकट होता था और अहङ्कार आत्माभिमान के वेश में। और वह गुण क्या था? न्यायप्रेम, सत्यभक्ति, परोपकार, दर्द या उसका जो नाम चाहे रख लीजिए। अन्याय देख कर उससे न रहा जाता था, अनीति उसके लिए असह्य थी।

विनय—वह एक गम्भीर, शान्त, विचारशील, साहसी नवयुवक था। वह जन्म का ही विरागी था। राजकुमार होते हुए भी नित्य कम्बल बिछा कर ज़मीन पर सोता था और कम्बल ही ओढ़ता था। जलपान के लिए मुट्ठी भर चने, भोजन के लिए रोटी और साग उसके लिए पर्याप्त थे। इसके अतिरिक्त उसे किसी वस्तु की आकांक्षा नहीं थी। उसका जन्म ही हुआ था, दूसरों की सेवा करने के लिए। परन्तु उसके ऐसे विरागी पुरुष को भी 'मदन' ने अपने 'पुष्पबाण' का निशाना बनाया। यही नहीं, बल्कि उसका सर्वनाश कर दिया। उसके जीवन का प्रवाह ही कुछ काल के लिए बदल गया। उसका आत्मसम्मान, उसकी बुद्धि, उसका पौरुष, धर्म, सब कुछ प्रेम के अग्निकुण्ड में स्वाहा हो गया। वह सोफ़िया का पता जानने के लिए इन्द्रदत्त के चरणों पर गिरते हुए भी ज़रा न हिचका। उदयपुर की प्रजा पर प्रतिहिंसा के भाव से अमानुषिक अत्याचार करवाते हुए ज़रा न सहमा। उसका नैतिक पतन यहाँ तक हो जाता है कि जिस माता की रुग्णावस्था का हाल सुन कर वह चोर की भाँति जेल से निकल भागा, उस माता की उसे, अपनी धुन में याद भी न रही। सोफ़िया से मिलने के पश्चात् वह उसकी ओर से निराश हो, घर को चला तो सही, परन्तु जब वह पुनः रास्ते में मिली तो उसी के इच्छानुसार बिना किसी से कहे-सुने एक अज्ञात स्थान में रहने लगा। दीन-दुनिया से बिलकुल मुँह छिपा लिया। काशी आने पर भी अनिच्छा या परिस्थिति के कारण सत्याग्रह में उसने उस उत्साह के साथ भाग नहीं लिया, जैसी कि उससे आशा की जा सकती थी। परन्तु, यद्यपि कुछ काल के लिए उसका भीषण परिवर्त्तन हो गया था, परन्तु संस्कार तो नहीं बदला था, कारण, वह तो अपरिवर्तनीय वस्तु है। अतएव जब उसके चरित्र पर लोगों ने तरह-तरह का आक्षेप किया, तो उसने आत्म-हत्या कर ली। उसने दिखला दिया कि वीर पुरुष जीना भी जानते हैं और मरना भी। इसी आत्मोत्सर्ग ने उसे अमर बना दिया। जो देश-द्रोही, स्वार्थी, कामी और न जाने क्या-क्या कहलाता, वह देवतुल्य, त्यागमूर्त्ति, देश का प्यारा, जनता की आँखों का तारा बन गया।

ज्ञानशङ्कर—यह एक स्वार्थी, लोभी, और सङ्कीर्ण हृदय का पुरुष था। शिक्षा ने उसे वाणी में प्रवीण, तर्क में कुशल, व्यवहारों में चतुर बना दिया था, परन्तु साथ ही साथ स्वार्थ और स्वहित का दास भी। उसके घरवालों ने कुल-मर्यादा की रक्षा में अपनी श्री का अन्त कर दिया था, अतएव ऐसी दशा में उसे केवल सन्तोष ही से शान्ति मिल सकती थी। परन्तु अभाग्यवश उसकी लालसाएँ अपरिमित थीं। उसने धन के लिए ऐसे चचा से विरोध किया, जिसने उसे पुत्र की तरह पाला-पोसा था और जो उस पर सदा जान देता था। धन के लिए उसने क्या नहीं किया? प्रेम का स्वाँग भरा। बाल बढ़ाया, वस्त्र रँगाया, भभूति रमाई, योगी बना। यहाँ तक कि कमर भी हिलाई। यदि इसका बाहर और भीतर एक सा रहता तो हम इसे देवता की भाँति श्रद्धा और स्नेह की दृष्टि से देखते। इसकी बलाएँ लेते, शीश पर चढ़ाते, इसकी पूजा करते; परन्तु इन सब भक्ति-भावनाओं के आडम्बर के बीच वह विषाक्त और धूमिल हृदय छिपा हुआ था, जिसे देख कर हमारा मस्तक एक बार घृणा और लज्जा से नत हो जाता है। उसने अपनी धन-पिपासा को तृप्त करने के लिए, एक भोली-भाली, किन्तु अभिमानिनी विधवा को अपने कपट और प्रेम के जाल में फँसाया। सौन्दर्य साधारणतः हृदय में वासना को उद्दीप्त करता है, जिसके वशीभूत हो, धन, ख्याति, सम्मान किसी की भी चिन्ता नहीं रहती। यह पामर उस बाला से प्रेम करता था अवश्य, परन्तु इसलिए नहीं कि वह उसके सौन्दर्य का उपासक था, बल्कि इसलिए कि वह उसे अपने वश में लाकर उसके धन का पूर्ण स्वामी बने। उसकी काम-पिपासा भी स्वभावतः जाग्रत हुई अवश्य, परन्तु वह गौण वस्तु थी। मुख्य उद्देश्य तो था, धन की लालसा। कुछ काल के

लिए उसके पाँसे चित पड़े अवश्य, परन्तु उसका अन्त क्या हुआ? उसने धन के लिए ही रायसाहब को विष दिलवाया। उनकी सम्पत्ति उसे मिली अवश्य, परन्तु वह उसका उपभोग न कर सका। वह अभिमान और अज्ञान में अपने को, अपने भाग्य का विधाता समझे बैठा था, परन्तु वास्तव में वह उसके हाथों का खिलौना था। धन की वेदी पर उसने लोक-निन्दा, कुल-मर्यादा, आत्म-सम्मान, यहाँ तक कि अपनी प्राणप्यारी सती स्त्री विद्या को भी भेंट कर दिया; परन्तु इससे उसे शान्ति न मिली। उसे शान्ति मिली तो बस गङ्गा की गोद में। सम्पत्तिशाली होकर वह कुछ उदार, दयालु, दीन-वत्सल और कर्त्तव्य-परायण अवश्य हो गया था, परन्तु यह उद्रेक इस कारण से नहीं हुआ था कि उसकी नैतिक शक्ति का पूर्ण विकास हो चुका था। इसके विपरीत यह उसके ह्रास की उस सीमा का द्योतक था, जहाँ सद्गुणों और दुर्गुणों का एक स्वरूप हो जाता है। प्यास बुझ जाने पर हम बर्फ़ सदृश शीतल जल दूसरों को दे देते हैं या फेंक देते हैं, परन्तु पिपासाकुल रहने पर गरम जल का एक बूँद भी बड़े प्रयत्न से रखते हैं। इसका कारण उदारता या लापरवाही नहीं है, बल्कि उसकी विपुलता है।

स्त्री पात्रियाँ प्रायः सभी एक ही श्रेणी की हैं। उनमें कोई विशेष अन्तर नहीं है। विवाहिता स्त्री अपने पति को ही सब कुछ जानती है; परन्तु अविवाहिता बालिकाएँ वासना-विहीन, सच्चे प्रेम की बलिवेदी पर अपने को उत्सर्ग कर देती हैं। उन्हें किसी सांसारिक विषय की इच्छा नहीं रहती। वे जानती हैं, इस पथ में फूल नहीं, काँटे बिछे हुए हैं, परन्तु उन्हें इसकी चिन्ता नहीं। हम यहाँ केवल तीन स्त्रियों के ही चरित्र पर विचार करेंगे—सुमन, सोफ़िया और निर्मला।

(क्रमशः)

आँसुओं के प्रति

[श्री० नरेन्द्र]

ऐ मेरे दुर्दिन के साथी!
अहो हृदय के मीठे भार!
चिर-सञ्चित स्मृति के सञ्चय,
निठुर निराशा के उपहार!!

तुहिन-विन्दु की बिखरी लड़ियों,
भाव-मर्म के हे आगार!
किसकी मञ्जुल छवि धारे हो,
बोलो, बोलो, मुक्ताकार!!

❁

हे मानस के नव-निधि! मूक—
भावना के हे सुन्दर रूप!
मन-मन्दिर की देवी के पद—
पङ्कज पर उपहार-स्वरूप!!

रहो, रहो, दुखिया आँखों में,
विलग न हो ऐ, पागल प्यार!
मञ्जुल छवि की छाया झलके,
दीखे धुँधला-सा संसार!!

[स्वरकार तथा शब्दकार—श्री० किरणकुमार मुखोपाध्याय (नीलू बाबू)]

मिश्र बसन्त

नव झम्पा मात्रा ९

स्थायी—प्यारा निरञ्जन। आयो शरण तोरी पति राखो नारायण।
अन्तरा—हमरी गति सम्हार, अब तूही करतार, डूबत मँझधार हूँ अति दीन जन॥

स्थायी

×		३		०		१		
स	—	ध	नि	स	म	म	—	म
प्या	—	रां	निं	र	ञ्जन्	ज	—	न
म	—	रे	ग	म	ध	नि	—	सं
आ	—	यो	श	र	ण	तो	—	री
नि	नि	ध	नि	ध	ध	म	—	म
प	ति	रा	खो	ना	रा	य	—	ण

अन्तरा

म	म	ध	ध	नि	नि	सं	—	सं
ह	म	री	ग	ति	स	म्हा	—	र
नि	नि	ध	नि	ध	ध	म	—	म
अ	ब	तू	ही	क	र	ता	—	र
गं	गं	मं	गं	क रें	—	सं	—	सं
डू	ब	त	मँ	झ	—	धा	—	र
नि	नि	ध	नि	ध	ध	म	—	म
हूँ	अ	अ	ति	दी	न	ज	—	न
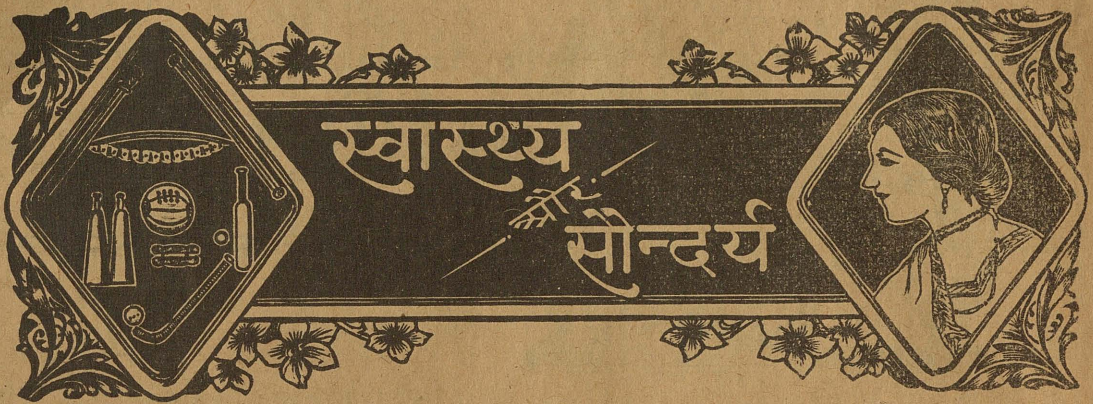
[श्री० रतनलाल जी मालवीय, बी० ए०, एल्-एल्० बी०]

(गताङ्क से आगे)

दूध और शहद की .ख़ूराक

यदि दूध के साथ शक्कर की मात्रा बढ़ा दी जाय, तो उससे शरीर शीघ्रता से मोटा होने लगता है। परन्तु इसके लिए गन्ने की शक्कर उतनी लाभप्रद नहीं है, जितनी फलों और जवों से निकाली हुई शक्कर है। ये सब भी शहद के मिठास का मुक़ाबला नहीं कर सकतीं। दूध में शहद मिला कर पीने से बहुत लाभ होता है। परन्तु यदि शहद या उपर्युक्त पदार्थों की शक्कर मट्ठे में मिला कर पी जाय तो दूध से भी अधिक लाभदायक होती है। यह सदैव याद रखना चाहिए कि एक सेर दूध या मट्ठे में शक्कर या शहद की मात्रा आध पाव से अधिक न बढ़ने पावे। अपने साधारण भोजन के अतिरिक्त दिन-रात में इसके मिश्रण के तीन गिलास तीन बार में पीने से वज़न बहुत जल्दी बढ़ेगा और शरीर भी जल्दी मोटा होगा। यदि पाचन शक्ति अच्छी हो तो इस मिश्रण का इससे भी अधिक उपयोग किया जा सकता है। परन्तु मोटे बनने का यह प्रयोग धीरे-धीरे बढ़ाना चाहिए, नहीं तो लाभ की जगह हानि हो जाने की सम्भावना रहती है।

केवल भोजन ही शरीर को पुष्ट और मोटा न कर देगा। उसके लिए व्यायाम की भी आवश्यकता है। परन्तु यदि अपने व्यवसाय में ही किसी को काफ़ी शारीरिक परिश्रम करना पड़ जाता है, तो केवल आगे-पीछे झुकने वाली और रीढ़ (पीठ) के व्यायामों के अतिरिक्त आपको किसी दूसरे व्यायाम की आवश्यकता नहीं रह जाती, प्रत्युत अपने दिन भर के काम के बाद व्यायाम की जगह आराम की आवश्यकता है।

वज़न बढ़ाने और शरीर को पुष्ट और मोटा करने के लिए जो व्यायाम किया जाय, वह धीरे-धीरे और एकाग्र मन से करना चाहिए और थोड़ा-थोड़ा प्रतिदिन बढ़ाते जाना चाहिए। यदि बीच में एक दिन छोड़ कर व्यायाम करें तो और भी अच्छा है, क्योंकि इससे व्यायाम से उत्पन्न, शरीर का विषैला द्रव्य मांस-पेशियों में से निकल जायगा और इससे नए सैल तैयार होंगे। यह सदैव याद रखना चाहिए कि मांस-पेशियाँ व्यायाम के समय नहीं बढ़तीं—वे तो आराम के समय विकसित और पुष्ट होती हैं। यही कारण है कि प्रतिदिन व्यायाम करते रहने पर भी उचित आराम न लेने के कारण हम अपना वज़न नहीं बढ़ाने पाते।

भारी व्यायाम के साथ-साथ शरीर को फुर्तीला बनाए रखने के लिए टेनिस आदि खेलों की भी आवश्यकता है। जो खेलना पसन्द न करें, वे छः-सात मील घूम कर, या थोड़ा दौड़ कर उस आवश्यकता की पूर्ति कर सकते हैं। प्राणायाम या गहरी साँस खींचने और उपर्युक्त दौड़-धूप करने से साँस ज़ोर से चलेगी और उससे शरीर के अन्दर ऑक्सिजन उपयुक्त मात्रा में

अन्दर पहुँच सकेगी, जो वज़न बढ़ाने में बहुत सहायता पहुँचाती है। जहाँ तक हो, शुद्ध और खुली हवा में रहना चाहिए।

निद्रा भी वज़न बढ़ाने में कुछ कम सहायक नहीं होती। कुछ लोग ऐसे अवश्य हैं, जो कम निद्रा से अपना स्वास्थ्य स्थिर रख सकते हैं। परन्तु उन्हें अन्त में इसका दण्ड अवश्य भुगतना पड़ता है। शरीर को अपने स्नायु-केन्द्रों और मांस-पेशियों को स्वस्थ और बलिष्ट रखने के लिए २४ घण्टे में कम से कम ७-८ घण्टे की निद्रा बहुत आवश्यक है। बिना उसके आपका उपचार अधूरा रह जाता है।

शरीर के रेशों का विकास, जिससे वास्तव में शरीर का वज़न बढ़ता और पुष्ट होता है, शरीर में एकत्रित शक्ति के ऊपर निर्भर है। इसलिए आपका कार्य-क्रम ऐसा होना चाहिए, जिससे नित्य के भोजन से उत्पन्न होने वाली शक्ति की बचत होकर वह शरीर का विकास करने के लिए एकत्र होती रहे। यदि हम केवल शरीर से विषैले द्रव्यों के निकालने और क्षणिक, पर निकृष्ट इन्द्रिय-जनित सुखों के लूटने में ही अपनी इस शक्ति का ह्रास कर दें तो हमें फिर शरीर को पुष्ट और मोटा करने की आशा छोड़ देनी चाहिए। परन्तु यदि हम विषय-भोगों को नियमित कर, नित्यकर्म में उचित उपयोग कर, उसे बचा सकें तो शीघ्र ही अपनी ऊँचाई और उम्र के अनुसार औसत दर्जे का वज़न प्राप्त करना कोई कठिन काम नहीं है।

और जब हम अपना प्राकृतिक वज़न प्राप्त कर सकेंगे, हमें इस बात का अनुभव होने लगेगा कि हम पूर्ण स्वस्थ हैं और हमारा प्रत्येक अङ्ग सुचारु रूप से अपना कार्य सञ्चालन कर रहा है, तभी हम पूर्ण आरोग्य और बलवान बन सकते हैं।

मुटाई छाँटने और वज़न घटाने वाला भोजन

शरीर पर चर्बी का चढ़ जाना ईश्वर का सबसे अधिक अमङ्गलमय श्राप है। हमारे विकास और प्रति-दिन के कार्यों में कोई पदार्थ इतनी रुकावट नहीं डालता जितना शरीर का मोटापन। कुछ वर्षों पहिले यह मोटा-पन ईश्वर का वरदान समझा जाता था, क्योंकि लोगों के हृदय में यह विश्वास जमा हुआ था कि भूख से पीड़ित और रोगग्रस्त मनुष्य ही दुबले हुआ करते हैं और इससे वे स्वभावतः यह निष्कर्ष निकालते थे कि मोटापन स्वस्थता की निशानी है और इसीलिए हर एक व्यक्ति का मोटा होना आवश्यक है। परन्तु अब लोगों के हृदय से यह विश्वास उठता जाता है और वे समझने लगे हैं कि मोटापन, शारीरिक सौन्दर्य और स्वास्थ्य के लिए वास्तव में श्राप है। डॉक्टरों ने भी यह बात सिद्ध कर दी है कि दुबले आदमियों की अपेक्षा चर्बी से लदे हुए मनुष्य जल्दी मरते हैं।

बहुत से मोटे लोग अपनी तोंद और अन्य अङ्गों पर लटकती हुई चर्बी को रबर के बेल्टों और पट्टों से ख़ूब कस कर अपना वज़न घटाने के लिए व्यायाम करते हैं। यदि उचित व्यायाम ख़ूब मन लगा कर और वैज्ञानिक ढङ्ग से किया जाय, तो चर्बी घटाने के लिए उससे अच्छा कोई उपचार नहीं है। परन्तु वर्षों की अनियमित दिनचर्या और निकम्मेपन से उनमें जो आलस्य और दूसरे दुर्गुण प्रवेश कर जाते हैं; उससे वे व्यायाम करने में असमर्थ हो जाते हैं। सौभाग्य से जो व्यायाम में सफलता प्राप्त कर लेते हैं, वे अपनी लोलुप जिह्वा को वश में न रख सकने के कारण अपनी चर्बी उतारने में सफल नहीं होते। अपने इसी इन्द्रिय-जनित सुखों और आलस्य के कारण अगणित आदमी जीवन भर दुःख उठाते हैं।

व्यायाम के अतिरिक्त डॉक्टर लोग और भी सरल उपाय चर्बी घटाने के लिए बतलाते हैं। कोई कहता है 'टर्किश बाथ' या टब के स्नान से मुटाई छटती है। कोई अधिक देर तक गर्म पानी के स्नान का उपचार बतलाता है और कोई शरीर को ख़ूब रगड़ने और रबर के कपड़ों से शरीर को ख़ूब कसे रहने की सलाह देता है। कई प्रकार के जुलाब और औषधियाँ भी शीघ्र मुटाई छाँटने का दावा करती हैं। परन्तु ये सब अस्वाभाविक हैं। इनसे यदि मुटाई कुछ छँट भी जाय, तो ये शरीर को रोगग्रस्त और अत्यन्त निर्बल बना देती हैं।

मुटाई छाँटने और वज़न घटाने का सबसे सरल उपाय भोजन है। विज्ञान के भोजन-सम्बन्धी आविष्कारों ने यह अच्छी तरह साबित कर दिया है कि ऐसे भोजन से, जिसमें चर्बीयुक्त तत्व नहीं रहते, वज़न सरलतापूर्वक और बिना किसी भय के घटाया जा सकता है। इस प्रकार का भोजन तीन भागों में विभाजित किया जा

सकता है। पहला जो चर्बी छाँटने में सहायता करता है; दूसरा जो शरीर में चर्बी बढ़ने नहीं देता और तीसरा वह जो अधिक भोजन करने की आदत को रोकता है।

चर्बी छाँटने का सबसे अच्छा उपाय उपवास है। अमेरिका में तो लोग ३० से लेकर ७० दिन तक के उपवास करते हैं और उसी के द्वारा १०० से लेकर १५० पौण्ड तक वज़न कम कर देते हैं। परन्तु उपवास के बाद यदि भोजन का सिलसिला ठीक न रहा, तो फिर चर्बी चढ़ जाने की सम्भावना रहती है। बहुत दिनों के लम्बे उपवास में चर्बी के अलावा शरीर के दूसरे तत्वों को रस और पुष्टि न मिलने के कारण उनके भी क्षय हो जाने का डर रहता है। इसलिए वज़न और चर्बी छाँटने का सबसे सुलभ तरीक़ा यह है कि अपने भोजन में से ऐसे पदार्थ निकाल दिए जायँ जिनसे चर्बी बनती है। परन्तु ऐसे पदार्थों का चुनाव कोई आसान काम नहीं है। क्योंकि जितने सात्विक और पौष्टिक पदार्थ हैं, उनमें सभी शरीर की चर्बी को बढ़ाते हैं। किन्तु जिन पदार्थों में जल, वायु और रेशों की मात्रा अधिक रहती है, उनसे चर्बी नहीं बढ़ती। भोजन में ऐसे पदार्थों के सम्मेलन से वज़न घटाने में बहुत सहायता मिलती है। ऐसे पदार्थों में भाजी और पत्ते वाली तरकारियाँ सम्मिलित हैं। भोजन के साथ इन तरकारियों के उपयोग से वज़न घटाने में अवश्य सफलता होगी।

आवश्यकता से कम भोजन करने से भी वज़न घटाया जा सकता है। रूखा-सूखा और तत्वहीन भोजन करने से वज़न अवश्य घट जायगा, परन्तु इस प्रकार के उपायों का अवलम्बन करना आत्महत्या करना है। क्योंकि पौष्टिक तत्वों से हीन भोजन करने से वज़न के साथ ही साथ शरीर की जीवनी-शक्ति भी घट जाती है। ऐसे भोजन से तो उपवास कर लेना अधिक श्रेयस्कर है।

चर्बी और वज़न घटाने के लिए आदर्श भोजन तो वह है, जिसमें चर्बी बढ़ाने वाले तत्वों को छोड़ कर और सब तत्व मौजूद रहते हैं। यद्यपि दूध वज़न बढ़ाने वाले पदार्थों में सर्व-प्रथम है, तो भी उसका थोड़ी मात्रा में वज़न घटाने के लिए भी उपयोग करना चाहिए, क्योंकि उसमें प्रोटीन-तत्व मिला रहता है और वह शरीर की जीवनी-शक्ति का ह्रास नहीं होने देता। इसी अध्याय के अन्त में मुटाई और वज़न छाँटने वाले पदार्थों के सामने जहाँ आपको 'अ अ अ' इस प्रकार का चिन्ह दिखाई दे, उन्हीं पदार्थों में से अपनी रुचि के अनुसार पदार्थ चुन लो। वे अवश्य वज़न घटाने में अत्यन्त सहायक होंगे। यदि धीरे-धीरे या थोड़ा वज़न और मुटाई छाँटने की आवश्यकता हो, तो 'अ अ' के चिन्ह वाले पदार्थों में से अपने योग्य पदार्थों का चुनाव करना चाहिए।

मोटे आदमियों को स्टार्च-तत्व वाले पदार्थ जैसे मैदा के पदार्थ, छने हुए बारीक और सफ़ेद आटे की रोटी और आलू का खाना बिलकुल बन्द कर देना चाहिए। सूखे हुए फलों को तो अपना धर्म समझ कर ही त्याग देना चाहिए। थोड़े दूध को छोड़ कर उससे उत्पन्न पदार्थ जैसे घी और मक्खन भी उसे अपने भोजन में से अलग कर देना चाहिए। परन्तु जो घी और मक्खन के बिना शारीरिक-शक्ति का ह्रास अनुभव करें, वे थोड़ी मात्रा में उसका या तेल का उपयोग कर सकते हैं।

स्वादिष्ट और गरिष्ठ भोजन जैसे हलुआ, पूड़ी, मैदा और खोए की मिठाइयों के पास तो मुटाई छाँटने के इच्छुक मनुष्य को कभी फटकना भी न चाहिए। इन सब में भी मिठाइयाँ बहुत हानिकारक हैं। हमारा तो विश्वास है कि जिन लोगों के पेट बढ़ कर नीचे लटक आते हैं, उनमें से प्रायः सभी इन्हीं मिठाइयों और चटपटी नमकीन का ही दुष्परिणाम भोगते हैं। यदि भोजन में से केवल इन मिठाइयों का ही बहिष्कार कर दिया जाय, तो इस मुटापे के रोग से इतने आदमी पीड़ित न हों और न इतनी ज़्यादा तादाद में अकाल-मृत्यु ही हो।

(क्रमशः)

'आ जा, आ जा, इधर ऐ नन्द दुलारे आ जा'

[कविवर "बिस्मिल" इलाहाबादी]

यह वह शब[1] है, जो नसीहत है ज़माने के लिए।
यह वह शब है, जो इबादत[2] है ज़माने के लिए॥
यह वह शब है, जो मसर्रत[3] है ज़माने के लिए।
यह वह शब है, जो ग़नीमत है ज़माने के लिए॥
आज की रात सियह-बख़्त[4] हमारा चमका,
आज की रात उमीदों का सितारा चमका।
रात भादों की अँधेरी थी घटा छाई थी,
मुज़दए[5] ऐशो-ख़ुशी साथ लगा लाई थी।
खिलने वाली कली दिल की नहीं मुरझाई थी,
कंस की मौत, इसी पर्दे में छुपी आई थी।
लिया मथुरा में जनम, जा के रहा गोकुल में,
पाँव के रखते ही, इमरत मिला जमुना जल में।
वह कन्हैया, वह मेरे दिल का लुभाने वाला।
वह ज़माने में, नए रूप से आने वाला।
वह भजन नग़मए[6] इलहाम[7] बताने वाला।
वह बड़े प्रेम से बंसी का बजाने वाला॥
जलवए[8] नूरे अज़ल आलमे तनवीर[9] में था।
यानी जो कुछ भी था, बस ख़ाक की तामीर[10] में था।
वह नज़र ही नहीं, जिसको नहीं हसरत उसकी।
दिल वह क्या दिल है, नहीं जिसको मुहब्बत उसकी।
खुल गई दीदए बीना[11] पे हक़ीक़त उसकी।
एक-एक शै[12] में नज़र आती है सूरत उसकी॥
शाहिदे[13] मानिए असरार[14] ज़हूरे-क़ुदरत[15],
सब पै रौशन था, कि वह ख़ास था नूरे क़ुदरत।

नन्द के लाल, जसोदा के दुलारे मोहन।
सब के बिगड़े हुए सब काम सँवारे मोहन॥
इस तरफ़ भी निगाहें लुत्फ़ हो प्यारे मोहन।
कुछ हमारी भी सुनो आके हमारे मोहन॥
हो गई ज़ेरो-ज़बर[16] देख लो दुनिया दिल की,
दिल ही दिल में रही जाती है तमन्ना दिल की।
दब गए, मिट गए, मग़रूर उभरने वाले,
नाम सुन-सुन के तेरा डरते थे डरने वाले।
हसरते-जौर[17] में मरते रहे मरने वाले,
ज़ुल्म को भूल गए, ज़ुल्म के करने वाले।
उठ गई चश्मे ग़ज़ब[18] कंस की हस्ती न रही,
ख़ुदपरस्ती[19] न रही, क़हर-परस्ती[20] न रही।
ज्ञान की राह ज़माने को दिखाई तूने,
प्रेम क्या चीज़ है, यह बात बताई तूने।
ग़म भी तुझको मिले, तकलीफ़ भी पाई तूने,
दूर दुख हो गया, मुरली जो बजाई तूने।
एक नई तर्ज़, नई आन से बोली बंसी,
तट पे जमुना के अजब शान से बोली बंसी।
किस क़यामत का भरा सोज़ तेरे साज़ में है,
रङ्गे-उल्फ़त[21] भी निहाँ[22] ख़ूबीए अन्दाज़ में है।
यह बड़े जोश में है, और बड़े नाज़ में है।
गोया जादू, इसी जादूभरी आवाज़ में है।
राग के वक़्त, कोई धुन में, कोई लै में है मस्त,
देखता हूँ जिसे अच्छी तरह वह नै[23] में है मस्त।
अपनी क़ूवत[24] को बड़े जोश में लाने वाला,
उँगलियों पर वह गोबरधन का नचाने वाला।
वह सुदामा की ग़रीबी का मिटाने वाला।
काम सङ्कट में हर एक शख़्स के आने वाला।

१—रात, २—वन्दना करने लायक़, ३—आनन्द, ४—बुरी तक़दीर, ५—ख़ुशख़बरी, ६—राग, ७—दिल पर ख़ुदा की तरफ़ से कुछ बात आना, ८—ईश्वरी ज्योति, ९—रोशनी, १०—इमारत, ११—देखने वाली आँखें, १२—चीज़, १३—प्रेमिका, १४—भेद, १५—ईश्वरी ज्योति,

१६—उलट-पुलट, १७—ज़ुल्म करना, १८—क्रोध भरी नज़र, १९—अभिमानी, २०—क्रोधी, २१—प्रेम, २२—छुपा हुआ, २३—बाँसुरी, २४—ताक़त।

अब भी आफ़ाक़[२५] के लब पर है फ़िसाना[२६] तेरा,
याद है याद ज़माने को ज़माना तेरा।
तेरे होते न कोई दर्द पर आज़ार[२७] रहा,
तेरे होते न जफ़ाकार[२८], जफ़ाकार रहा।
बेकसों[२९] के लिए हर हाल में ग़मख़्वार रहा,
धर्म के वास्ते अरजुन का मददगार रहा।
कौरवों का वह ग़ुरूर और निशाँ तक न बचा,
रन में सब क़त्ल हुए एक जवाँ तक न बचा !
न हुआ है, न कोई होगा तेरा सानी[३०] भी,
ऐसा योगी भी कहीं, ऐसा कहीं ज्ञानी भी।
दान को सुन के छुपे शर्म से सब दानी भी,
मिट गई दम से तेरे शाने सितमरानो[३१] भी।
ग़ौर से देखें ज़रा लोग तमाशा क्या है,
तूने गीता में बताया है, कि दुनिया क्या है।
किलके[३२] कुदरत से है इन्सान की तक़दीर बनी,
ख़ाक के ज़र्रों से है ख़ाक को तस्वीर बनी।
क़ाबिलेदीद[३३] हर एक शक्ल की तहरीर बनी,
रिश्तए[३४] तारे नफ़स[३५] की नई ज़ञ्जीर बनी।
आग है, ख़ाक है, पानी है, हवा शामिल है,
चार उन्सर[३६] न हों तो ज़ीस्त[३७] बहुत मुश्किल है।
यह समझते नहीं कमअक़्ल उभरने वाले,
कि बिगड़ जाएँगे एक रोज़ सँवरने वाले।
काम करने के जो हों कर लें वह करने वाले,
जीने वाले नहीं आख़िर को हैं मरने वाले।
क्यों मिटे जाते हैं दिल अपना लगाने के लिए,
आए हैं दह्र[३८] में सब दह्र से जाने के लिए !
ज़िन्दगी क्या है खुली इसकी हक़ीक़त कैसी,
मौत क्या चीज़ है की तूने नसीहत कैसी।
देश के वास्ते वे लाग थी उल्फ़त कैसी,
तेरे ही दम से हुई धर्म की इज़्ज़त कैसी।
धर्म का आज कहीं ज़िक्र नहीं, नाम नहीं,
क्यों न अन्धेर हो, मौजूद यहाँ श्याम नहीं।
आ जा, आ जा, इधर ऐ नन्द दुलारे आ जा,
फिर वह बंसी लिए जमुना के किनारे आ जा।
परदए[३९] ग़ैब से हो जायँ इशारे आ जा,
अब नहीं ताब[४०] ग़मे-हिज्र[४१] की प्यारे आ जा।
आ कन्हैया, कि तेरे वास्ते हम "बिस्मिल" हैं,
कहने-सुनने के लिए दिल है, मगर बेदिल हैं।

❀ ❀ ❀

नाव भारत की किनारे पे लगा दे मोहन

[श्री० शिवनन्दनप्रसाद वर्मा 'हुनर' गयावी]

ख़्वाबे-ग़फ़लत[१] में जो सोते हैं जगा दे मोहन,
बाँसुरी ले के नया राग सुना दे मोहन।
दिल तड़पता है, तरसती हैं हमारी आँखें,
जलवए[२] आरिज़े-पुरनूर[३] दिखा दे मोहन।
जिस तरह तूने किए दूर सुदामा के दुख,
हम ग़रीबों की भी बिगड़ी को बना दे मोहन।
आरज़ू यह है, यह अरमान है, यह हसरत है,
भूले-बिसरे कभी सूरत तो दिखा दे मोहन।
बैठते-उठते यह दिन-रात "हुनर" की है दुआ,
नाव भारत की किनारे पे लगा दे मोहन।

❀ ❀ ❀

२५—संसार, २६—क़िस्सा, २७—तकलीफ़ देने वाला, २८—ज़ालिम, २९—दुखियों, ३०—जवाब, ३१—ज़ुल्म करना, ३२—क़लम, ३३—देखने लायक़, ३४—डोरा, ३५—सांस, ३६—पञ्चतत्व, ३७—ज़िन्दगी, ३८—संसार, ३९—ईश्वर शक्ति, ४०—ताक़त, ४१—विरह।

१—बेहोशी की नींद, २—जयाति, ३—चमकदार चेहरा।

[हिज़ होलीनेस श्री० वृकोदरानन्द विरूपाक्ष]

हिज़ होलीनेस को यह जान कर परम प्रसन्नता हुई है कि लेजिस्लेटिव एसेम्बली के पूरे पौन दर्जन धर्म-पट्ठों ने एक बार फिर सारदा-विधान के विरुद्ध ताक़त आज़-माई का इरादा किया है। यद्यपि ये धर्म-पट्ठे एक बार अच्छी तरह मुँह की खा चुके हैं, परन्तु बुज़ुर्गों का क़ौल है कि 'फिर से लड़े सो कायर नहीं।'

❀

और फिर, जनाब आली, यह धार्मिक खुजली भी तो कमबख़्त, राजरोगों में है, मनों गन्धक और किरासिन तेल स्वाहा हो जाने पर भी नहीं मिटती। इसका दौरा रह-रह कर होता है। इसी वजह से बरसों के बाद एक बार फिर बासी कढ़ी में तूफ़ान लाने का विचार हो रहा है। 'बेकार न रह कुछ किया कर, गुदड़ी उधेड़ कर सिया कर!'

❀

महात्मा गाँधी जी लण्डन के लिए रवाना हो गए हैं? बी ब्रितानियाँ ने अपने पुराने लहँगे पर नई गोटें चढ़ा कर उसे नए सिरे से रफ़ू करा लिया है और बेन की जगह होर ने हथिया ली है। ऐसी हालत में कालों के 'एटेन्शन' अर्थात् ध्यान का सम्पूर्ण-रूपेण बी राजनीति की ओर चला जाना अस्वाभाविक नहीं।

❀

ऐसी दशा में प्रभु-भक्तों का यह परम कर्त्तव्य था कि यहाँ कोई नया शिगूफ़ा छोड़ देते, ताकि कुछ काले बाल-गोपाल उसमें बझ कर राजनीति के चहले से बचे रहते। अन्यथा क्या एसेम्बली के यह धर्म-पट्ठे इतना भी नहीं जानते कि बाल-विवाह जैसे दक़ियानूसी विचारों की नींवें दीमकें चाट गई हैं। उनके विरोध के लिए न सारदा-विधान की ज़रूरत है और न रक्षा के लिए नवीन पाण्डुलिपि की।

❀

ख़ैर, उपर्युक्त पौन दर्जन पट्ठों में से तीन (??) तो सारदा-विधान के विरुद्ध एक नये विधान की पाण्डुलिपि उपस्थित करेंगे और बाक़ी छः निरौनी-निपुण पट्ठे अपनी बारीक कतरनियों द्वारा उसके आस-पास के झाड़-झङ्खाड़ साफ़ करके उसका संशोधन करेंगे। फलतः एक बार बाल-विवाह की मुर्दा रगों में फिर स्पन्दन आएगा और 'बोल सनातन धर्म की जय' की तुमुल ध्वनि से मेदिनी प्रकम्पित होगी, प्रभु प्रसन्न होंगे और अगली पहली जनौरी को देश में पौन दर्जन और राय बहादुर बढ़ जायँगे।

❀

हमारे विद्वद्वर धर्म-धुरन्धर समाज-शास्त्री जी का कथन है कि किशोरी अथवा युवती कन्या को कुमारी रखने से समाज में व्यभिचार की वृद्धि होती है। क्योंकि समाज के उच्छृङ्खल नवयुवक उन्हें व्यभिचारिणी बना देते हैं। इसलिए यह आवश्यक है कि बाल्यावस्था में ही वे वधुएँ बना दी जाएँ। इसलिए सारदा-विधान को यथा-सम्भव शीघ्र ही ज़िन्दा दर-गोर कर देने की व्यवस्था होनी चाहिए।

❀

माशा अल्लाह, पूज्यवर समाज-शास्त्री जी की यह अकाट्य, अन्तोड़ और अफोड़ दलील सुन कर हिज़ होलीनेस की तबीयत फड़क उठी है। समाज की कन्याओं और युवकों की संस्कृति, सभ्यता, शिक्षा, धर्म-भीरुता और चरित्र-बल के सम्बन्ध में आपकी जो पवित्र और उच्च धारणा है, वल्लाह, वह क़ाबिले तारीफ़ है; और

क़ाबिले तारीफ़ है आपकी वह धार्मिकता, जिसके ज़ेर-साया पल कर समाज के युवक ऐसे चरित्रवान हो जाते हैं !

❀

ग़नीमत है कि समाज के वे उच्छृङ्खल युवक केवल कुमारी किशोरियों और युवतियों को ही व्यभिचारिणी बनाते हैं, विवाहिताओं को शायद उच्छिष्ट समझ कर उन पर नज़र नहीं डालते। आख़िर बेचारे सनातन-धर्मावलम्बी जो ठहरे। इसीलिए जब व्यभिचार करने जाते हैं तो शुद्धाशुद्ध का विचार अच्छी तरह कर लेते हैं। उस पियक्कड़ उर्दू कवि की तरह, जिसने कहा है—

पीता नहीं शराब कभी बे उज़ू किए,
क़ालिब में मेरे रूह किसी पारसा की है !

❀

और एक दलील सुनिए। यह देखा गया है कि बहुत सी लड़कियाँ ग्यारह और बारह वर्ष की उमर में ही सुयोग और साधन प्राप्त कर के माताएँ बन जाती हैं। लेहाज़ा यह आवश्यक है कि जन्म के साथ ही उन्हें माता बनने के सब प्रकार के सुयोग और साधन मुहय्या कर दिए जाएँ। अन्यथा समय निकल जाने पर मातृत्व का सारा मज़ा ही बिगड़ जाएगा। अजी, युवती या बुढ़िया माता किस काम की ?

❀

वास्तव में जब से सारदा-विधान की सृष्टि हुई है, तब से सनातन-धर्म और सनातन हिन्दू-समाज की बड़ी बुरी दशा हो रही है। यद्यपि कुछ धर्मवीरों ने अपनी दुधमुँही बच्चियों को सौभाग्यवतियाँ बना कर धर्म और समाज की रक्षा के लिए सिरतोड़ परिश्रम किया है। परन्तु एक तो बुढ़ौती की देह और ऊपर से सारदा-विधान का अन्धाधुन्ध पैज़ार ! ऐसी दशा में सौ-दो सौ बच्चे-बच्चियों के ऊष्ण रक्त से हो ही क्या सकता है ? ऊँट के मुँह में मुट्ठी भर ज़ीरा डाल देने से उसका पेट थोड़े ही भर सकता है ?

❀

इसलिए गम्भीर गवेषणा के बाद श्रीजगद्गुरु इस सिद्धान्त पर पहुँचे हैं कि जिन पौन दर्जन पहलवान पुङ्गवों ने एसेम्बली में सारदा-विधान के विरोध में नवीन खसड़ा उपस्थित करने का आन्दोलन किया है, उनकी सेवा में निवेदन किया जाए कि लगे हाथ स्त्री-शिक्षा, परदा-विरोध और अन्यान्य प्रकार के सुधारों का भी श्राद्ध कर डालें, ताकि इन बेचारों की भी सद्गति हो जाए और हिन्दू-समाज तथा हिन्दू-धर्म के पथ के सभी रोड़े एक साथ ही दूर हो जाएँ।

❀

अन्यथा अनर्थ निर्मूल न होगा। क्योंकि स्त्रियाँ अब परदे में नहीं रहना चाहतीं, कहीं सत्याग्रह करती हैं तो कहीं राष्ट्रीय महिला-सम्मेलन। देश की स्वतन्त्रता के लिए जेल जाना, राष्ट्रीय समारोहों के अवसरों पर व्याख्यान देना और मरदों की तरह वकालत और बैरिस्ट्री आदि करना तो उनके लिए एक मामूली बात हो गई है। ऐसी अवस्था में केवल सारदा-विधान का गला घोंट देने की चेष्टा से ही भगवान सनातन-धर्म जी महाराज की रक्षा हो जाएगी, ऐसी आशा कम से कम हिज़-होलीनेस को तो बिल्कुल ही नहीं है।

❀

इसलिए जब धर्म-धुरन्धरों ने धर्म के उद्धार पर कमर ही बाँध ली है तो लगे हाथ धर्म के मार्ग के सभी कण्टकों को दूर कर देना ही उनका कर्त्तव्य है। इसलिए वे लाट साहब से कह कर एक ऐसा कानून बनवालें कि जो जन्मते ही अपने लड़का-लड़की की शादी न कर दे, उसे फाँसी दे दी जाए। स्त्रियाँ तहख़ानों में बन्द रहें और बूढ़े मर जाने पर भी दो-चार शादियाँ कर सकें।

❀

साथ ही लगे हाथ कलकत्ता कॉरपोरेशन के विरुद्ध भी 'वोट ऑफ़ सेन्सर' पास करा देना चाहिए। क्योंकि उसने कलकत्ता के कई पार्कों में स्त्रियों के लिए हवा-ख़ोरी की व्यवस्था कर दी है। बताइए, जब स्त्रियाँ हवा खाने लगेंगी, तो बेचारे धर्म-भगवान क्या खाएँगे ?

❀

यद्यपि महाकवि श्री०शङ्कर बाबा को यह आशङ्का है कि "पढ़ी नारि नैया डुबो जाएगी, किसी मित्र की मेम हो जायगी" इसलिए उचित था, कि देश की स्त्री-शिक्षा सम्बन्धिनी संस्थाओं के विरुद्ध जहाद का झण्डा बुलन्द कर दिया जाता। परन्तु अपने राम इस ओर से निश्चिन्त हैं। क्योंकि जब सारदा-विधान उठ जाएगा, तो स्त्री-शिक्षा की बला तो स्वतः ही टल जाएगी।

एक क्रान्तिकारी सामाजिक नाटक

छप रहा है !

छप रहा है !!

यह नाटक भारतीय समाज में जीवन-संग्राम का जीता-जागता करुण चित्र है। पाप के प्राङ्गण में सत्य का क्रन्दन मालती के हृदय से निकल कर जान पड़ता है इस नाटक-रूप में आया है। हिन्दू संस्कृति के स्तम्भ, वानप्रस्थ जीवन व्यतीत करने वाले संन्यासी के अधरों से एक प्रेम का मधुर गान निकल कर इस नाटक के वायु-मण्डल में एक विचित्र प्रकार की मस्ती, सुषमा, श्री, देवत्व का प्रभाव डाले हुए है। यह नाटक प्रकृति, सत्य तथा मानव-हृदय के विकारों के युद्ध की छाया है। यौवन के उन्माद से उन्मत्त समाज-सेवक अन्त में परिपाटी के चक्र में पड़ कर अपना सत्यानाश करके समाज के सामने उन अगिन युवकों का चरित्र दिखाता है, जो सेवा करना चाहते हैं, किन्तु नहीं कर सकते और एक मानसिक मृत्यु के शिकार होते हैं। मू० १॥) रु० मात्र, स्थायी ग्राहकों से १=)

Printed, Published and Edited by Shrimati Lakshmi Devi, vice Sjt. Tribeni Prasad, B.A., and Sjt. Bhuvneshwar Nath Misra, M.A., (both in jail), at The Fine Art Printing Cottage, 28, Edmonstone Road, Chandralok—Allahabad.